सुबन्धु की वासवदत्ता का साहित्यिक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी0 फिल0 उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

अनुसन्धात्री

श्रीमती प्रियँका सिंह

एम०ए०

निर्देशिका

डॉ० (श्रीमती) किश्वर जबीं नसरीन

रीडर सस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
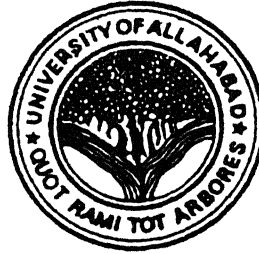
संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

2003

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **श्रीमती प्रियंका सिंह** ने मेरे निर्देशन एव पर्यवेक्षण मे इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (उ॰प्र॰) की डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी की उपाधि हेतु **''सुबन्धु की वासवदत्ता का साहित्यिक अध्ययन''** विषय पर अनुसंधान कार्य किया हैं इनका कार्य उत्कृष्ट है।

मेरे अधिकतम ज्ञान एव विश्वास के अनुसार शोध प्रबन्ध

1 स्वय अनुसन्धात्री का मौलिक कार्य है,

2. विश्वविद्यालय की पीएच॰डी॰ उपाधि से सम्बन्धित अध्यादेश की सभी वाछित आवश्यकताओ को पूर्ण करता है, तथा

3 विषय सामग्री एवं भाषा दोनों की दृष्टि से यथेष्ट स्तर का है। इसके परीक्षणार्थ प्रस्तुति की अनुशंसा की जाती है।

निर्देशिका

K. Nasreen

स्थान : इलाहाबाद

दिनांक . 25.9 2003

डा० (श्रीमती) किश्वर जवी नसरीन
सस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

पुरोवाक्

सस्कृत भारत की अपनी मूल भाषा है, जिसे 'देववाणी' के नाम से जाना जाता है। भारत के साहित्यिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, आध्यात्मिक और राजनैतिक जीवन की सम्पूर्ण व्याख्या सस्कृत वाड्मय मे समाविष्ट है। सस्कृत वाड्मय अपनी पवित्र धार्मिक एव आध्यात्मिक विचारधारा के लिए सदा विश्व-विश्रुत रहा है। सचमुच या यो कहना चाहिए कि सस्कृत साहित्य भारतीय सस्कृति का निर्मल दर्पण है, जिसमे भारतीयो के सर्वागीण विचार स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित है। यो तो सभी वाड्मय माननीय हें, सभी के अपने विशिष्ट गुण है सभी ने अपने उपकार से मानव समाज को ही नही किन्तु अन्य प्राणियो को भी स्वस्थ, सुखी तथा अन्धकार से न्यूनाधिक्य दूर उठाया है पर सस्कृत की ओर ध्यान जाने पर तो बरबस मन-मयूर प्रफुल्ल हो नृत्य करने लगता है। ऐसी भावना जागृत हो उठती है कि मानो आनन्द सरिता मे प्रवाहित हो रहे हो। सचमुच **'अध्यात्मविद्या विद्यानाम्'** इस स्तुति का सत्य अनुभव इसी के अन्तस्तल मे सुनिहित है। संस्कृत एक ऐसी भाषा है, जो मानव जीवन को सर्वविध समुन्नतशील बनाने के साथ-साथ प्राणीमात्र को मगलमय कल्याण की ओर अग्रसर करने मे निरन्तर प्रयत्नशील रही है। इसकी मधुरता, प्राञ्जलता एव भावुकता तथा इसके सन्देश **''सर्वे भवन्तु सुखिनः''**, **''बसुधैव कुटुम्बकम्''** आदि से समस्त विश्व इस पर मुग्ध है—इसे श्रद्धा की दृष्टि से देखता है।

वस्तुतः प्रत्येक कार्य का कोई न कोई एक प्रधान कारण होता है और साथ ही साथ उस कार्य के सम्पादन मे उसकी अपनी कोई न कोई एक

भूमिका भी होती है जिसके मध्य से उस कार्य की फलश्रुति लोकमानस के समक्ष उभर कर आती है। प्रस्तुत शोध के सन्दर्भ मे भी यही तथ्य गतार्थ होता है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध आधुनिक सस्कृत साहित्य के मूर्धन्य रचनाकार **सुबन्धु** के एकमात्र रचित ग्रन्थ **'वासवदत्ता'** का साहित्यिक मूल्याकन है, जिसमे वस्तु, पात्र, रस, अलङ्कार, भाषा तथा शैली इत्यादि विशिष्ट काव्य तत्वो की दृष्टि से उनकी रचना का सर्वांगीण साहित्यिक विवेचन करने का प्रयास किया गया है।

एम० ए० परीक्षाफल निर्गत होते ही अनुसन्धात्री का संकल्पशील सस्कार सम्पन्न मन उसे तत्काल शोध मे प्रवेश लेने के लिए प्रेरित करने लगा। उसी क्षण विदुषी शोध निर्देशिका **डा० किंश्वर जर्वीं नसरीन** का सारस्वत व्यक्तित्व अनुसन्धात्री के चित्तमच पर सहसा जा उपस्थित हुआ और संयोग से तत्काल ही उसने उनसे जाकर अपनी शोध सम्बन्धी जिज्ञासा अविकल रूप से निवेदित भी कर दी, फिर क्या था उन्होने शीघ्र ही अनेक विषयो का सुझाव करते हुए अन्तत उसकी रुचि के अनुकूल विषय **''सुबन्धु की वासवदत्ता का साहित्यिक अध्ययन''** पर शोध-कार्य करने के लिए अन्तिम रूप से निर्णय दे दिया। सन्देहो के वात्याचक्र मे चक्कर करता हुआ अनुसन्धात्री का असंस्तुत मन सस्तुत हो गया और पूर्णतः उद्यत अपनी सकल्प शक्ति का पाथेय लेकर उपर्युक्त शोध शीर्षक पर शोध कार्य सम्पन्न करने के लिए।

अनुसन्धात्री ने यथाशीघ्र शोध-कक्षा मे अक्टूबर 2001 मे प्रवेश लेकर

शोध-कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। उत्थान-पतन, आशा-निराशा आदि के द्वन्द्वो से जूझती हुई शनै -शनै अपने शोध-कार्य मे प्रगति लाने का यत्न करने लगी। तत्पश्चात् जब शोध-कार्य ने प्रगति पकड़ी तो उसी के फलस्वरूप आज अनुसन्धात्री का वह चिर-अभिलषित शोध सम्बन्धी सारस्वत यज्ञ अपनी पूर्ण आहुति को प्राप्त कर रहा है।

इस शोध प्रबन्ध की रुक्ष और गूढ़ गुत्थियो में उलझ जाने से उत्पन्न विषाद के क्षणो मे एकमात्र अवलम्बन अपनी पूज्यनीया **माँ श्रीमती माधुरी सिंह** के प्रति कृतज्ञ हूँ जो गृहस्थी के अनेक झझटो को अपने ऊपर लेकर मुझे स्वाध्याय हेतु सदैव प्रेरित करती रही। इसी अवसर पर मैं अपने जीवनसाथी **श्री राजेश कुमार सिंह** की भी विशेष रूप से आभारी हूँ जिन्होने विवाह के बाद सुख शान्ति व समृद्धि को जीवन के उत्साह की प्रसुप्ति मानकर मुझे असंतुलित अन्तर-द्वन्द्वो भीषण सघर्षो व तूफानी थपेडों से झकझोर कर बराबर जगाया और वैषम्यो व अभावो मे भी चरम उत्साह से निरन्तर कार्य करने को उत्प्रेरित किया। उनके प्रति आभार प्रदर्शन करके अपने हृदयगत भावो का अवमूल्यन मै कैसे करूँ।

इस शोध-प्रबन्ध को पूर्ण करने मे संस्कृत, अंग्रेजी तथा हिन्दी के अनेक उपलब्ध सस्करणो से सहायता ली गई है। इसके अतिरिक्त विविध ग्रन्थो की भूमिकाओं, सस्कृत साहित्य के इतिहासो तथा समीक्षाओं से भी पर्याप्त सहायता ली गई है उन सभी ग्रन्थो के विद्वान लेखको एवं सम्पादको की मै अत्यन्त आभारी हूँ। इसके साथ ही मै माननीया **'डा० मृदुला त्रिपाठी' संस्कृत विभागाध्यक्ष, इलाहाबाद विश्वविद्यालय** के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती

हूँ। उन गुरुजनो के प्रति भी नतमस्तक होकर प्रणाम करना अपना पावन कर्त्तव्य समझती हूँ जिनके चरण-रज के प्रभाव से इस गुरुतर कार्य का आरम्भ करके समापन किया जा सका है। इसके अतिरिक्त जिन महानुभावो से इस कार्य मे किसी प्रकार की भी सहायता मिली है उन सबके प्रति हार्दिक धन्यवाद है।

गुण और दोष का विवेचन विद्वानो के अधीन है। मानव होने के नाते त्रुटियाँ सम्भावित है जिसके लिए क्षमा-याचना ही अपना धर्म समझती हूँ।

निवेदन के इन्ही दो शब्दो के साथ यह शोध प्रबन्ध पूज्य गुरुजनो, विद्याविलासी सुहृदो एवं विद्यार्थियो को समर्पित करती हूँ।

श्रीमती प्रियंका सिंह

प्रियंका सिंह

विषयानुक्रमणिका

पृ० स०

प्रथम अध्याय – संस्कृत गद्य साहित्य का इतिहास

द्वितीय अध्याय – व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व निरूपण

तृतीय अध्याय – राम विवेचन

चतुर्थ अध्याय – अलङ्कार विवेचन

उपसंहार

प्रथम अध्याय

संस्कृत गद्य-साहित्य का इतिहास

प्राचीन साहित्य में गद्य का अभाव

सस्कृत साहित्य विश्व का प्राचीनतम साहित्य है। इसमे पाश्चात्य एवं पौरात्य सभी विद्वानो को कोई विप्रतिपत्ति नही है। संसार की प्रत्येक भाषा के प्राचीन साहित्य मे प्रायः गद्य का अभाव और पद्य का बाहुल्य पाया जाता है। इसका कारण सम्भवतः यह है कि हमारी बोलचाल की भाषा के गद्यमय होते हुए भी साहित्य मे भाषा का प्रायः वह रूप रहता है जिसमे विशेष सौन्दर्य हो और जो स्मरणीय हो। पद्य की भाषा लय और ताल में बँधी हुई होती है, जिस गुण के कारण वह सहज ही लोगो को आकृष्ट कर लेती है तथा उसका स्मरण करना भी स्पृहणीय और सुगम होता है। अत्यधिक प्राचीन काल मे, जब लेखन-कला का विकास नही हो पाया था, स्मरणीय रूप का और भी अधिक महत्व रहा होगा; क्योकि उस समय सम्पूर्ण सुन्दर रचनाएँ केवल स्मृति और वाणी माध्यम से ही सुरक्षित रखी जाती थी। कोई कवि अपनी रचना को मौखिक रूप से ही प्रकट करता था। इसी प्रकार परम्परया केवल वाणी के माध्यम से ही वे रचनाए चलती आई होगी। ऐसी स्थिति मे पद्य-बद्ध साहित्य का अधिक स्थायित्व प्राप्त करना स्वाभाविक है।

सम्प्रति सस्कृत वाङ्मय गद्य एवं पद्य द्विविध रूप मे प्राप्त है, उपलब्ध साहित्य के आधार पर पद्य की ही प्राचीनता कही जा सकती है। किन्तु गद्य या पद्य के प्राचीनतम आदिम रूप के सम्बन्ध मे विद्वानो मे वैमत्य है। प्रथम पक्ष के अनुसार गद्य मनुष्य की स्वाभाविक भाषा होने के कारण आरम्भ में गद्यात्मक साहित्य का ही विकास हुआ होगा। ऋग्वेद के संवाद सूक्तो और यजुर्वेद के प्राप्त गद्य-खण्डो के आधार पर इस मत की पुष्टि की जा सकती

है। **दासगुप्ता** ने भी इसी मत को प्रामाणिक सिद्ध किया है। द्वितीय पक्ष यह है कि साहित्य का प्रारम्भिक विकास पद्य के रूप मे हुआ। प्राचीनतम ऋग्वेद पद्य मे उपलब्ध है। भाषा-विदो ने भी भाषा की उत्पत्ति सङ्गीत के आधार पर बताते हुए यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि मनुष्य की स्वाभाविक भाषा सङ्गीतात्मक थी परिणामस्वरूप प्रारम्भ में पद्य-साहित्य का ही विकास हुआ।

पद्य के प्रति लेखको का बड़ा आदर था यह बात अभ्रान्त सत्य है, इस सन्दर्भ मे विचार करने पर यही स्पष्ट होता है कि पद्य मे लिखे गये ग्रन्थो को पाठक आसानी से कण्ठस्थ कर लिया करते थे, याद भी रखते थे, ताल लयाश्रित होने से पद्यग्रन्थ गद्यग्रन्थ की अपेक्षा रोचक भी होता था, उसका प्रचार भी इसलिए अधिक हो सकता है, इसी दृष्टि से लेखको ने गद्य से अधिक पद्य को अपनाने का प्रयास किया है। संस्कृत लेखकों मे पद्य के प्रति आकर्षण का यदि अनुमान लगाया जाय तो इसी से लगाया जा सकता है कि ज्योतिष, आयुर्वेद, स्थापत्य, इतिहासादि विषय के ग्रन्थ भी पद्य मे ही अधिक लिखे गये है। कुछ ग्रन्थो मे गद्य है अवश्य, किन्तु उसकी मात्रा इतनी थोड़ी है कि वह दाल मे नमक के बराबर भी स्वीकृत होने के लिए नही प्रस्तुत होगा। सस्कृत साहित्य के गद्य भाग का मात्रा तारतम्य की दृष्टि से पद्य की अपेक्षा न्यूनत्व अवश्य माना जा सकता है परन्तु उसकी प्राचीनता सरसता आदि ऐसे गुण विद्यमान है जिनसे उसकी आदरणीयता पर आँच नही आने पाती है।

गद्य की प्राचीनता

मानवसमाज के इतिहास मे पद्य की अपेक्षा गद्य का स्थान निश्चय ही अति प्राचीनतर है। पद्य का सम्बन्ध भावना से माना जाता है और गद्य का विचार से। गद्य की शैली विचार की वाहिका है और बौद्धिक ज्ञान के क्षेत्र को वाणी का मूर्त रूप देने मे ही इसका प्रयोग अधिकतर पाया जाता है। मनुष्य की विचार सरणि का रूप गद्यात्मक ही होता है, पद्यात्मक नही। कोई विरला ही व्यक्ति पद्य मे सोचता होगा। विश्व के समस्त साहित्यो मे गद्य शैली का प्रयोग प्राचीनतम वैदिक युग मे ही उपलब्ध हो जाता है। पद्य भाषा की अपेक्षा गद्य भाषा को अधिक सम्मान दिया गया मालूम होता है। पद्य की अपेक्षा गद्य की श्रेष्ठता दिखलाने के लिए ही प्राचीन काल से यह उक्ति प्रचलित है–

'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'

अर्थात् अलकृत, परिमार्जित गद्य-विधान को ही कवियो की कसौटी माना गया है। कवि की प्रतिभा का प्रागल्भ्य पद्य की विधा मे विशेष दृष्टिगोचर होता है कि गद्य की विधा मे? इस प्रश्न के उत्तर मे आलोचको की मान्य सम्मति है कि गद्य ही कवियो की कसौटी है, जिस पर कसे जाने पर उनकी कला का जौहर चमक उठता है। पद्यबन्ध नाना प्रकार के नियन्त्रणों मे जकड़ा हुआ रहता है। मात्रा-छन्द हो या वर्णवृत्त, दोनो मे मात्राओं तथा वर्णो की संख्या नियत रहती है। लघु-गुरु अक्षरो के विन्यास की पूरी व्यवस्था रहती है, यति का नियम ऊपर से जकड़े हुए रहता है **'पादान्तस्थं विकल्पेन'** (पाद का अन्तिम लघु विकल्प से गुरु होता है)

सामान्यतः मान्य होने पर भी स्थल विशेष पर ही अपना वैभव दिखलाता है। इस व्यवस्थाओं तथा नियमो के जाल मे नियन्त्रित कवि की वाणी का प्रसार सर्वतः अवरुद्ध होता है। कवि अपने भावो की अभिव्यक्ति करने में स्वतन्त्र नही होता। फलत· वह पद्य के माध्यम मे अपने को नियन्त्रित, परवश तथा परतन्त्र अनुभव करता है। इसके ठीक विपरीत है गद्य का माध्यम। इसमे कवि को अपने चमत्कारो को दिखलाने के लिए पूरा स्वातन्त्र्य रहता है। जिधर तथा जैसे वह अपनी कला को मोडता है, उधर तथा वैसे ही वह मोड खाने मे बाध्य होती है। पद्य का कवि अपनी काव्यगत त्रुटियों के लिए अपने स्वीकृत माध्यम को अपराधी ठहराकर अपने आप को निरपराधी मान बैठता है, परन्तु गद्य के कवि के लिए ऐसी छूट कहाँ? गद्य के उन्मुक्त माध्यम के ऊपर दोषारोपण करने के लिए उसे अवसर कहाँ? गद्य रचना मे किसी प्रकार का नियन्त्रण न होने से यदि गद्य कवि की रचना मे कोई साहित्यिक त्रुटि परिलक्षित होती है, तो उसका भागी वह स्वयं होता है, माध्यम के मत्थे अपना दोष फेक कर वह सुख की नीद कभी सो नही सकता। इसलिए दोनो प्रकार के माध्यमो को स्वीकार कर काव्य लिखने वाले कवियो की गद्य रचना ही श्रेयस्कारी मानी जाती है।

गद्य तथा पद्य द्वारा, वर्ण्य विषयों का तारतम्य **भोजराज ने 'सरस्वतीकण्ठाभरण'** (2/19) मे दिखलाया है। उनका कहना है माध्यम के वैशिष्ट्य से विषय का भी वैशिष्ट्य लक्षित होता है। अटवी आदि के वर्णन में पद्य की अपेक्षा गद्य की प्रगल्भता है तथा काव्यशास्त्रीय निर्वहणोचित अर्थ मे पद्य की विशेष महिमा है। कोई अर्थ उभय माध्यमों के द्वारा और कोई त्रिविध (गद्य, पद्य

तथा मिश्र) माध्यमो के द्वारा अभिव्यक्ति की योग्यता रखता है। कथा और आख्यायिका का निर्वाह गद्य के द्वारा ही समुचित रीति से हो सकता है और इसलिए गद्यकवियो की अभिरुचि इस विषय की ओर सबसे अधिक है।

पं० अम्बिकादत्त व्यास ने पद्य-कवि की उपमा चौपड से खेलने वाले से तथा गद्य-कवि की उपमा शतरंज से खेलने वाले से दी है—'गद्यकर्ता यह भी नही कह सकता कि पदान्त के कारण हमारी कविता मे माधुर्य घट गया। यहॉ तो कुछ भी मधुरता की कमी हो तो अपनी ही अज्ञता मालूम पडेगी। जैसे चौपड़ हारने वाले अपनी भूल भी पासे के माथे मढ़ देते हैं, पर शतरंज वाले को तो अपनी भूल मानने को छोड़ कोई गति नहीं। वैसे पद्यकर्ता अपने पाटव पर भी बहुत बात बना सकते हैं, परन्तु गद्यकर्ता को शरण नही।[1]

पं० बलदेव उपाध्याय ने पद्य-कवि की उपमा पिजरबद्ध शुक से दी है जो पिजरे की सीमा के बाहर उड़ने के लिए स्थान नही पाता है, अपने सीमित स्थान के भीतर ही फड़फड़ाया करता है और गद्य-कवि का सादृश्य उन्मुक्त पक्षी से दिखाया है, जो स्वतन्त्रता के आनन्द का रसिक बनकर विशाल साहित्य-गगन मे स्वेच्छया उड़ान लिया करता है, किसी यन्त्रणा के भीतर वह आप निबद्ध नही होता।[2]

उपर्युक्त विवेचन से यह सुस्पष्ट है कि रसभावनिर्भर गद्यकाव्य की रचना कोई सरल कार्य नही। इसकी रचना की क्षमता सभी कवियो मे नही

---

1 प० अम्बिकादत्त व्यास 'गद्यकाव्यमीमासा', पृ० 2।

2 प० बलदेव उपाध्याय 'काव्यानुशीलन', पृ० 205, 1956 ई०

होती है। वे ही कवि गद्यकाव्य की रचना कर सकते है, जो वस्तुत प्रतिभासम्पन्न हुआ करते हैं।

संस्कृत गद्य का वैशिष्ट्य

संस्कृत भाषा का गद्य साहित्य कुछ अपनी विशिष्टता लिए हुए है। आर्य-जाति के साहित्य मे गद्य का प्रथमावतार हमारी देववाणी मे ही हुआ। संस्कृत गद्य की **प्रधान विशिष्टता है—'शब्द लाघव'**। जो विचार अन्य भाषा मे पूरे लम्बे वाक्य मे प्रकट किए जा सकते है, वे संस्कृतगद्य के एक ही पद में अभिव्यक्त किये जा सकते हैं, जिसका कारण समास की सत्ता है। समास सस्कृत भाषा का प्राण है। उसने अधिक से अधिक अर्थ को कम से कम शब्दो मे अभिव्यक्त करने की योग्यता उसे प्रदान की है। ओज गुण के कारण संस्कृत गद्य मे विचित्र प्रकार की भावग्राहिता तथा गाढ-बन्धता का संचार होता है जिससे गद्य का सौन्दर्य पूरे रूप मे खिल उठता है। ओज गुण का प्रधान लक्षण है—'समास-भूयस्त्व (समास की बहुलता) और यही ओज गद्य का प्राण है। **''ओजः समासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्''**—यह उक्ति अवश्य ही आलङ्कारिक दण्डी की है, जिनका आविर्भाव गद्य-साहित्य के सुवर्ण-युग मे हुआ था, परन्तु संस्कृत गद्य की यह विशिष्टता बडे प्राचीन काल से चली आती है। इसका सद्भाव प्रथम तथा द्वितीय शतक के भी शिलालेखों मे प्रचुरता से है। पश्चिमी भारत के **प्रसिद्ध क्षत्रप रुद्रदामन** के शिलालेख को पढ़ने पर यही जान पडता है कि हम बाण की शैली से प्रभावित गद्य पढ़ रहे है, परन्तु यह गद्य बाण के लगभग पॉच सौ वर्ष पहले

उट्टङ्कित किया गया था। **हरिषेण** की प्रयागप्रशस्ति का गद्य भी इसी प्रकार प्रौढ, समासबहुल तथा उदात्त है। विजयस्तम्भ के वर्णन मे कवि की यह उक्ति सदा विदग्धो को चमत्कृत करती रहेगी—

''सर्वपृथिवीविजयजनितोदयव्याप्तनिखिलावनितलां कीर्तिमितस्त्रिदशपति भवनगमनावाप्तललितसुखविचरणामाचक्षाण इव भुवो बाहुयमुच्छ्रितः स्तम्भः।''

इस शैली का प्रयोग गद्यकाव्य के लिखने मे किया जाता था, परन्तु कथानको के वर्णन मे सीधी-सादी भाषा का ही प्रयोग होता था।

गद्यकवि समासाच्छन्न शैली का तथा वर्णनाशक्ति का आश्रय लेकर संक्षिप्त कथा को अति विस्तृत रूप देने मे समर्थ हो जाते हैं। यह शैली कृत्रिम होती है, किन्तु उसके गद्य-खण्ड के काव्यात्मक सौन्दर्य मे किसी प्रकार की कमी नही आने पाती है, क्योंकि उन कवियो मे उपयुक्त शब्दचयन की क्षमता, दृश्य-निरूपण की सूक्ष्म दृष्टि एवं ध्वन्यात्मक शब्दो के प्रयोग करने की प्रवृत्ति भी उपलब्ध होती है।[1]

मैक्डोनल ने सस्कृत गद्यकाव्यो की विशेषता बताते हुए कहा है कि— 'उसमे समासो की बहुलता से शैली अत्यन्त क्लिष्ट हो जाती है, क्रियाओं का एक प्रकार से अभाव रहता है, वर्णन की प्रधानता होने से कथावस्तु सक्षिप्त होती है, यत्र-तत्र श्लेष का चमत्कार रहता है।[2]

---

1 एस0 एन0 दासगुप्ता और एस0 के0 डे 'ए हिस्ट्री ऑफ सस्कृत लिटरेचर, 1962, पृ0 236

2 ए0 ए0 मैक्डोनल 'हिस्ट्री ऑफ सस्कृत लिटरेचर', 1962, पृ0 280

वर्णन की इस प्रधानता के कारण ही संस्कृत गद्यकाव्य ग्रीक गद्यकाव्यो से भिन्न हो जाता है, क्योकि सस्कृत गद्यकाव्यो में प्रथम दृष्टि मे ही प्रेम हो जाना और स्वप्न मे प्रेमी और प्रेमिका के एक-दूसरे को देखने की कल्पना, सौभाग्य का दुर्भाग्य मे और फिर समृद्धि मे द्रुत परिवर्तन, साहसिक कार्य और समुद्र मे पोतभङ्ग, आश्चर्यजनक सौन्दर्य से युक्त नायक और नायिकाए, प्रेम और प्रकृति इन दोनो के विस्तृत वर्णन का खुला उपयोग, ये सारी बाते प्राप्त होती हैं।[1]

रोहदे और वेबर (Rohde, Weber) नामक कुछ पाश्चात्य विद्वान् सुबन्धु और बाण के गद्यकाव्यो पर ग्रीक गद्यकाव्य का प्रभाव बताते है और उनके साथ संस्कृत गद्यकाव्यो के कथानक, रूढ़ियो और कलात्मक परिवेश की तुलना करते हैं।[2] किन्तु **एल0 एच0 ग्रे** (L H. Gray) ने भारतीय और ग्रीक गद्यकाव्य दोनों मे समानता देखकर भी एक-दूसरे को प्रभावित करने वाला नही बताया है। उन्होने दोनो मे पर्याप्त अन्तर मानते हुए यह कहा है कि संस्कृत गद्य मे कथावस्तु गौण, प्रकृति एवं पात्रो के साहसिक कार्यो, मानसिक, नैतिक तथा शारीरिक गुणादि का वर्णन प्रधान होता है,जबकि ग्रीक गद्यकाव्य मे एक के बाद दूसरे असम्भाव्य साहसिक वृत्त का वर्णन ही प्रधान वस्तु है, रचना के उत्कर्ष-सम्पादन की प्रायः उपेक्षा की गई है तथा प्रकृति-वर्णन और प्रकृति मे सौन्दर्यानुभूति की दृष्टि की तो मूलतः अवज्ञा की गई है। Longus रचित Poimerika निश्चय ही उक्त अन्तिम कथन

---

1 ए0 बी0 कीथ 'ए हिस्ट्री ऑफ सस्कृत लिटरेचर', 1960 ई0 पृ0 432-433

2 ए0 बी0 कीथ 'ए हिस्ट्री ऑफ सस्कृत लिटरेचर', पृ0 433, 1960 ई0

का अपवाद मानी जाती है, किन्तु Longus पर Theokritos, Bion और Moschos का प्रत्यक्ष प्रभाव है, जबकि संस्कृत गद्यकाव्य मे पाया जाने वाला प्रकृति-प्रेम भारतीय भावना के अनुरूप है।[1]

एस0 के0 डे ने भी संस्कृत तथा ग्रीक गद्यकाव्यो मे अन्तर बताया है। उनकी दृष्टि मे सस्कृत गद्यकाव्य को ग्रीक-गद्यकाव्य से प्रभावित मानना बेसिर पैर की बाते होगी, क्योकि सस्कृत गद्य-काव्यकारो ने काव्य से प्रेरणा ली है तथा वे गद्यकाव्य लक्षणबद्ध होते हैं, अतः उन पर विदेशी प्रभाव पड़ने का भी कोई प्रश्न नही उठता है। संस्कृत गद्यकाव्यो मे भावो एवं अन्य वस्तुओं का आलङ्कारिक वर्णन रहता है, जबकि ग्रीक कथाओं मे स्पष्टवादिता रहती है।[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि सस्कृत गद्यकाव्यो मे वर्णन की प्रधानता रहती है और इसके लिए कवियो को कल्पना का आश्रय लेना पडता है, परन्तु कल्पना की उडान मे बहकर वे अपने काव्य को स्वाभाविकता और वास्तविकता से रहित नही करते है। केवल सुबन्धु कृत 'वासवदत्ता' मे हम इसका व्यतिक्रम देखते है। अलङ्कारो तथा दीर्घकाय समासो के प्रयोग के लोभ मे सुबन्धु औचित्य की सीमा का अतिक्रमण कर बैठते है और इस

---

1 ए0 बी0 कीथ 'ए हिस्ट्री ऑफ सस्कृत लिटरेचर', पृ0 437-438, 1960 ई0

2 एस0 एन0 दासगुप्ता और एस0 के0 डे 'ए हिस्ट्री ऑफ सस्कृत लिटरेचर', पृ0 202

कारण रस का आस्वादन दुर्लभ हो जाता है।[1]

महाकाव्य की भाँति गद्यकाव्य मे भी **वीर या शृङ्गार रस प्रधान** होता है, नायक-नायिकाओं के सौन्दर्य, राजाओं के वैभव, शिक्षा, मृगया, युद्ध, विजयादि का वर्णन होता रहता है तथा यथास्थान प्रकृति-चित्रण भी रहता है, जैसे कादम्बरी तथा शिवराजविजयादि मे। फिर भी सर्गबद्धता एव गद्य और पद्य की दृष्टि से दोनो पूर्णतया भिन्न है। छन्दोबद्ध होने के कारण पद्य की रचना मे कवि स्वेच्छानुसार शब्दो का प्रयोग नही कर सकता है, उसे छन्दानुकूल शब्दो का ही प्रयोग करना पड़ता है, पर यह बात गद्य मे नही है। गद्य मे यदि यथोचित शब्द का प्रयोग न किया जाय तो यह नही कहा जा सकता कि क्या करे छन्द मे परवश हैं। गद्यकवि को पद्यकवि की भांति शब्दो के तोड-मरोड़ करने की स्वतन्त्रता नही रहती है, अपितु प्रत्येक शब्द के विन्यास में सावधानी रखनी पड़ती है।

---

1 द्रष्टव्य—'अथ स कदाचिदवसन्नाया यामवत्या दधिधवलकाल क्षपणकग्रासपिण्ड इव, निशायमुनाफेनपुञ्ज इव मेनकानखमार्जन धवलशिलाशकल इव, अपरजलधिपयसि शङ्खकान्तिकामुक इव मज्जति कुमुदिनीनायके, शिशिरहिमशीकरकर्दमितकुमुदमध्यबद्धचरणेषु षट्चरणेषु, कलप्रलापपरागबोधितचकिताद्विसारिकासु सारिकासु, अस्तगिरिशिखरेष्विव पतत्पतङ्गेषु प्रदीपेषु, प्रियैरालिङ्गद्यमानासु कामिनीषु, आन्दोलितकुसुमकेसरे, केसरेणुमुषि रणितनूपुरमणीना रमणीनाम्, विकचकुमुदाकरे मुदाकरे सङ्गभाजि, प्रियविरहितासु रहितासु सुखेन मुर्मूरचूर्णमिव समन्तादर्पके, दर्पकेषु दहनस्य, धवलयतेव जगदखिलम्, उत्फुल्लकमलकाननसनाथमि व गगनतल कुर्वता, दशनरत्नतुलादण्डनेव नयनामृतसिन्धुसेतुबन्धेनेव, विलोचनकुवलयभ्रमरपक्तिभ्याम् मुखमदनमन्दिर-तोरणमालिकाभ्याम्, त्रिभुवनविलोभनसृष्टिमिव प्रजापते , अष्टादशवर्षदेशीया कन्यामपश्यत्स्वप्ने।' वासवदत्ता, पृ0 31-50

संस्कृत गद्य की वर्णन-शैली अत्यधिक अलंकृत है। संस्कृत मे गद्य-लेखको ने अपने पाण्डित्य-प्रदर्शन को ही प्रधान लक्ष्य बनाया है। शास्त्रीय ग्रन्थो मे गद्य का ही साम्राज्य है। विचारनियम का तथा शास्त्रीय सिद्धान्तो के वर्णन का उचित माध्यम गद्य ही है। शास्त्रार्थ के समय तो बोलचाल की शैली का प्रयोग हम पाते है, परन्तु युक्तियो तथा तर्कों के प्रदर्शन मे हमे प्रौढ गद्य का प्रयोग उपलब्ध होता है। हमारे दार्शनिकों ने अपने विचारो को सुचारु रूप से अभिव्यक्त करने के लिए '**विचार मापक**' नवीन पारिभाषिक शब्दो की उद्भावना कर रखी है। गद्य तो विचारो को प्रकट करने का मुख्य माध्यम है, उसे बिना युक्तियुक्त तथा प्रौढ़ बनाए हम अपने दार्शनिक विचारो को यथार्थरूप मे प्रकट ही नही कर सकते। इस दृष्टि से हमारे दार्शनिकों ने अपनी शैली पर दार्शनिक गद्य की सृष्टि की है। तथ्य तो यह है कि कोमल भावो को प्रकट करने की जितनी शक्ति संस्कृत गद्य मे है, उतनी ही या उससे अधिक दर्शनशास्त्र के दुरूह तथ्यों के अभिव्यक्त करने की भी क्षमता उसमे विद्यमान है। लैटिन भाषा का गद्य बड़ा ही प्रौढ, सुन्दर तथा ओजस्वी बतलाया गया है परन्तु सस्कृत भाषा के गद्य मे ये गुण उससे कही अधिक मात्रा मे विद्यमान है। दर्शन के पेचीदे, गूढ़ तथा सूक्ष्म तत्वो का प्रतिपादन संस्कृत भाषा के द्वारा ही हो सकता है, यह जानकारों की माननीय सम्मति है। अतः देववाणी का गद्य प्राचीनता तथा प्रौढ़ता, उपादेयता तथा भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से हमारे साहित्य का एक गौरवपूर्ण अङ्ग है—इस कथन मे तनिक भी सन्देह नही।

संस्कृत के गद्यकाव्यों की विशेषताओं का समुचित कथन करते हुए

'डा0 भोलाशङ्कर व्यास' ने अत्यन्त सुन्दर विवेचन किया है। ''वस्तुतः गद्यकवि का लक्ष्य सुसंस्कृत श्रोताओ का मनोरञ्जन होता है, यही कारण है कि काव्यो की तरह ही यहाँ उदात्त अलङ्कृत आहार्य दिखाई देता है और उसी तरह कथावस्तु को गौण बनाकर वर्णनों की प्रधानता दे दी जाती है। काव्योपयुक्त लम्बे-लम्बे समास, श्लेषवैचित्र्य, अनुप्रास और अर्थालङ्कार प्राचुर्य की ओर गद्य कवि विशेष ध्यान देता देखा जाता है। वह प्रकृति—बाह्य प्रकृति तथा अन्तः प्रकृति—के वर्णन करने की ओर अधिक ध्यान देता है। काव्योपयुक्त वातावरण की सृष्टि के लिए ही इन कवियो ने प्राय प्रणयगाथा को चुना है। पर ध्यान देने की बात यह है कि प्रणयकथा के कथांश पर गद्य कवि इतना ध्यान देता दिखाई नही देता, जितना वर्णन शैली पर। संस्कृत गद्यकाव्यो की यह शैली जिस काव्य मे सर्वप्रथम दिखाई पडती है, वह है सुबन्धु की वासवदत्ता।''

गद्य साहित्य

उत्पत्ति तथा विकास

सस्कृत गद्य की परम्परा बहुत प्राचीन है। संस्कृत गद्य का दर्शन सर्वप्रथम वैदिक साहित्य मे उपलब्ध होने से संस्कृत साहित्य मे गद्यभाषा की परम्परा को वैदिक सहिताओं जितना प्राचीन कहा जा सकता है। वैदिक काल से आरम्भ कर मध्यकाल तक गद्य के विकसित होने का इतिहास बडा ही मनोरम है। संस्कृत गद्य का विकास क्रमिक हुआ है। सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य मे प्राप्त गद्य साहित्य का विकास मुख्यतया दो भागों मे विभक्त दृष्टिगोचर होता है—

1. **वैदिक साहित्य** का सीधा-सादा बोलचाल का गद्य।

2. **लौकिक साहित्य** का प्रौढ, समासबहुल गाढबन्धवाला गद्य।

वैदिक साहित्य में गद्य का विकास

वैदिक साहित्य की सीमा

वैदिक साहित्य मे चार वैदिक संहिताओं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के अतिरिक्त इनके ब्राह्मण-ग्रन्थो, आरण्यको, उपनिषदो और वेदाङ्गो को सम्मिलित किया जाता है। वेदाङ्ग छः है—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द। इन सभी से सम्बन्धित साहित्य वैदिक साहित्य की सीमा मे आ जाता है। इसके बाद के रामायण, महाभारत, पुराणो तथा अलङ्कृत शैली के परवर्ती काव्यो को लौकिक साहित्य मे सम्मिलित किया जाता है।

वैदिक साहित्य में गद्य

ऐतिहासिक गवेषणाओ से प्रतीत होता है वैदिक सहिताओं म ही गद्य का प्रथम विवेचन किया गया है। गद्य से मिश्रित होने के कारण ही कृष्णयजुर्वेद का कृष्णत्व है। प्राचीनतम गद्य का उदाहरण इसी कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय सहिता मे उपलब्ध होता है। इस संहिता मे गद्य-भाग पद्य की अपेक्षा मात्रा मे कथमपि न्यून नही है। इस वेद की अन्य संहिताओं—जैसे काठक संहिता, मैत्रायणी संहितादि—मे भी गद्य की सत्ता उस मात्रा मे है। शुक्ल-यजुर्वेद मे भी कुछ गद्यात्मक मन्त्र है, जिन्हे **'यंजूषि'** कहा गया है। कृष्ण-यजुर्वेद मे मन्त्रो के विनियोग और यज्ञ सम्बन्धी क्रियाओं की व्याख्या

तथा प्रशंसा का भाग गद्य मे है जो प्राय· अधिक मात्रा मे है। कृष्ण-यजुर्वेद का गद्य वैदिक कर्मकाण्ड की व्याख्या से सम्बन्धित होने के कारण प्राय ब्राह्मण ग्रन्थो की शैली का है। कालक्रम मे कुछ आगे चलकर अथर्ववेद का गद्य है, जिसमे गद्याश प्रचुर मात्रा मे है। यहॉ गद्य सम्पूर्ण अथर्ववेद का लगभग छठा भाग है। अथर्ववेद के 15वे और 16वे कांड मे गद्याश पाये जाते हैं। संहिताओं के बाद गद्य का प्रचुर प्रयोग ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद ग्रन्थो मे हुआ है। समग्र ब्राह्मणो विशेषतया ऐतरेय, ब्राह्मण, तैत्तिरीय ब्राह्मण एव गोपथ ब्राह्मण मे गद्य का बहुल प्रयोग किया गया है। ब्राह्मणो मे प्रयुक्त गद्य वैदिक मन्त्रो का यज्ञपरक व्याख्यान है। इन ब्राह्मण ग्रन्थों में वैदिक मन्त्रो की विस्तृत व्याख्या, प्राचीन आख्यान तथा कर्मकाण्ड विधि का वर्णन होने के कारण गद्य शैली का प्रयोग ही अधिक युक्तिसगत था। ब्राह्मण ग्रन्थों के पश्चात् आरण्यको और उपनिषदो मे भी गद्य का पर्याप्त प्रयोग किया गया है। लेकिन आरण्यको और उपनिषदो मे मुक्त चिन्तन की अभिव्यक्ति का माध्यम बनकर गद्य प्रवाह और प्रभाव के साथ प्रकट होने लगता है। इस प्रकार वैदिक साहित्य मे गद्य का प्रयोग बहुत ही व्यापक, उदार तथा उदात्त रूप मे हुआ है।

वैदिक गद्य की विशेषता

वैदिक गद्य की मुख्य विशेषता यह है कि इसमे सरलता, स्वाभाविकता, रोचकता तथा प्रवाहशीलता है। जिससे इस गद्य मे एक विशिष्ट सारवत्ता, सौन्दर्य तथा मोहकता के दर्शन होते है। वैदिक गद्य मे सीधे-सादे, छोटे-छोटे शब्दो का प्रयोग मिलता है। वाक्य छोटे-छोटे, चुस्त तथा मुहावरेदार हैं।

वाणी के पीछे-पीछे अर्थ जैसे भागता हुआ चलता है। 'ह', 'वै', 'उ' आदि अव्यय वाक्यालङ्कार के रूप मे प्रयुक्त है। इनके प्रयोग से वाक्य मे रोचकता तथा सुन्दरता का समावेश हो जाता है। समासो का प्राय अभाव है जिससे समासो का सामान्य प्रयोग ही दिखलाई पड़ता है। पदो से अर्थ निकालने मे अत्यधिक माथापच्ची नही करनी पडती है। यह गद्य प्राञ्जल और प्रवाहपूर्ण है।[1] उदाहरणो का बहुल प्रयोग है। उपमा तथा रूपक का कमनीय सन्निवेश वैदिक गद्य को विदग्धो की दृष्टि मे हृदयावर्जक बनाये है।[2]

ऋग्वेद में गद्य की न्यूनता

संस्कृत भाषा मे काव्य का प्राचीनतम स्वरूप ऋग्वेद की ऋचाओं मे मिलता है। विद्वानो की दृष्टि में विश्व वाङ्मय मे ऋग्वेद के समान प्राचीन अन्य कोई काव्य जातीय ग्रन्थ नही है। ऋग्वेद और सामवेद मे गद्य के दर्शन की आशा नही करनी चाहिए, क्योकि इनमे वस्तुतः ऋचाओं और गीतो का क्रमश सकलन है। प्राचीनतम सहिता ऋग्वेद मे यद्यपि गद्य-शैली के दर्शन नही होते, तथापि कतिपय पाश्चात्य विद्वान् मानते हैं कि ऋग्वेद के सवाद सूक्त मूलतया गद्य-पद्य सम्मिलित थे, किन्तु कालान्तर मे शनै -शनैः उनका गद्य-भाग लुप्त हो गया। प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् **'ओल्डनबर्ग'** के अनुसार ऋग्वेद मे पहले पर्याप्त गद्य था, पर बाद मे कण्ठाग्र करने के

---

1 शुक्लयजुर्वेदमाध्यन्दिनसहिता, अध्याय 22, कण्डिका 22

2 अथर्ववेद 15 काण्ड, 1 सूक्त

कारण पद्य ही शेष रह गये। यह मत सर्वमान्य होते हुए भी उपेक्षणीय नही है।

ब्राह्मण ग्रन्थों का गद्य

ब्राह्मणो का कार्य वैदिक स्तुति और प्रार्थना मे किये जाने वाले विधि-विधान की व्याख्या करना है। कर्मकाण्ड सम्बन्धी विवेचना करना इनका मुख्य उद्देश्य है। यज्ञ-अनुष्ठान की विधियो के साथ-साथ कही-कही वैदिक मन्त्रो की व्याख्या एव यज्ञ-क्रिया से सम्बन्धित बहुत से क्लिष्ट एव अस्पष्ट शब्दो की व्युत्पत्तियाँ भी इनमे दी गई हैं। साथ ही अनेक परम्परा प्राप्त प्राचीन आख्यानो का वर्णन किया गया है। यह सम्पूर्ण कार्य गद्य मे ही किया गया है।

ब्राह्मण ग्रन्थो के गद्य की एक विशिष्ट शैली है जिसका लौकिक संस्कृत के गद्य मे प्राय अभाव है। यहाँ आख्यानो मे वक्ता के उपपाद्य विषय को प्राय· उसी के शब्दो मे रखा गया है। अतः वर्णनात्मक भागो मे प्रायः संवादो जैसा आनन्द प्राप्त होता है। भाषा बोलचाल जैसी है अत· 'ह', 'वाव', 'वै', 'खलु' आदि अव्ययो के प्रयोग का बाहुल्य है। शैली समासरहित और सरल है और वाक्य छोटे-छोटे है। ब्राह्मण ग्रन्थो की भाषा पाणिनि-व्याकरण के नियमो का अनुसरण नही करती जिससे इनकी प्राचीनता सिद्ध होती है।

ब्राह्मण ग्रन्थो के पद्य का एक नमूना द्रष्टव्य है—

'अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमस्तदन्तरेण सर्वा अन्या देवताः। आग्नावैष्णवं

पुरोडाशं निर्वपन्ति दीक्षणीयमेकादशकपालं सर्वाभ्य एवैनं तद्देवताभ्योऽनन्तरायं निर्वपन्ति।'[1]

ब्राह्मणो के पिछले भाग को आरण्यक कहा जाता है। जिनमे कर्मकाण्ड के स्थान पर ज्ञानकाण्ड प्रधान हो गया है। आरण्यक मे यज्ञो की रहस्यात्मक व्याख्या है। इनकी भाषा भी गद्यमय और सरल है, किन्तु यह लौकिक सस्कृति के अधिक निकट है।

उपनिषदों का गद्य

उपनिषद् यद्यपि ब्राह्मणो के ही अन्तिम रूप है किन्तु इनका प्रतिपाद्य ब्राह्मणो के आरम्भिक विषय से नितान्त भिन्न है। जहाँ ब्राह्मणो मे वैदिक कर्मकाण्ड का ही विवेचन और आख्यान है वहाँ उपनिषदो में आरण्यको द्वारा दिखलाई गई दिशा-ज्ञानमार्ग का चरम विकास हुआ है। कर्मकाण्ड का विरोध न करते हुए भी उपनिषदो मे उसकी उपेक्षा की गई है और अधिक बल ज्ञानकाण्ड पर ही दिया गया है। ऋषियो मे यहॉ सत्य की खोज के प्रति आकुल जिज्ञासा लक्षित है और उन्होने ससार की प्रवर्तक शक्ति को अपने अन्तर मे ही खोज निकाला है।

उपनिषदों में प्राचीन उपनिषद् :

वृहदारण्यक, छान्दोग्य तैत्तिरीय और कौषीतकी, जिनका समय बुद्ध के पूर्व है, प्रायः गद्य मे है। इनकी भाषा ब्राह्मण-ग्रन्थो की भाषा के समीप है।

---

1 ऐतरेय ब्राह्मण—1

छान्दोग्य उपनिषद् का एक उदाहरण विवेचित है—

"यत्र नान्यत् पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद् विजानाति तद् भूमा। अथ यत्रान्यत् पश्यति अन्यच्छृणोति अन्यद् विजानाति तदल्पं यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्प तन्मर्त्यम्।"[1]

केनोपनिषद् का कुछ भाग गद्य मे और कुछ पद्य में है। अर्वाचीन उपनिषदो मे भी 'प्रश्न', 'मैत्रायणी' और 'माण्डूक्य' भी गद्यमय है। इनकी भाषा प्राचीन उपनिषदो की अपेक्षा परिष्कृत और लौकिक सस्कृत के अधिक समीप है।

उपनिषदो का गद्य ब्राह्मणो की तरह सरल होता हुआ भी उतना रूखा नही है। यह अधिक आकर्षक तथा सजीव है। इसका कारण सम्भवत. इसका प्रतिपाद्य विषय है जिसमे ऋषियो के मन की स्वच्छता साकार हो गई है। उपनिषदो के गद्य मे लम्बे समासो का अभाव है, आख्यात रूपो की प्रचुरता है और पदो की सुन्दर पुनरुक्ति है। उपनिषदों मे गद्य का प्रयोग कथनोपकथन के रूप मे किया गया है जिससे अगत्या स्फुटार्थता को आश्रय देना पडा। स्फुटार्थता के साथ-साथ अधिक मात्रा मे भावाभिव्यक्ति की शक्ति भी कथोपकथन के द्वारा ही मिली। यथा—

"श्वेतकेतुर्हारूणेय आस त ह पितोवाच श्वेतकेतो वस ब्रह्मचर्यम्। न वै सौम्यास्मत्कुलीनोऽननूच्य ब्रह्मबन्धुरिव भवति। स ह द्वादशवर्ष उपेत्य चतुर्विंशतिवर्षः सर्वान् वेदानधीत्य महामना अनूचानमानी स्तब्ध एयाय। त ह

---

1 छान्दोग्योपनिषद्—7/24

पितोवाच, श्वेतकेतो यन्नु सोम्येद महामना अनूचानमानी स्तब्धोऽस्युत तमादेशमप्राक्ष्य.।''[1]

सूत्र-ग्रन्थों का गद्य :

वैदिक कर्मकाण्ड की व्याख्या में छः वेदाङ्गो का विकास हुआ जिनमे वैदिक कर्मकाण्ड से सीधा सम्बन्ध रखने वाला वेदाङ्ग 'कल्प' है। कल्प साहित्य का विभाजन दो वर्गो मे किया गया है—1. श्रौतसूत्र और 2 गृह्यसूत्र। इन सूत्र ग्रन्थो मे हमे सर्वप्रथम गद्य की सक्षिप्त शैली के दर्शन होते हैं। यह सक्षेपीकरण की प्रवृत्ति बढ़ती गई। और इसका **चरम विकास पाणिनि की अष्टाध्यायी** मे दृष्टिगोचर होता है। इस सूत्र शैली मे कम से कम शब्दो मे अधिक से अधिक अर्थो को—गागर मे सागर—को भरने का प्रयत्न किया गया है। क्रियापदो का इस शैली मे अभाव रहता है। यास्क का निरुक्त इसी शैली मे है। पाणिनि के सूत्र इस शैली के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। भारतीय षड्दर्शनो के मूल ग्रन्थ भी इसी सूत्र-शैली मे लिखे गये हैं। सम्भवतः संक्षेपीकरण की इसी प्रवृत्ति का विकास आगे चलकर संस्कृत-गद्य की समास बहुला शैली मे हुआ।

लौकिक संस्कृत का गद्य-साहित्य

वैदिक गद्यो द्वारा मार्ग के प्रशस्त किये जाने पर लौकिक गद्य का अवतार हुआ। यह गद्य पाणिनि के व्याकरण की दृष्टि से नितान्त शुद्ध और परिष्कृत था। अलङ्कृत शैली के गद्य का आरम्भ लौकिक संस्कृत के युग

---

1 छान्दोग्योपनिषद्—6/1-2

मे हुआ। यह आरम्भ मूलत कब हुआ इसके सम्बन्ध में आज निश्चित रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता। लौकिक संस्कृत युग के गद्यकारो मे कई प्रभावशाली व्यक्तित्व सामने आते है, जिन्होने गद्य को इतना सुष्ठु, परिमार्जित तथा सुन्दर बना दिया कि उसको पढ़ने मे पद्य जैसा रस आने लगा। इन गद्यकारो मे सुबन्धु बाणभट्ट एवं दण्डी प्रमुख है। इनके द्वारा प्रयुक्त प्राजल गद्य को निहार कर यह सहज ही अनुमान हो जाता है कि उनसे पूर्व भी अच्छे गद्य-लेखक रहे होगे। परन्तु आज उनके नाम एवं रचनाओं के सम्बन्ध मे कुछ भी ज्ञात नही है।

संस्कृत का विशाल वाङ्मय अधिकांशतः पद्यबद्ध है। गद्य-साहित्य विशेष रूप से अलङ्कृत गद्य-साहित्य अपेक्षाकृत बहुत कम है। जितना भी लौकिक संस्कृति का गद्य-साहित्य है उसको दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है—

(1) व्याकरण, वैद्यक, नीतिशास्त्र और दर्शनादि विषयो के लिए प्रयुक्त '**विवेचनात्मक गद्य**' जिसके लिए अनलङ्कृत शैली का उपयोग किया गयाहै।

(2) नाटको, चम्पूकाव्यो और गद्य-काव्यो मे प्रयुक्त '**काव्यात्मक गद्य**' जो अलङ्कृत शैली मे है।

अनलङ्कृत शैली का गद्य :

लौकिक सस्कृत के अनलङ्कृत गद्य का प्राचीनतम रूप पतञ्जलि के महाभाष्य मे उपलब्ध होता है। पतञ्जलि की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि

उन्होने व्याकरण जैसे नीरस और गहन विषय को भी अपनी उक्ति-प्रत्युक्ति की शैली द्वारा सुगम और आकर्षक बना दिया है जिसमे आख्यान साहित्य जैसा आनन्द प्राप्त होता है। पतञ्जलि ने अपने समय के शिष्ट जनो की भाषा का प्रयोग किया है। उसमे आडम्बर और अलङ्करण का तनिक भी प्रयास नही है। भावाभिव्यक्ति सरल और प्राजल है। न तो उसमे पाणिनि जैसा सक्षेपीकरण है और न समास-बहुलता ही। उन्होने कृत्रिमता का परिहार किया है और सरलता एव मनोरमता को ग्रहण किया है।

पतञ्जलि के महाभाष्य के अतिरिक्त षड्दर्शनो के सूत्रग्रन्थो पर लिखे गये भाष्यो मे भी हमे गद्य के दर्शन होते है। यह गद्य दार्शनिक गम्भीरता लिए हुए भी स्वच्छ और स्पष्ट है। इस प्रकार के दार्शनिक गद्य के विशिष्ट उदाहरण हैं—मीमांसा सूत्रो पर शबर-स्वामी का भाष्य, न्यायसूत्रो पर वात्स्यायन का भाष्य, वेदान्तसूत्रो पर शङ्कराचार्य का भाष्य और योगसूत्रो पर व्यास का भाष्य। इनमे सर्वश्रेष्ठ गद्य के दर्शन होते हैं शङ्कराचार्य के भाष्यो मे। शङ्कराचार्य की भाषा गम्भीरता लिए हुए भी सुस्पष्ट है। उनके वाक्य सारगर्भित, प्रौढ़ और प्राजल है। शैली विवेचनात्मक तथा तर्क-प्रवण है। व्यङ्ग्य-विनोद के तीखेपन के लिए जयन्त की न्यायमंजरी विशेष उल्लेखनीय है। यह दार्शनिक गद्य भी जिसका आरम्भ सरलता और स्पष्टता लिए हुए था धीरे-धीरे क्लिष्टता की ओर बढता गया और गगेश से प्रारम्भ हुए नव्य-न्याय के ग्रन्थो मे इसने अपने ढंग की क्लिष्ट शैली की चरम परिणति को प्राप्त कर लिया। उनकी जटिल शैली मे ग्रन्थ का मूल अभिप्राय भी प्राय· शब्दाडम्बर मे खो जाता है।

वैद्यक शास्त्र, अलङ्कारशास्त्र और कौटिल्य के अर्थशास्त्रादि शास्त्रीय ग्रन्थो मे एक विशेष शैली का प्रयोग किया गया है जिसमे मुख्य विषय का विवेचन तो गद्य मे हुआ है किन्तु दृष्टान्त अथवा सारांश रूप मे पद्यो का प्रयोग किया गया है। शास्त्रीय ग्रन्थो का गद्य सूत्र शैली से प्रभावित है। उसमे पारिभाषिक शब्दो और लम्बे समासों की बहुलता है।

अलङ्कृत शैली का गद्य :

लौकिक सस्कृत के अनलङ्कृत गद्य का प्राचीनतम रूप हमे पतञ्जलि के महाभाष्य मे उपलब्धहोता है किन्तु अलङ्कृत शैली का गद्य सस्कृत के नाटको, चम्पूकाव्यो और गद्यकाव्यो में प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार के गद्य का उद्भव कब और कैसे हुआ यह ठीक-ठीक कहना कठिन है। इसके कुछ रूप हमे प्रशस्तियो मे भी प्राप्त होते हैं। सम्भवतः वही से इनका विकास हुआ हो क्योकि प्रशस्तियाँ केवल तथ्यविरूपणात्मक न होकर अत्युक्तियो से पूर्ण होती है।

पौराणिक, शास्त्रीय तथा साहित्यिक गद्य :

लौकिक गद्य का एक अन्य दृष्टिकोण से विभेद करने पर इसके मुख्यतया तीन भेद होते है—

(1) पौराणिक गद्य (2) शास्त्रीय गद्य (3) साहित्यिक गद्य

(1) पौराणिक गद्य : यह गद्य महाभारत, श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण तथा कतिपय पुराणो मे उपलब्ध होता है। पुराणो का अधिकांश भाग तो पद्यमय है किन्तु बीच-बीच मे गद्याश भी प्राप्त होते है। विद्वानो के मतानुसार

वैदिक गद्य तथा लौकिक सस्कृत के गद्य को मध्य मे मिलाने का काम 'पौराणिक गद्य' करता है। क्योकि इस पौराणिक गद्य मे दोनो ही गद्य रूपो की विशेषताए प्राप्त होती है। एक ओर वैदिक गद्य के समान इसमे लघुबन्ध आर्ष प्रयोग तथा भाषा का सहज प्रवाह है तो दूसरी ओर लौकिक गद्य के समान अलड्कारप्रियता एव प्रौढ़ि भी है। यह गद्य नितान्त आलङ्कारिक तथा प्रासङ्गिक है। अलड्कृत होने के कारण इसमे साहित्यिकता के दर्शन होते है। इसमे साहित्यिक गद्य का समग्र सौन्दर्य विद्यमान है। उसमे विशेष गाढबन्धता की कमी अवश्य है परन्तु भागवत का गद्य तो नितान्त प्रौढ, अलकृत तथा भावाभिव्यञ्जक है। विष्णुपुराण का गद्य तो विशेषतया प्रासादिक एवं प्रांजल है। एक उदाहरण देखिए—

"यथैव व्योम्नि वह्निपिण्डोपम त्वामहमपश्यं तथैवाद्याग्रतो गतमप्यत्र भगवता किञ्चिन्न प्रसादीकृत विशेषमुपलक्ष्यामीत्युक्ते भगवता सूर्येण निजकण्ठादुन्मुच्य स्यमन्तकं नाम महामणि वरमवतार्य एकान्ते न्यस्तम्।"[1]

शास्त्रीय गद्य :

इसके अन्तर्गत ग्रन्थ, भाष्य एवं व्याकरणशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ आते है। शास्त्रीय ग्रन्थ का प्रारम्भ एव विकास सूत्रग्रन्थो की परम्परा मे हुआ। हमारे समग्र दर्शनग्रन्थ पद्य मे ही लिखे गये है और उनमे अपने अर्थ-प्रकटन की योग्यता सुचारु रूप से विद्यमान है, परन्तु अर्थो की अभिव्यक्ति चरम लक्ष्य होने के कारण इन ग्रन्थकारो का ध्यान शब्दगत सौन्दर्य रखने की ओर कम

---

1 विष्णुपुराण—4/13/4

गया है। शब्द रूखे सूखे भले हो मनोगत भावो को उन्हे प्रकट करना चाहिए। परन्तु इन दार्शनिको के बीच कतिपय ऐसे भी ग्रन्थकार है जिनका गद्य विशुद्ध साहित्यिक गद्य के समान रस-पेशल तथा सुन्दर है। इन दार्शनिको की अपनी विशिष्ट शैली है, जिसका प्रयोग उन्होने अपने ग्रन्थो मे किया है। दर्शनशास्त्र के क्षेत्र मे शास्त्रीय गद्य की अवतारणा करने वाले ऐसे शास्त्रकारो मे कालक्रम से चार को सुन सकते हैं—(1) पतञ्जलि (2) शबरस्वामी (3) शङ्कराचार्य (4) जयन्त भट्ट। प्रौढ मीमांसक शबरस्वामी का कर्ममीमांसाभाष्य, अतल प्रतिभा के विद्वान् शङ्कराचार्य कृत 'ब्रह्मसूत्र', 'गीता' तथा उपनिषदो के भाष्य और सुप्रसिद्ध नैयायिक पण्डित जयन्त भट्ट कृत न्यायमञ्जरी आदि दर्शनग्रन्थ गद्य का परिष्कृत एवं सुसंस्कृत रूप उपस्थित करते है।

दर्शनशास्त्र के अति सूक्ष्म एवं रहस्यमय सिद्धान्तो का प्रतिपादन करने वाले उक्त तीनो भाष्यकारो का गद्य असाधारण पारिभाषिक शैली मे लिखा गया था। उसमे दुरूहता एवं पाडित्य की अधिकता थी, जिसका प्रयोग किए बिना दर्शन के क्लिष्ट विचारो का प्रतिपादन करना सम्भव नही था। अतः भाष्य शैली का यह दार्शनिक गद्य आगे प्रसिद्धि एवं लोकप्रियता न प्राप्त कर सका।

शबरस्वामी (400 ई0), शङ्कराचार्य (700 ई0) और जयन्त भट्ट (900 ई0) के भाष्यो मे मजी हुई शास्त्रीय शैली के गद्य का परिनिष्ठित रूप दृष्टिगोचर होता है। ये विद्वान् अपने शास्त्र के महनीय आचार्य है, पर साथ ही साथ इनका गद्य नितान्त उदात्त तथा विशेष प्रांजल है। इसे पढ़ते समय

हमे तनिक भी भान नही होता कि इनमे किसी दुरूह विषय का प्रतिपादन किया जा रहा है। इसी प्रकार ज्ञान-विज्ञान की अन्य भी अनेक शाखाओं मे सुदूर अतीत की किसी अज्ञात कला से ही गद्य विचाराभिव्यक्ति का माध्यम रहा है।

इस समय तक गद्य का प्रयोग केवल व्यवहार भाषा के रूप मे ही होता रहा, काव्य-भाषा के रूप मे उसका प्रयोग नही होता था। इसी कारण से उसमे चमत्कार लाने के लिए कोई प्रयास नही किया गया। महर्षि पतञ्जलि की महाभाष्य लिखने की शैली विलक्षण है। यह महाभाष्य संस्कृत गद्य वाङ्मय का एक रत्न है। व्याकरण जैसे नीरस शास्त्र का ऐसा सरल प्रवाह पूर्ण और जीवन्त व्याख्यान दुर्लभ है। यह व्याकरण का आकर ग्रन्थ तो है ही, साथ ही साथ अनेक शास्त्रो का पिण्डीभूत सिद्धान्त-द्योतक भी है। पतञ्जलि परिचित विषयो पर भी नई बात बतलाने से नहीं चूकते। उनकी भाषा बोलचाल की और गद्य की रमणीयता कथोपकथन की शैली मे अभिव्यक्त हुई है। ऐसा प्रतीत होता है मानो कि छात्र उनके सामने बैठे है और वे अपना सिद्धान्त उन्हे समझा रहे है। उनके गद्य की रमणीयता देखिए।

"ये पुन कार्याभावा निवृतौ तावत् तेषा यत्नः क्रियते। तद् यथा घटेन कार्य करिष्यन् कुम्भकारकुल गत्वाह कुरु घटं कार्यमनेन करिष्यामीति। न तद्वच्छब्दान् प्रयुयुक्षमाणो वैयाकरणकुल गत्वाह—कुरु शब्दान् प्रयोक्ष्य इति। तावत्येवार्थमुपादाय शब्दान् प्रयुज्यते।"[1]

---

1 महाभाष्य—पस्पशह्निक

इस महाभाष्य के गद्य को पढने से उस समय तक गद्य का जो विकास हो चुका था उसका पता चल पाता है। इस गद्य को विकसित गद्य कहा जा सकता है।

शबरस्वामी प्रौढ़ मीमांस है। उन्होने कर्म-मीमांसा के लिखे गए सूत्रो पर अपना प्रसिद्ध भाष्य **'कर्ममीमांसा भाष्य'** लिखा जिसमे सीधी-सादी, रोचक व्यास शैली का प्रयोग किया गया है।

''इच्छयात्मानमुपलभामहे। कथमिति? उपलब्धपूर्वे ह्यभिप्रेते भवतीच्छा। यथा मेरुमुत्तरेण यान्यस्मज्जातीयैरनुपलब्धपूर्वाणि स्वादूनि वृक्षफलानि न तानि प्रत्यस्माकमिच्छा भवति।''[1]

दार्शनिक शिरोमणि **शङ्कराचार्य** के गद्य की सुषमा निराली है। उनके वाक्य सारगर्भित, प्रौढ़ तथा प्रांजल है। **वाचस्पति मिश्र** जैसे विद्वान् ने उसे यथार्थतः प्रसन्न-गम्भीर कहा है। उनके गद्य मे वीणा की मधुर झंकार सुनाई पडती है। साहित्यिक माधुर्य तथा प्रसाद से पेशल यह गद्य संस्कृत भारती का सौन्दर्य है अत· उसमे साहित्यिकता के दर्शन होते हैं। उनके एक-एक वाक्य पर गद्य के पोथे निछावर किये जा सकते है। एक सारगर्भित वाक्य है—

'नहि पद्भ्यां पलायितुं पारयमाणो जानुभ्यां रंहितुमर्हति।'

अर्थात् पैरो से भागने मे समर्थ व्यक्ति के लिए घुटनो के बल रेगना शोभा नही देता। आचार्य का गद्य मात्रा मे भी अधिक है। ब्रह्मसूत्र, गीता

---

1 कर्ममीमासाभाष्य, 1/1/15

तथा उपनिषदो का भाष्य लिखना उनके विशेष रचना-चातुर्य का द्योतक है। आचार्य के गद्य की असामान्य सुषमा नितरां अवलोकनीय है—

"सर्वो हि पुरोऽवस्थिते विषये विषयान्तरमध्यवस्यति, युष्मत्प्रत्ययापेतस्य च प्रत्यगात्मनोऽविषयत्व ब्रवीषि। उच्यते न तावदयमेकान्तेनाविषय·, अस्मत् - प्रत्ययविषयत्वात्। न चायमस्ति नियम , पुरोऽवस्थित एव विषये विषयान्तरमध्य वसितव्यमिति। अप्रत्यक्षेऽपि हि आकाशे बालास्तलमलिनता धध्यवस्यन्ति।"

जयन्तभट्ट न्यायशास्त्र के विख्यात आचार्य है। इनकी '**न्याय मंजरी**' न्यायदर्शन का प्रामाणिक ग्रन्थ है। इनका गद्य बडा ही सुन्दर, सरस तथा प्राजल है। न्याय तो स्वभाव से ही कठिन ठहरा, परन्तु इन्होने उसे अपनी रोचक शैली से अत्यन्त हृदयगम बना दिया है। इनके गद्य मे व्यङ्ग्य उक्तियो की काफी अधिकता है। इनकी शैली का परिचय इस उद्धरण से भली-भाति लग सकता है—

"आ क्षुद्रतार्किक सर्वधानभिज्ञोऽसि, ब्रह्मैव जीवात्मनो नहि ततोऽन्ये। न हि दहनपिण्डाद् भेदेनापि भान्त स्फुलिगा अग्निस्वरूपा भवन्ति। तद् कि ब्राह्मण एवाभिद्या? न च ब्राह्मणोऽविद्या।"

पालि गद्य :

पालि बोलचाल की भाषा थी जिसका प्रयोग भगवान् बुद्ध ने अपने उपदेशो मे किया। जनता के हृदय तक अपने उपदेशो को पहुँचाना उनका उद्देश्य था और इसलिए उन्होंने देववाणी का आश्रय छोडकर लोकवाणी का अवलम्बन ग्रहण किया। इनके गद्यात्मक उपदेश विषय को हृदयंगम कराने

के लिए पर्याप्त है। त्रिपिटको का पालि गद्य बडा ही सरल तथा सुबोध है। पुनरुक्ति की उसमे बहुलता है। पालि गद्य के दो रूप है—एक तो वह जो जातको मे मिलता है। यहस्वभाव से ही सीधा-सादा होने पर भी कथा के वर्णन मे सर्वथा समर्थ है। दूसरा गद्य नितान्त प्रौढ है, जो शास्त्रीय ग्रन्थो मे उपलब्ध होता है। **मिलिन्दपञ्हो** (मिलिन्द-प्रश्न) का गद्य इसी श्रेणी का है इसकी प्रौढता के कारण अनेक विद्वानो को इसके मौलिक होने मे सन्देह है। वे तो पूरे ग्रन्थ को सस्कृत मे विरचित होने और पीछे पालि मे अनुवाद किये जाने की कल्पना करते है। जातको की भाषा मे बोल-चाल के विशिष्ट शब्द और मुहावरो का प्रयोग दीख पड़ता है। जातक के शब्द उस युग की कल्पना है जिसमे वाल्मीकि-रामायण रचित हुआ। उदाहरण के लिए पालि के 'गोचर' तथा 'अनिय्यानिक' शब्दो को लीजिए। गोचर का अर्थ है—शिकार की खोज मे जाना। यह प्रयोग 'शशजातक' में है (अत्तनो अत्तनो गोचरट्ठाने गोचरं गहेत्वा) साथ ही साथ वाल्मीकि मे भी उपलब्ध है—गोचरं गतयोर्भ्रात्रोरपनीता त्वयाऽधम (सुन्दरकाण्ड)। 'अनिय्यानिक' का अर्थ है असुखकर, दुःख देने वाला। वाल्मीकि ने 'निर्याण' का प्रयोग सुख के अर्थ मे किया है। निर्याणमिति मे मति (सुन्दर-काण्ड)। पालि के सरल गद्य का अवतरण देखिए—

''अतीते वाराणसिय ब्रह्मदत्ते रज्ज कारेन्ते बोधिसत्तो ससयोनिय निब्बत्तित्वा अरञ्जे वसति। तस्स पन अरञ्जस्य एकतो पब्बतपादो, एकतो नदी, एकतो पज्जन्तगामको। अपरे पिस्स तयो सहाया अहेसु मक्कटो, सिगालो उग्गा ति।''

प्रौढ़ पालि गद्य का सुन्दर नमूना देखिए—

"बुद्धान विञ्जन वधानेन समन्नागतान सन्दस्सेन्तो नवङ्गजिन सासनस्तन उपदिसन्तो धम्ममग्ग धारेन्तो धमपज्जोत उस्सापेन्ती धम्मयूपं, यजन्तो धम्मयागं, पग्गण्हन्तो धम्मद्धज, उस्सापेन्तो धम्मकेतु, धमेन्तो धम्मसंख आहनन्तो धम्मभेरि, सीहनाद सागलनगर अनुप्पतो होति।"[1]

साहित्यिक गद्य :

गद्य को अलंकृत शैली मे प्रस्तुत करने का प्रारम्भ भी ईस्वी सन् से बहुत पूर्व होचुका था। ई0 पू0 दूसरी शताब्दी[2] के भरत के नाट्यशास्त्र मे दाक्षिणात्यो द्वारा गद्य के जीवातुभूत ओजः समासभूयस्त्व का आख्यायिकाओं मे प्रयोग वर्णित है।[3] इससे प्रमाणित होता है कि सुबन्धु आदि के काव्यों में दिखाई देने वाला गद्य बहुत पहले ही जन्म लेकर गद्य काव्यों में प्रौढ़ हो रहा था। पहली या दूसरी सदी[4] के बौद्ध ग्रन्थ **'ललितविस्तर'** मे लम्बे-लम्बे समासो तथा उपमा अनुप्रासादि साधारण अलङ्कारों का पर्याप्त प्रयोग मिलता है।[5] यही नही शैली भी परिमार्जित तथा प्रवाहपूर्ण है। पहली दूसरी सदी[6] के लगभग के ही एक अन्य बौद्ध ग्रन्थ अवदान शतक मे भी साहित्यिक गद्य

---

1 मिलिन्दपञ्हो पृ0 23, बाहिरकथा

2 जोर्नल ऑफ एशियाटिक सोसायटी आफ बगाल, 1913, पृ0 307

3 नाट्यशास्त्र—16/99

4 मिथिला विद्यापीठ से प्रकाशित ललितविस्तर की प्रस्तावना मे डा0 पी0 एल0 वैद्य का लेख।

5 ललितविस्तर—निदानपरिवर्त प्रथम मि0 विद्या0 प्रकाशन 2018

6 अवदानशतक प्रस्तावना, पृ0 स0 10, मिथि0 विद्या0 प्रकाशन

शैली की पर्याप्त विकसित स्थिति का निदर्शन प्राप्त होता है।[1] इसमे अनुप्रासादि की भी विच्छित्ति जैसी और जितनी उस समय और एक धर्म ग्रन्थ मे सम्भव थी प्रकट है। धार्मिक ग्रन्थो तक मे प्रयुक्त पर्याप्त परिमार्जित अलंकृत गद्य पुन इस बात का प्रमाण है कि तत्कालीन विशुद्ध साहित्यिक प्रयोजन से लिखी गई कृतियो मे गद्य का स्वरूप निश्चय ही बाणभट्ट तथा दण्डी के गद्यो का समानधर्म रहा होगा। साहित्यिक गद्य का सर्वप्रथम रूप तो शिलालेखो मे ही पाया जाता है। दूसरी शताब्दी ई0 के **रुद्रदामन् का जूनागढ़ का शिलालेख** न केवल उस समय अलंकृत गद्य पद्य के प्रयोग का शब्दतः साक्ष्य प्रस्तुत करता है अपितु स्वयं संस्कृत साहित्यिक गद्य की अलंकृत शैली का एक अच्छा उदाहरण है। इस शिलालेख की शैली नितान्त प्रौढ़ एवं ओज गुण से पूर्ण है। लगभग इसी समय का **पुलुमावी का नासिक गुहालेख** यद्यपि प्राकृत गद्य मे लिखा गया है तथापि उससे अलकृत गद्य लेखन की परम्परा का स्पष्टतः अनुमान किया जा सकता है। **226 ई0 का नन्दसायूप अभिलेख** सस्कृत गद्य की साहित्यिक या अलंकृत शैली का एक श्लाघ्य उदाहरण प्रस्तुत करता है। इसमे अनुप्रास के साथ-साथ उपमा तथा उत्प्रेक्षा का सुन्दर सन्निवेश है। चौथी शताब्दी ई0 की सम्राट **समुद्रगुप्त की हरिषेणकृत प्रयाग प्रशस्ति** में प्राप्त गद्य अपने ओजगुण तथा अलकरण के द्वारा बाणादि की गद्य शैली का स्मरण दिलाने वाला है। वस्तुतः सस्कृत गद्यकाव्यो मे गृहीत अलंकृत शैली का विकास जानने के लिए आज हमारे पास अभिलेखो से बढकर कोई प्रमाण नही है।

---

1 अवदान शतक द्वितीय वर्ग पृ0 49, मिथि0 विद्या0 प्र0 स0 2014

अभिलेखो के अलावा मिश्र काव्यो-नाटको, विशेषकर चम्पू-काव्यो मे भी अवश्य ही सस्कृत गद्य को खूब परिमार्जित होने तथा निखरने का अवसर मिला होगा। यद्यपि सुबन्धु पूर्व युग का चम्पू-काव्य का कोई उदाहरण आज उपलब्ध नही है तथापि छठवी शताब्दी मे उत्पन्न दण्डी द्वारा एक स्वतन्त्र काव्य विधा के रूप मे इनकी स्वीकृति यह प्रमाणित करती है कि ऐसी रचनाओं का दण्डी से शताब्दियो पूर्व उद्भव हो चुका था जिनके तदानीन्तन प्रभावी और समर्थ विकास ने दण्डी को काव्य रूप मे इनके स्वतन्त्र अस्तित्व को स्वीकार करने के लिए विवश किया।

यहाँ पर इतना कह देना अप्रासङ्गिक नही होगा कि गद्य-काव्य का प्रभात पद्य-काव्य के आँगन मे हुआ, पद्य-काव्य के क्षेत्र मे मँजी हुई प्रतिभा का वरदान लेकर गद्य-निर्माण की दिशा मे बढ़ने वाले विद्वानो को अलङ्कार, रीति आदि के सम्पूर्ण सौष्ठव का पूरा परिचय था, अत· गद्यकाव्य का पहला दिग्दर्शन भी अति प्रशस्त हुआ। सर्वप्रथम निर्मित रूप मे मिलने वाले गद्यकाव्य का एक उदाहरण दर्शनीय है—

"सर्वपृथिवीजयजनितोदयव्याप्तनिखिलावनितला कीर्तिमितस्त्रिदशपतिभवन-गमनावाप्तललितसुखविचरणामाचक्षाण इव भुवो बाहुरयमुच्छ्रितः स्तम्भ·।"[1]

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन मे वैदिक-साहित्य से लेकर प्रयाग-प्रशस्ति लेख तक के गद्य-साहित्य की विकासशीलता का दिग्दर्शन होता है। विकसित होकर भी गद्य-साहित्य अपनी पराकाष्ठा पर बाण की रचना मे ही

---

1 हरिषेण—प्रयागप्रशस्ति—विजयस्तम्भवर्णन

पहुँच सका, इस बात पर मतभेद नही होना चाहिए। आरम्भ मे यद्यपि गद्य रचना को काव्य-कौशल का कारण माना जाने लगा था या गद्य-कृतियो को काव्य न कहकर उसको कवियो की कसौटी माना जाने लगा था, तथापि हम देखते है कि इसका परिणाम यह हुआ कि आत्मश्लाघा एवं काव्य-कौशल के लिए कवियो ने ऐसे गद्य का निर्माण किया जो समासबहुल अति दुरूह और पाण्डित्य प्रदर्शन से भरपूर था। संस्कृत गद्य लेखको मे कुछ ऐसे भी लेखक है जिनके गद्य को श्लेष का अधिक बल प्राप्त है, परन्तु केवल कठिन श्लेष की रचना मात्र से ही कोई गद्यकार अपने को अधिक उपलब्धिशाली नही सिद्ध कर सकता।

साहित्यिक गद्य के प्रकार

बाण, सुबन्धु आदि आचार्यो ने श्लिष्ट शैली को गद्य काव्य की विशेषता के रूप मे स्वीकार किया है।[1] तथा गद्यकाव्य का प्राणतत्त्व ओजोगुण बताया है जिससे गद्यकाव्य में समास-बाहुल्य का होना आवश्यक था।[2] अधिकाशत गद्य-काव्यकारो ने अपने काव्यो मे गद्यकाव्य के प्राणतत्व ओजोगुण को विशष रूप से अपनाया है, जिसका परिणाम यह हुआ कि विशेषण-विशिष्ट अलङ्कार तथा समास-बाहुल्य से समन्वित दीर्घकाय वाक्यो का प्रयोग तथा क्रिया-प्रयोग की अवहेलना एक प्रकार से गद्य-काव्यो की विशेषता बन गई।

---

1 हर्षचरित, 1/8

2 काव्यादर्श, 1/80

अलङ्कारकाव्यशास्त्रियो ने सस्कृत गद्य को स्वरूपगत वक्ष्यमाण विशेषताओं के आधार पर अनेकधा निरूपित किया है। **काव्यालङ्कार सूत्रकार वामन** ने गद्य के वृत्तगन्धि, चूर्ण और उत्कलिकाप्राय तीन रूपो का उल्लेख किया है।[1] अग्निपुराण मे भी चूर्णक, उत्कलिकाप्राय और वृत्तगन्धि तीन ही रूप वर्णित है।[2] किन्तु कविराज विश्वनाथ ने उक्त तीन रूपो के अतिरिक्त गद्य के एक और भेद मुक्तक का भी उल्लेख किया है। इस प्रकार उनके अनुसार गद्य के अधोलिखित चार प्रकार है—1 मुक्तक, 2. वृत्तगन्धि, 3. उत्कलिकाप्राय, 4 चूर्णक।[3] वर्तमान शताब्दी के एक उत्कृष्ट संस्कृत गद्य काव्यकार **पं० अम्बिकादत्त व्यास** ने गद्य को समास असमास तथा मिश्र इन तीन रूपों में बॉट कर पुन इसके वृत्तगन्धि अवृत्तगन्धि तथा सकीर्ण नामक भेद कहे है। उन्होने गद्य के और भी अनेक भेद बताये है।[4]

वामन ने अनाविद्ध ललितपद अर्थात् छोटे तथा स्वल्प समासो और ललित पदो वाले गद्य को चूर्ण कहा है।[5] अग्निपुराण मे चूर्णक के लक्षण मे दीर्घ समास रहितता को स्वीकार करते हुए भी अति मृदुपदावली का प्रयोग वर्जित है।[6] कदाचित् उन्हे कोमल और परुष के बीच की स्थिति ही अभीष्ट है। विश्वनाथ ने इस प्रसग मे केवल छोटे-छोटे समासो की बात कही है।[7]

---

1 काव्या० सू० वृ०, 1/3/22

2 अग्निपुराण अ० 337/9

3 साहित्यदर्पण, 6/330-31

4 गद्यकाव्य मीमासा—प० अम्बिकादत्त व्यास—काशी नागरी प्रचारिणी सभा

5 काव्या० सू० वृ०—वामन

6 अग्निपुराण, 337/11

7 साहित्यदर्पण 7/332

वासवदत्ता में चूर्णक गद्य का विवेचन :

सुबन्धु ने वासवदत्ता मे अनाविद्ध ललित पद वाले या अल्पाल्पविग्रह तथा 'नातिमृदुसन्दर्भनिर्भर' गद्य का ही सर्वाधिक प्रयोग किया है। राजा चिन्ताऐमणि के वर्णन मे, उनके पुत्र कन्दर्पकेतु के वर्णन मे, स्वप्न दृष्टकन्या के वर्णन के अन्त मे, स्वप्नदर्शन के बाद राजकुमार कन्दर्पकेतु के जागरण से लेकर मकरन्द के उपदेश और राजकुमार के निष्क्रमण के प्रसङ्ग मे थोड़ा विन्ध्यगिरि के वर्णन मे, विन्ध्याटवी और जम्बतरु के सक्षिप्त वर्णनो मे, शुक-सारिका वार्ता और कुसुमपुर वर्णन मे, थोडा भागीरथी वर्णन के अन्त मे, थोड़ा शृङ्गारशेखर नामक नृप के वर्णन मे, शृङ्गारशेखर के जनपदो की दशा के वर्णन मे, रानी अनङ्गवती वासवदत्ता की उत्पत्ति तथा विवाह पराङ्मुखता के प्रसङ्ग मे[1] वसन्तागम वर्णन मे, स्वयंवर वर्णन मे, कन्दर्पकेतु को स्वप्न मे देखने से लेकर राजकुमार के विरह मे वासवदत्ता के मूर्च्छित हो जाने के वर्णन मे, थोडा-थोड़ा सूर्यास्त और सन्ध्या के वर्णनो मे, थोड़े परिहार के उपरान्त अन्धकार के वर्णन मे, चन्द्रोदय के प्रारम्भ के अन्त और पूर्णोदय प्राप्ति के वर्णन मे, मकरन्द के साथ प्रमदाओं का आलाप सुनते हुए राजकुमार के वासवदत्ता भवन प्रवेश तथा वासवदत्ता दर्शन के वर्णनो मे, वासवदत्ता के साथ राजकुमार के नगर से निकल जाने के वर्णनो मे, विन्धयाटवी प्रवेश के वर्णन के अन्त मे, राजकुमारी के अकस्मात् गायब होने पर राजकुमार के विलाप वर्णन मे, जलनिधि दर्शन

---

1 वासवदत्ता चौ0स0, पृ0 स0 107-110

वर्णन के अन्त मे, पुनः राजकुमार के देहत्याग के निश्चय और विलाप के प्रसङ्ग मे[1] यत्र-तत्र ऋतुओं के वर्णनो मे, वासावदत्ता की प्राप्ति के वर्णन मे और युद्ध के वर्णन मे[2] तथा अन्त मे वासवदत्ता की आपबीती सुनकर कन्दर्पकेतु के अपनी राजधानी मे जाकर बहुत समय तक सानन्द निवास के वर्णन मे चूर्णक प्रकार के गद्य का सुन्दर विलास देखा जा सकता है।

उत्कलिकाप्राय गद्य का लक्षण और वासवदत्ता में प्रयोग स्थल :

उत्कलिकाप्राय का लक्षण अग्निपुराण[3] साहित्यदर्पण[4] तथा काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति[5] सब मे एक सा है। ओजोगुण (समास भुयस्त्व) जिसे गद्य का प्राण कहा गया है उत्कलिकाप्राय गद्य प्रकार मे ही सम्भव है। वासवदत्ता मे चूर्णक के बाद उत्कलिकाप्राय का ही सर्वाधिक प्रयोग हुआ है।

सुबन्धु की वासवदत्ता मे उत्कलिकाप्राय गद्य का प्रयोग स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होता है। राजा चिन्तामणि के वर्णन के प्रारम्भ में, स्वप्न मे कन्या-दर्शन के वर्णन मे, कन्दर्पकेतु के खड्ग के वर्णन मे[5] विन्ध्यगिरि के वर्णन मे, इसी के अन्तर्गत रेवा के वर्णन मे, भगवती कात्यायनी और भागीरथी के वर्णन मे, कुसुमपुर के उपवनपादपो के वर्णन में, राजा शृङ्गारशेखर के वर्णन के प्रारम्भ मे, किंचित अपवाद के साथ वसन्तागम

---

1 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 240-242 पुन 244-245

2 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 252-253

3 अग्निपुराण, 337वॉ अध्याय, श्लोक स0 11

4 साहित्यदर्पण, 6/332

5 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 29-31

वर्णन मे, इसी प्रसङ्ग मे अशोक नकुलादि के वर्णन के साथ मलय पवन के सुन्दर वर्णन मे, स्वयवर मंच तथा स्वप्न मे राजकुमार कन्दर्पकेतु को देखकर मूर्च्छित होने के बाद होश मे आयी वासवदत्ता के वर्णन मे, सूर्यास्त के वर्णन मे, सन्ध्या के वर्णन मे, हाथ जोड़कर मानो चन्द्रमा को नमस्कार करते हुए अन्धकार के वर्णन मे, तारको के वर्णन मे, चन्द्रोदय वर्णन में, वासावदत्ता के नगर की ओर राजकुमार के प्रस्थान केसमय सायकालीन वायु के वर्णन मे[1] वासवदत्ता के भवन के वर्णन मे, श्मशान के वर्णन मे वासवदत्ता के साथ थके हुए राजकुमार कन्दर्पकेतु के सो जाने के वर्णन मे,[2] समुद्र के तथा समुद्र तट के वर्णन मे, यत्र कुत्रचित वर्षादि ऋतुओ के वर्णन के बाद शरद् ऋतु के वर्णन मे, और अन्ततः युद्ध के वर्णन मे उत्कलिकाप्राय गद्य की छटा अवलोकनीय है।

वृत्तगन्धि गद्य का लक्षण और वासवदत्ता में विवेचन :

जहाँ गद्य को पढने या सुनने मे छन्द की गन्ध आये वहाँ गद्य को वृत्तगन्धि कहा जाता है।[3] इस स्थिति मे गद्य मे किसी वृत्त का अंश भी प्रयुक्त मिल सकता है और यह भी हो सकता है कि किसी वृत्त का स्पष्ट लक्षण न मिले किन्तु सुनने या पढ़ने में छन्दात्मकता की प्रतीति हो। उदभयथा ऐसा गद्य वृत्तगन्धि होगा। वामन, विश्वनाथ तथा छन्दोमन्जरीकार ने वृत्त के किसी अश से युक्त गद्य को वृत्तगन्धि कहा है।[4] अग्निपुराण[5] मे

1 वासवदत्ता चौ० स०, पृ० स० 191-192

2 वासवदत्ता चौ० स०, पृ० स० 220-226

3 वामन, काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति 1/3/23 पर आचार्य विश्वेश्वर की व्याख्या

4 वामन, काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति, 1/3/23
साहित्यदर्पण, 7/331 तथा छन्दोमञ्जरी (चौ० स०) 6/4

5 अग्निपुराण 337/11

'वृत्तगन्धि' के स्थान पर 'वृत्तसन्धि' का प्रयोग मिलता है। वहाँ वृत्तछाया युक्त गद्य को वृत्तगन्धि कहा गया है और यह भी स्पष्ट किया गया है कि इसमे उत्कट शब्दावली का—अर्थात् अत्यन्त कर्कश पदो या प्रौढ समासो का प्रयोग नही होना चाहिए।

सुबन्धु के आलोच्य गद्यबन्ध वासवदत्ता मे वृत्तगन्धि या वृत्तसन्धि गद्य का भी प्रचुर प्रयोग मिलता है। सबसे अधिक सख्या आठ अक्षर वाले अनुष्टुप तथा विपुला आदि छन्दो की है। कही-कही तो पूरी अर्द्धाली यथावत मिल जाती है। इन अष्टाक्षर छन्दो की एक लम्बी सूची अधोलिखित है। प्रयत्न करने पर सूची और भी बड़ी की जा सकती है। अष्टाक्षर छन्दो के बाद वासवदत्ता मे सबसे बडी संख्या मालिक छन्द आर्या की है। आर्या के सभी चरणो के उदाहरण इस गद्यबन्ध मे विद्यमान हैं।

गद्य का अभ्युदय

संस्कृत मे गद्य का प्रयोग वैदिक काल से होता आया है जिससे संस्कृत गद्य का सर्वप्रथम रूप वेद मे देखा जाता है। वैदिक गद्य का स्वरूप कुछ बोझिल सा था उसके शब्द-विन्यास मे कुछ चिन्तन के चिन्ह नही उभरे दीख पड़ते हैं। देखिए—

"ऋतं च सत्य चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत, ततो रात्र्यजायत, ततः समुद्रोऽर्णवः, समुद्रादर्णवादधि, संवत्सरोऽजायत, अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी, सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्, दिव च पृथिवी चान्तरिक्षमथोस्वः।"[1]

---

1 ऋग्वेद, दशम मण्डल

कृष्णयजुर्वेद, ब्राह्मणग्रन्थो, उपनिषदो, निरुक्त, महाभारत और महाभाष्य प्रभृति ग्रन्थो से संस्कृत भाषा के गद्य को संवर्धनशील परम्परा उपलब्धहुई। 700 ई0 पू0 यास्क मुनि ने 'निरुक्त' की रचना गद्य में ही की थी। लौकिक गद्य का पहला निदर्शन निरुक्तो मे हुआ है—

"सर्वरसा अनुप्राप्ताः पानीयमिति यथो एतदविस्पष्टार्था भवन्तीति नैष स्थाणोरपराधो यदेनमन्धो न पश्यतीति। पुरुषापराधः स भवति। यथा जानपदीषु विद्यात· पुरुषविशेषो भवति, पारोवर्यवित्सातु खलु वेदितृषु भूयोविद्यः प्रशस्यो भवति।[1]

संस्कृत साहित्य मे गद्य का उपयोग प्रधानतया तत्त्वज्ञानसम्बन्धी दर्शनग्रन्थो, विज्ञान-विषयक ज्योतिषग्रन्थो और भाषाशास्त्रसम्बन्धी व्याकरण के ग्रन्थों आदि मे गद्य को फलने-फूलने की और अपना विकास करने की पूरी सुविधाएं प्राप्त रही। काव्य माध्यम की दृष्टि से गद्य का स्थान पद्य की अपेक्षा गौण है, और उसका प्रयोग कथाकाव्यों में, आख्यायिका ग्रन्थों में तथा आंशिक रूप से चम्पू-नाटकादि मे गद्यभाषा का प्रौढ़ रूप सामने आया।

सस्कृत गद्य का प्रयोग वैदिक युग से ही प्राप्त होने पर भी संस्कृत गद्य काव्यो के उद्भव केसम्बन्ध मे हमारा ज्ञान अत्यन्त सीमित होने से इस विषय मे कुछ भी निश्चयपूर्वक कह सकना अत्यन्त कठिन है। संस्कृत भाषा का गद्य साहित्य पद्य साहित्य की तरह अति समृद्ध कहा जा सकता है। पद्य

---

1 नैघण्टुककाण्ड

की मात्रा से गद्य की मात्राअवश्य बहुत कम है लेकिन समृद्धि की परीक्षा की मात्रा मे न होकर कोटि मे होना उचित है। सस्कृत गद्य का सर्वप्रथम रूप वेद मे देखा जाता है। संहिता ग्रन्थ गद्यबहुल है और अथर्ववेद तो अधिकांश मे गद्य ही है। संहिता-ग्रन्थो मे गद्य का जो रूप था वही रूप ब्राह्मण-ग्रन्थो मे भी रहा अन्तर इतना ही हुआ कि थोडी लोचदार भाषा को प्रश्रय मिला। जैसे—

"यदेतन्मण्डलं नयति तन्महदुक्थ ता ऋचः स ऋचा लोकोऽथ यदेतदर्चिर्दीप्यते तन्महाव्रतं तानि सामानि स साम्ना लोकोऽथ य एष तस्मिन्नमण्डले पुरुष· सोऽग्निस्तानि यंजूषि स यजुषा लोकः।"[1]

ऐतिहासिक गवेषणाओं से हमे प्रतीत होता है कि भारतीय साहित्य के प्राचीनतम अश वैदिक साहित्य मे गाथाओं का अस्तित्व बड़ी प्रभावोत्पादक रीति से स्वीकार किया गया है। ब्राह्मण ग्रन्थो के अर्थवाद के एक आवश्यक अङ्ग के रूप मे वैदिक साहित्य के क्षेत्र मे आख्यान, इतिहास एवं पुराणो का स्पष्ट उल्लेख है, जो धार्मिक सस्कारो या यज्ञ के अवसरो पर सुनाए जाते थे।[2] इन आख्यानो में गद्य के साथ जो पद्य भाग मिश्रित है, उसे गाथा कहा गया है। ऋग्वेद मे 'नाराशंसी' गाथाओं का उल्लेख दानस्तुति के रूप मे हुआ है।[3] इनके सम्बन्ध मे वहाँ कहा गया है कि ये झूठी हैं।[4] इन गाथानाराशसियो

---

1 मण्डल ब्राह्मण

2 शतपथ ब्राह्मण 13/4/3, शाख्यायान गृह्यसूत्र 1/22/11

3 ऋग्वेद, 10/85/6

4 गाथानृत नाराशसी-काठसहिता 14/5

के रचयिता, वक्ता एव प्रवक्ता तत्कालीन सूत्र थे। सूत्रो के अतिरिक्त एक दूसरी श्रेणी कुशीलवो (नट नर्तको) की भी थी जो समाज मे इन गीतो को नाच गा कर सुनाया करते थे।[1]

लोककथाओं का आरम्भ हम ऋग्वेद तथा ब्राह्मणो के आख्यानो मे ही ढूढ सकते है। ऋग्वेद मे यम-यमी सवाद, उर्वशी-पुरुरवा संवादादि आख्यानो के ही सवादात्मक रूप है। शतपथ ब्राह्मण तथा अन्य ब्राह्मण ग्रन्थो मे भी ऐसे कई आख्यान मिल सकते है। लोककथाओं का विशाल सग्रह हमे महाभारत मे मिलता है, जिसे **'अनेक उपाख्यानों का सुन्दर वन'** कहा गया है। महाभारत की ही विरासत पुराणो को प्राप्त हुई है। लोककथाओं मे किसी देश या जाति की सस्कृति तरलित रहती है, साहित्य सभ्रान्त वर्ग की चीज होती है, किन्तु लोककथाएँ अपना मूल जनता के अन्तस् मे खोजती है। मानव का सच्चा रूप हमे इनमे कही अधिक मिलता है। किसी सस्कृति की भौतिक, आध्यात्मिक तथा कलात्मक मान्यताओं का प्रभाव हमे लोककथाओं मे मिलता है। लोककथाओ मे अप्सराओं, उडनखटोलों, मानव के जीवन मे हाथ बॅटाती दिव्य शक्तियो, विघ्न डालती आसुरी शक्तियो, भवितव्यता और नियति का विचित्र वातावरण दिखाई देता है पर यह न भूलना होगा कि लोककथाओं का आदर्शात्मक वातावरण भी अपनी जड़े मानव-जीवन की यथार्थ भित्ति मे जमाये है।

लोककथाओं के आसुरी पात्र—दैत्य, राक्षस आदि पात्र—वस्तुत· असत्

---

1 एम0 विटरनित्स हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर, वाल्यूम 1, पृ0 314

वृत्तियो के प्रतीक है। लोककथाओं मे ससार के कार्य-कारणवाद को समझने की भी एक कौतूहल-वृत्ति पाई जाती है, जिसे भावात्मक रूप दे दिया जाता है। इनमे मानव जीवन की वास्तविक स्थिति पर जो सटीक व्याख्या मिलती है, वह अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यहॉ हमे एक ओर प्रणय का रोमानी वातावरण दिखाई देता है, तो दूसरी ओर सपत्नी-ईर्ष्या, मातृ स्नेह, पतिभक्त पत्नी का प्रेम, सच्चे मित्र का निष्कलुष सख्यभावादि का कौटुम्बिक वातावरण प्राप्त होता है, तीसरी ओर मानव के कार्य व्यापार मे हाथ बँटाते पशु-पक्षी और अदृश्य शक्तियो का अद्‌भुत जगत देखने को मिलता है। लोककथाओं मे मानव-जीवन की कटुता और मधुरता की एक-साथ धूप-छाही तस्वीर होती है और इनके द्वारा लोककथाकार अपने विशाल जीवन के अनुभवो से प्राप्त ज्ञान के आधार पर मानव-जीवन पर कुछ निर्णय देता देखा जाता है। यह उपदेशात्मक निर्णय कभी वाच्य रूप ले लेता है, कभी व्यङ्ग्य रूप। नीतिवादी कहानियो मे कभी-कभी यह कुछ स्पष्ट हो उठता है। पता नही, वह कौन सा दिन था जब बूढी दादी-नानी के मुॅह से सबसे पहली लोककथा वाणी के फलक पर चित्रित हो गई थी। यह एक अखण्ड परम्परा है, जो मौखिक लोक-साहित्य से लोकभाषा के साहित्य मे भी स्थान पाती रही है। बौद्धो की जातक कथाएं, गुणाढ्य की वृहत्कथा और पञ्चतन्त्र ने इसी दाय को लिया है। लोककथाओं के इसी दाय को प्रणय के रोमानी चित्रो को चुनकर संस्कृत के गद्य कवियो ने स्वीकार किया है। यह तो हुई लोककथाओं की बात।

अलङ्कृत गद्य का प्रारम्भ :

सस्कृत साहित्य के गद्य-काव्य यद्यपि बहुत प्राचीन काल से लिखे जाते रहे है किन्तु उनमे अधिकाश काल-क्रम के अन्धकार में लुप्त हो गये। सस्कृत गद्य की अलकृत शैली के गद्य-काव्यो का उद्भव कहाँ से और कब से हुआ इस विषय मे हम अन्धकार मे है। संस्कृत गद्य-काव्यों की जो शैली हमे उपलब्ध होती है उनमे सातवी शताब्दी के आस-पास के तीन प्रमुख गद्य कवियो सुबन्धु, बाण और दण्डी की रचनाओं मे संस्कृत की अलङ्कृत शैली के पूर्ण विकसित रूप का दिग्दर्शन होता है, उनके पूर्व के लेखको तथा रचनाओं के इतिहास की परम्परा निविड़ अन्धकार से आवृत्त हो जाने से निश्चित रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता है। किन्तु इतना तो निश्चित है कि गद्य-काव्यो के इस स्वरूप का आविर्भाव आकस्मिक नही हो सकता। यह शताब्दियों के प्रयत्न और प्रयास का फल है। इतना अनुमान किया जा सकता है कि संस्कृत गद्य-काव्यो का विकास दुहरे स्रोत को लेकर हुआ है, एक ओर इसने लोककथाओं से उसके कथांश को गृहीत किया है, दूसरी ओर काव्यो मे उसकी अलङ्कृत शैली को पाया है। इस प्रकार लोक-कथाओं के विषय और अलङ्कृत काव्य शैली के परिवेश (अभिव्यञ्जना शैली) को लेकर गद्यकाव्य आता है, जो हमे सबसे पहले छठी शती के अन्त या सातवी सदी के पूर्वार्द्ध मे प्रस्फुटित होता दिखाई पड़ता है। संस्कृत साहित्य का गद्य, पद्य के बहुत बाद का विकास है। ऐसा देखा जाता है कि प्राय. सभी भाषाओं का प्राचीन साहित्य पद्यबद्ध अधिक पाया जाता है। वैदिक काल मे ही ऋग्वेदकी भारती पद्य का आहार्य-प्रसाधन सजा कर

सामने आती है और गद्य का विकास याजुष मन्त्रो मे सर्वप्रथम दिखाई पड़ता है। बाद मे तो ब्राह्मणो और उपनिषदो मे वैदिक कालीन गद्य विकसित हो चला है। सूत्रकाल से होती हुई सस्कृत गद्य की वैचारिक धारा पतञ्जलि के महाभाष्य और शबर के मीमांसा भाष्य से बहती दिखाई पड़ती है और इसका चरम परिपाक **शङ्कर के शारीरिक भाष्य** मे मिलता है। शङ्कर के बाद संस्कृत का दार्शनिक गद्य अत्यधिक कृत्रिम शैली का आश्रय लेने लगा था, जिसका एक रूप **वाचस्पति मिश्र, श्रीहर्ष** और **चित्सुखाचार्य** आदि के वेदान्त प्रबन्धो मे और दूसरा रूप **गङ्गेश उपाध्याय** तथा उनके शिष्य **गदाधर भट्ट जगदीश और मथुरानाथ**—के नव्य नैयायिक शैली के वाद—ग्रन्थों मे मिलता है। साहित्य के लिए इन गद्य शैलियो का अध्ययन यहाँ अप्रासङ्गिक है। साहित्य में भी दो प्रकार की शैलियाँ दृष्टिगोचर होती है—

1 गद्य की नैसर्गिक सरल शैली

2 कृत्रिम अलङ्कृत शैली।

नैसर्गिक सरल, शैली का रूप सर्वप्रथम हमे पञ्चतन्त्र मे मिलता है और बाद मे इस प्रकार के नीतिवादी कथा साहित्य का मार्ग बना रहा है। पञ्चतन्त्र की शैली ही हमे शुकसप्तति, सिहासनद्वात्रिशत्पुत्रकलिका, वेतालपञ्चविशतिका, भोजप्रबन्ध, पुरुष-परीक्षा मे दिखाई पड़ती है। अलङ्कृत गद्य शैली का रूप हमें **सुबन्धु दण्डी और बाण की त्रयी** मे और बाद मे गद्यकाव्यो तथा चम्पूकाव्यो मे उपलब्ध होता है। गद्यकवियों की इस त्रयी के बाद एक बार पुनः गद्य-काव्य-परम्परा अन्धकार मे विलुप्त हो गई क्योंकि इन कवियो के, विशेष रूप से बाणभट्ट के, काव्यो के सूर्य के समान प्रखर

प्रकाश से परवर्ती कवि इतने अभिभूत हुए कि उन्हे या तो अपने दीपक के समान प्रकाश को आलोकित करने का साहस ही नही हुआ, और यदि हुआ भी तो वह क्षीण प्रकाश इन कवि-त्रितय की तीव्र ज्योति के सम्मुख फीका पड कर लुप्त हो गया।

सस्कृत की गद्य शैली के सन्दर्भ मे **अवश्वघोष** तथा **कालिदास** मे ही हमे सस्कृत की अलङ्कृत काव्यशैली दिखाई पडती है। कालिदास के पहले गद्य की अलङ्कृत शैली चल पडी थी। आरम्भ मे यह अलङ्कृत गद्य शैली प्रशस्तियो और चरितकाव्यो के लिए चली होगी और इस शैली मे इन 'रोमानी' गद्य-काव्यो को ढाल दिया गया होगा। गद्यभाषा की प्राचीनतम गाथाएँ और आख्यायिकाएं आज उपलब्ध नही हैं फिर भी पुराने उपलब्ध ग्रन्थो मे हमे इस सम्बन्ध मे पर्याप्त विवरण मिलते है। निश्चित रूप से पूर्व मे गद्य-काव्यो की रचना होती रही है जिसके सङ्केत हमे प्राप्त होते हैं।

संस्कृत मे गद्यात्मक कथाओं का उदय विक्रम से लगभग 400 वर्ष पूर्व हो चुका था। गद्यकाव्य की रचना सुप्रसिद्ध वैयाकरण वार्तिककार कात्यायन (300 ई० पू०) से भी पूर्व अवश्य होने लगी थी। **कात्यायन** सस्कृत गद्यकाव्य की आदिकालीन आख्यायिकाओं और आख्यान से परिचित जान पडते हैं क्योकि उन्होने अपने एक वार्तिक मे गद्यकाव्य के दोनो भेदो आख्यान और आख्यायिका का उल्लेख अलग-अलग किया है—

'लुबाख्यायिकेभ्यो बहुलम्।'[1]

---

1 पाणिनि अष्टाध्यायी 4/3/87 पर वार्त्तिक

'आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्च।'[1]

इन दोनो मे स्वरूपत· भिन्नता का परिचय नही मिलता, परन्तु कोई भेद अवश्यमेव उस युग मे विद्यमान था। दूसरे वैयाकरण **महर्षि पतञ्जलि (200 ई0 पू0)** के सम्बन्ध मे ऐसा विश्वास होता है कि वे 'वासवदत्ता', 'सुमनोत्तरा' और 'भैमरथी' नामक आख्यायिकाओं को अपने हाथ से भली-भाति उलट-पुलट चुके थे।

'अधिकृत्य कृते ग्रन्थे बहुलं लुग्वक्तव्यः।

वासवदत्ता सुमनोत्तरा न च भवति भैमरथी॥'[2]

'काशिका' मे भी इन्ही नामो का उल्लेख इस सूत्र की व्याख्या मे मिलता है, परन्तु उनकी सत्ता का पता अभी तक नही चलता। **पतञ्जलि ने 'यवक्रीत', 'प्रियङ्गु' तथा ययाति** का आख्यान के उदाहरण मे उल्लेख किया है, पर हम यह नही कहसकते, क्या वे गद्य कृतियॉ थी। पतञ्जलि का महाभाष्य गद्य की समृद्धि का प्रौढ़ परिचायक है। उपरोक्त उल्लिखित प्रबन्धे वर्तमान मे उपलब्ध नही है। काल की कराल चेष्टाओं ने आज तक अनेक ग्रन्थो को विलुप्त कर डाला है, जिनका नाममात्र से कुछ परिचय हम प्राप्त कर सकते है। **'भोज' ने अपने 'शृङ्गारप्रकाश'** मे वररुचि की **'चारुमती'** से एक पद्य उद्धृत करते हुए **'मनोवती'** और **'सातकर्णीहरण'** नामक कृतियो की ओर सङ्केत किया है, पर इसके विषय मे हम कुछ नही जानते। 'दण्डी' भी

---

1 पाणिनि अष्टाध्यायी 4/2/60 पर वार्तिक

2 महाभाष्य, 4/3/87

'मनोवती' की ओर सङ्केत करते हुए प्रतीत होते है—'**धवलप्रभवा राग सा वितनोति मनोवती।**'[1]

'**तिलकमंजरीकार धनपाल**' (10वी श० ई०) के कथनानुसार हाल के राजकवि 'श्री पालित' ने 'तरङ्गवतीकथा' लिखी थी—

'पुण्या पुनीता गङ्गेव स तरंगवती कथा।'[2]

आध्रभृत्य सातवाहन राजाओं के समय लिखी गई 'शातकर्णीहरण', 'नमोवतीकथा', सोड्ढल (1100 श० ई०) की उदयसुन्दरीकथा, ओड्यदेव या वादीभसिह (12 श० ई०) की 'गद्यचिन्तामणि' एवं वामनभट्ट बाण का 'वेमभूपालचरित' आदि ग्रन्थ भी प्राचीन गद्य की परम्परा का समर्थन करते है। इसी प्रकार जल्हण के कथनानुसार वररुचि ने 'चारुमती' तथा रामिल-सोमिल ने शूद्रक-कथा की रचना की थी—

'तौ शूद्रक कथाकारौ वन्द्यौ रामिल-सौमिल्लौ।

काव्यं ययोर्द्वयोरासीदर्धनारीश्वरोपमम्।।'[3]

स्वय कथाकार 'बाण' ने अपने 'हर्षचरित' मे अपने पूर्व के गद्य लेखको मे किन्ही एक सिद्धहस्त गद्यकार भट्टारक हरिश्चन्द्र का नाम आदर से लेते हुए उनके हृदयहारी गद्य की प्रशसा की है—

---

1 दण्डी—अवन्तिसुन्दरीकथा

2 धनपाल—तिलकमञ्जरी

3 जल्हण—सुक्तिमुक्तावली

'पदबन्धोज्जवलो हारी कृतवर्णक्रमस्थितिः।

भट्टारहरिचन्द्रस्य गद्य-बन्धो नृपायते।।'[1]

किन्तु इनका कोई ग्रन्थ उपलब्ध नही हुआ है। कुछ विद्वान् हरिचन्द्र के गद्यबन्धो का नाम 'मालती' मानते है, किन्तु बाण से पूर्ववर्ती इस गद्य लेखक का न तो स्थितिकाल स्पष्ट है और न ही इनका ग्रन्थ अद्यावधि उपलब्ध है। इसी भॉति कुछ विद्वान् इन हरिचन्द्र को धर्मशर्माभ्युदय तथा जीवन्धरचम्पू के रचयिता से भिन्न मानने की अटकलपच्चू लगाते है। जैन काव्यो के रचयिता हरिचन्द्र दसवी शती के लगभग है, इसे नही भूलना होगा। हरिचन्द्र का नाम तो वाक्पतिराज के 'गउडवहो' मे भी आदर के साथ लिया गया है, तो हरिचन्द्र सुबन्धु और बाण के पहले कोई गद्य लेखक रहे होगे।

कुछ उपलब्ध शिलालेखो से भी सस्कृत गद्य का प्रचार एव प्रसार स्पष्ट लक्षित होता है एव इसके विकसित रूप की सूचना मिलती है। यद्यपि शिलालेख गद्यकाव्य नही कहे जा सकते तथापि कतिपय शिलालेखो का सस्कृत गद्य वस्तुतः ही गद्यकाव्य का आनन्द दे जाताहै। इस दृष्टि से अलङ्कृत गद्य की जो प्राचीनतम रचना हमे इस समय उपलब्ध है वह महाक्षत्रप रुद्रदामन का गिरिनार शिलालेख (150 ई०)। इस शिलालेख का रचयिता **'स्फुटलघुमधुरचित्रकान्तशब्दसमयोदारालङ्कृतगद्यपद्यप्रवीणेन'** विशेषण से विभूषित किया गया है। इसकी भाषा सरल, प्रवाहमयी एवं आलङ्कारिक

---

1 बाण—हर्षचरित

है तथा कुछ बडे तथा कुछ छोटे समास, अनुप्रास तथा अन्य अलङ्कार प्रचुर मात्रा मे प्रयुक्त हुए है। उदाहरणार्थ—'प्रमाणमानोन्मान स्वरगतिवर्णसारसत्त्वादिभि परमलक्षणव्यञ्ज नैरुपेतकान्तमूर्त्तिना स्वयमधिगतमहाक्षत्रपनाम्ना नरेन्द्रकन्यास्वयवरानेकमान्यप्राप्तदाम्ना महाक्षत्रपेण रुद्रदाम्ना सेतु सुदर्शनतर कारितम्।' इस शिलालेख की शैली मे 'गिरिशिखरतरुतटाट्टालकोपतल्पद्वार-शरणोच्छ्रयविध्वसिना' जैसे लम्बे समासान्त पदो, तथा 'पर्वत-प्रतिस्पर्धी' 'मरुधन्व-कल्पम्', तथा 'पर्जन्येव एकार्णवभूताया (?) मिव पृथिव्यां कृतायां' जैसे अर्थालङ्कार प्रयुक्त हुए है।[1] इसके साथ ही एक स्थान पर तालाब के वर्णन मे **'अतिभृशं दुर्दुर्शनम्'** के द्वारा श्लेष का प्रयोग करने की चेष्टा भी की गई है, पर वह सफल नही हो सका है। इसके अतिरिक्त गुप्तकालीन शिलालेख[2] और विभिन्न स्थानो मे उपलब्ध सैकड़ो अभिलेखों[3] को देखकर गद्य के प्राचीन अस्तित्व का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। गुप्तकालीन शिलालेख (400 ई0) ऐसी शैली मे रचित उपलब्ध हुआ है जिसकी तुलना बाण की गद्य शैली से हो सकती है। प्रयाग के किले मे स्थित स्तम्भ पर खुदी हुई हरिषेणकृत समुद्रगुप्त की प्रशस्ति मे अलङ्कृत गद्य की प्रौढ शैली के दर्शन होने से यह भी सुन्दर गद्यकाव्य के रूप मे विशेषतः उल्लेखनीय है। इस प्रशस्ति के गद्य मे लम्बे-लम्बे समासो का बहुलता से प्रयोग है और पद-योजना को अनुप्रासादि द्वारा श्रुतिमधुर बनाने

---

1 व्याकरण की दृष्टि से 'एकार्णवभूताया' पद अशुद्ध है, शुद्ध रूप 'एकार्णवीभूताया' होगा, पर शिलालेख मे पहला ही रूप मिलता है।

2 फ्लीट गुप्ता इस्क्रिप्शन्स तथा गुप्तकालीन शिलालेख

3 डा0 श्यामसुन्दर दास प्राचीन मणिमाला, भाग 1, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1903

का प्रयास किया गया है। श्लेष का भी इसमे प्रयोग किया गया है जो आगे के गद्य काव्यकारो का प्रिय अलङ्कार हो गया है। यह प्रशस्ति लगभग पैतीस पक्तियो के एक ही समस्त वाक्य मे लिखी गई है। इस प्रशस्ति के गद्य की शैली की तुलना बाणादि गद्य काव्यकारो के गद्य की शैली से करने से ये शिलालेख बाणभट्टादि की समासबहुल शैली के पूर्वरूप माने जा सकते है। वास्तव मे इसी शैली की चरम परिणति हमे सुबन्धु और बाणादि की कृतियो मे उपलब्ध होती है।

इन समस्त प्रमाणो से यह सिद्ध हो जाता है कि गद्यकाव्य का प्रणयन ईसा की भी कई शताब्दियो पूर्व से होता रहा। पद्यशैली के समानान्तर ही गद्यशैली भी चलती रही। स्मरणशक्ति पर अधिक बोझ न डालने के लिए धार्मिक कृत्यादि के लिए पद्य शैली का प्रयोग किया जाता रहा और शास्त्रीय, दार्शनिक तथा वैज्ञानिक विषयो के लिए सूत्रात्मक गद्य शैली को प्रधानता दी गई। लेखन सामग्री की सुविधा के साथ-साथ इन शैलियो मे वर्णन प्रधानता और कलात्मक विस्तार बढ़ता गया। इन कवियो के और इनकी रचनाओं के इस समय केवल नाम-मात्र ही शेष है किन्तु इनसे गद्य-काव्यो की एक विस्तृत परम्परा की ओर अवश्य सङ्केत मिलने से वे गद्य-काव्य की उत्तरोत्तर वृद्धि और विकास के परिचायक है।

संस्कृत गद्य काव्य का समृद्धि युग :

सस्कृत-गद्य-काव्य का समृद्धि युग गद्य काव्यकार दण्डी, सुबन्धु और बाण का युग माना जाता है। इन्होने सस्कृत गद्य-काव्य को अपनी उत्कृष्ट गद्यात्मक रचनाओं से चरम उन्नति प्रदान की। सुबन्धु और बाण के समय

तक आने मे सस्कृत गद्यकाव्य की इस गद्यशैली को लगभग 400 वर्षो को पार करना पडा है, पता नही, किन-किन कलाकारो ने इसे धनपद सघटना से निविड बनाकर प्रौढ रूप प्रदान किया कुछ पाश्चात्य विद्वान् सुबन्धु और बाण के गद्य-काव्यो पर ग्रीक गद्य का प्रभाव बताते है और उनके साथ सस्कृत गद्य-काव्यो की घटना-विहिति, कथानक रूढ़ियो और कलात्मक परिवेष की तुलना करते है।[1] पर दूसरे विद्वान् सस्कृत गद्य काव्यो का प्रभाव **ग्रीक 'रोमेण्टिक स्टोरीज'** मे ढूढते है।[2] पर इस तरह के परस्पर आदान-प्रदान के कोई ठोस प्रमाण नही दिए जाते हैं।

अत यह निश्चित हो जाता है कि जिस प्रौढ़ गद्य का प्रणयन सुबन्धु, दण्डी और बाण ने किया उसका उद्भव और विकास शताब्दियो पूर्व हो चुका था, किन्तु प्राचीन गद्यकाव्य के ग्रन्थ आज दुर्भाग्यवश उपलब्ध नही है।

गद्यकाव्य के इस उद्भव और विकास को जान लेने पर एक आश्चर्यजनक तथ्य उभरकर सम्मुख आता है कि गद्यकाव्य शैली का इतिहास इतना प्राचीन होने पर भी सातवी शती ईस्वी के सुबन्धु, दण्डी और बाणादि की रचनाओं से पूर्व रचे गये गद्य-काव्यो मे एक भी प्राप्त नही होता। इस विचित्र स्थिति के लिए एक ही अनुमान लगाया जा सकता है कि दण्डी आदि मे संस्कृत के साहित्यिक गद्य का जो अत्यन्त परिष्कृत और प्रांजल रूप प्राप्त होता है, उसके पीछे अनेक सदियो की सतत साधना और अभ्यास की

---

1 द्रष्टव्य—Weber Indische studien XIII P 456 f

2 द्रष्टव्य—L H Gray Vasavadatta (Introduction) P 35 F

पृष्ठभूमि अवश्य थी। किन्तु दण्डी बाण आदि के गद्य ने जनमानस को इतना चमत्कृत और मुग्ध कर दिया कि पूर्ववर्ती गद्य लेखक विस्मृत ही कर दिये गये और उनके ग्रन्थ पठन-पाठन न होने के कारण विस्मरण के अभेद्य अन्धकार में विलोपित हो गये।

गद्य शब्द की निष्पत्ति तथा परिभाषा :

गद्य शब्द **'गद्-व्यक्तायां वाचि' धातु से 'यत्' प्रत्यय** लगाने पर निष्पन्न होता है। यह लयप्रधान पद्य से नितान्त भिन्न है। भाषा के जिस स्वरूप मे पद्यबन्ध का परित्याग करके भी भाव एव रस का समुचित परिपाक पाया जाता है उसी को गद्यकाव्य कहा जाता है। इसलिए काव्यादर्शकार दण्डी ने गद्य की यह परिभाषा प्रस्तुत की—अपद्यबद्ध रचना गद्य है।[1] उन्होने **गणमात्रानियतपादव्यवस्था** से भिन्न पद-समुदाय को गद्य कहा है।[2] **'अमरकोश' के टीकाकार महेश्वर** ने गद्य को 'वाक्' तथा पद्य को 'पद्धति' कहा है।[3] इससे ज्ञात होता है कि पहले गद्य उत्पन्न होता है पद्य नही।[4] वैसे भी पद्य एक कृत्रिम प्रयास है जबकि गद्य स्वाभाविक है। पद्य से पूर्व ही गद्य के उद्भव को **राजशेखर**[5] ने भी माना है। यजुर्वेद के एक मन्त्र से भी यही ज्ञात होता है। ऋषि कहता है—हे इन्द्रानी। यह पाद रहिता वाक् शिरः स्थानीय आख्यात पदो को फोड कर जिह्वा से उच्चारित होती, मूलाधार से लेकर मुख पर्यन्त

1,2 दण्डी, काव्यादर्श 1/23—अपाद पदसन्तानो गद्यम्

3 अमरकोश के 'गद्य पद्ये कृतौ कवे' पर महेश्वर की टीका

4 'गद्यकारण बाण'—प्रो0 सत्यपाल रणदेव तथा थापर—पजाब हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रकाशन, 1965

5 शुक्ल यजुर्वेद, अध्याय 30

तीस अंगुलो को आक्रान्त करके पादवती (वाक्) से पूर्व ही प्रकट हुई है।[1]

अलङ्कृत और अनलङ्कृत शैलियों के गद्य के भेद :

इन दोनो प्रकार की शैलियो के अन्तर पर प्रकाश डालते हुए डॉ० सूर्यकान्त लिखते है— पतञ्जलि के गद्य मे और इन प्रशस्तियो के गद्य मे आकाश-पाताल का अन्तर है। कह सकते है कि इस अन्तर का कारण दोनो के विषय का मौलिक भेद है। किन्तु ध्यान देने योग्य बात यह है कि जहाँ पतञ्जलि के गद्य मे आख्यान अभीष्ट सख्या मे उपलब्ध होते है वहाँ प्रशस्तियो के गद्य मे वे प्रायः चल बसे है और उनका स्थान नामिक शैली ने अपना लिया है। विभक्ति ढूँढे ही मिलती है, अब उनका काम लम्बे-लम्बे समास देने लगे हैं। देवता द्वन्द्व और बहुव्रीहि तो ऋग्वेद में भी मिलते है और प्रचुन मात्रा मे मिलते हैं किन्तु देवता द्वन्द्वो के रूप में और दो शब्दों के बहुव्रीहि के रूप मे। इसके विपरीत प्रशस्तियो के गद्य में दस-दस शब्दो को एक ही द्वन्द्व मे टाँग दिया जाता है और बहुव्रीहि समास मे तो मनमाने शब्द व्रीहि भर दिए जाते हैं।

गद्य-काव्य के भेद :

संस्कृत आचार्यों ने गद्यकाव्य को मुख्यतः दो वर्गो मे विभाजित किया

---

1 डा0 सूर्यकान्त 'पाणिनि और पतञ्जलि का गद्य साहित्य', साप्ताहिक हिन्दुस्तान, जून 12, 1955 (प0 शारदा चरण पाण्डेय तथा डा0 शिवराज शास्त्री द्वारा सकलित 'सस्कृत-गद्य-गरिमा' की भूमिका से उद्धृत)

है—(1) कथा (2) आख्यायिका। किन्तु कथा और आख्यायिका मे बताई गई विशेषताओं को लेकर आचार्यो मे काफी मतभेद है। कुछ आचार्यो ने कथा और आख्यायिका को भिन्न मानते हुए उनका अलग-अलग विवेचन किया है तथा कुछ आचार्यो ने उनका अलग-अलग विवेचन करते हुए भी उन्हे अभिन्न माना है। कथा और आख्यायिका को भिन्न मानने वालो मे भामह, रुद्रट, हेमचन्द्र आदि आचार्य हैं तथा अभिन्न मानने वाले आचार्य दण्डी है।

भामह तथा दण्डी के पूर्व ही गद्य-काव्यों मे ये दो प्रकार—कथा और आख्यायिका—की कृतियॉ पायी जाती थी। सर्वप्रथम इन दोनो भेदो का विवेचन रुद्रट के अलङ्कारशास्त्रीय ग्रन्थ में उपलब्ध होता है।[1]

भामह के अनुसार आख्यायिका केवल संस्कृत भाषा मे लिखी होनी चाहिए, जबकि कथा संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश तीनो मे हो सकती है।[2] आख्यायिका गद्य में तो होगी पर साथ ही उसमें वक्त्र और अपरवक्त्र छन्दो के द्वारा तथ्यपूर्ण भावी घटनाए सूचित की जानी चाहिए और इसका विभाजन उच्छवासो में होना चाहिए, किन्तु कथा मे वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्द नही होने चाहिए और उच्छवास भी नही होने चाहिए।[3] इस प्रकार आख्यायिका मे गद्य और पद्य दोनो का प्रयोग होगा पर कथा केवल गद्य मे

---

1 रुद्रट, काव्यालङ्कार—1/25 29

2 भामह, काव्यालङ्कार—1/25 तथा 28

3 भामह, काव्यालङ्कार—1/25 तथा 26, 28

होगी साथ ही आख्यायिका मे नायक अपना वृत्तान्त स्वयं कहेगा इस प्रकार आख्यायिका को हम एक प्रकार से आत्मकथा कह सकते हैं, जबकि कथा मे कहानी नायक स्वय नही कहेगा, कोई दूसरा कहेगा, क्योकि कोई कुलीन व्यक्ति अपने गुणो का कथन स्वयं कैसे करेगा।[1]

कथा और आख्यायिका के ये सारे ही भेदक वैशिष्ट्य दण्डी को अकिचित्कर लगे। फलस्वरूप उन्होने भामह द्वारा प्रतिपादित भेदक वैशिष्ट्यो मे से केवल भाषा सम्बन्धी वैशिष्ट्य को छोड़कर शेष सभी का खण्डन किया। सर्वप्रथम उन्होने भामह की वक्ता सम्बन्धी मान्यता का खण्डन करते हुए यह प्रतिपादित किया कि कथा मे भी कहानी-वक्ता नायक स्वयं भी हो सकता है, क्योकि यथार्थवादी नायक द्वारा अपने गुणों का वर्णन दोष नही है।[2] क्योकि उसका उद्देश्य गुण कथन या आत्मप्रशंसा नहीं है, बल्कि अपने ऊपर बीती सच्ची घटना का यथार्थ वर्णन है। पिर वक्ता सम्बन्धी इस नियम का अपवाद भी देखने को मिलता है[3], जैसे हर्षचरित् आख्यायिका है किन्तु उसमे नायक स्वय नही कहता है। इसलिए यह नियम नहीं बनाया जा सकता है कि आख्यायिका का वक्ता उसका नायक ही हो, कोई दूसरा पुरुष भी उसका वक्ता हो सकता है। इस प्रकार वक्ता सम्बन्धी इस वैशिष्ट्य को भेदकलक्षण नही कहा जा सकता है।

---

1 भामह, काव्यालङ्कार—1/26 तथा 29

2 दण्डी, काव्यादर्श 1/23 तथा 24

3 दण्डी, काव्यादर्श 1/25

छन्दो के सम्बन्ध मे भामह ने यह प्रतिपादित किया था कि आख्यायिका मे वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्दो का प्रयोग किया जाय तथा कथा मे इनका प्रयोग न किया जाय। साथ ही आख्यायिका के विभागो का नाम भामह ने उच्छ्वास दिया था और कथा मे उच्छवासो का निषेध किया था। उनकी इन दोनो ही मान्यताओं का खण्डन करते हुए दण्डी ने यह प्रतिपादित किया यदि वक्त्र और अपरवक्त्रछन्द और उच्छवासो मे विभाजन आख्यायिका के भेदक लक्षण हो सकते हैं तो ये कथाओं मे भी प्रसगवश हो। कथा मे भी आर्या आदि छन्दो के समान ही वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्दो का भी प्रवेश क्यो न हो तथा कथा का विभाजन चाहे लम्भ आदि मे हो या उच्छवास मे उससे क्या अन्तर पड़ता है।[1]

इस प्रकार हम देखते है कि भामह और दण्डी मे कथा और आख्यायिका की विशेषताओं को लेकर काफी मतभेद है। भामह जहाँ कथा और आख्यायिका को गद्य का दो भेद मानते हैं वहाँ दण्डी कथा और आख्यायिका मे कोई भिन्नता नही देखते हैं। उनके अनुसार कथा और आख्यायिका एक ही जाति है, अन्तर केवल नाम का है।[2] इस प्रकार यद्यपि दण्डी ने भामह प्रतिपादित भेदक वैशिष्ट्यो का खण्डन किया, तथापि भामह के उक्त विवेचन का प्रभाव परवर्ती काव्यशास्त्रियों पर अक्षुण्ण बना रहा और रुद्रट, हेमचन्द्र तथा विश्वनाथ ने उनकी अधिकाश मान्यताओं को किचित् परिवर्तन

---

1 दण्डी, काव्यादर्श 1/26 तथा 27

2 दण्डी—काव्यादर्श, 1/28

और परिवर्धन के साथ अपनाया।

भामह की भाति रुद्रट भी आख्यायिका के लिए संस्कृत भाषा तथा कथा के लिए संस्कृत एवं प्राकृतादि भाषाओं का प्रयोग बताते है।[1] उनके अनुसार भी आख्यायिका गद्य-पद्य दोनो मे हो सकती है, किन्तु जहॉ तक कथा का प्रश्न है, रुद्रट के अनुसार सस्कृत मे लिखी गई कथा गद्य मे होनी चाहिए तथा सस्कृतेतर जैसी प्राकृतादि भाषा मे लिखी गई कथा पद्य मे भी लिखी जा सकती है।[2] आख्यायिका के लिए रुद्रट ने आर्या अपरवक्त्र, पुष्पिताग्रा तथा मालिनी छन्दो मे से किसी एक का प्रयोग बताया है, किन्तु कथा के लिए किसी छन्द विशेष का उल्लेख नही किया केवल संस्कृतेतर भाषा मे लिखी गई कथा मे पद्य के प्रयोग को स्वीकार किया।[3] भामह की भाति रुद्रट ने भी आख्यायिका के परिच्छेद का नाम 'उच्छवास' दिया है।[4] भामह द्वारा प्रतिपादित कथा और आख्यायिका के इन भेदक तत्त्वो के अतिरिक्त रुद्रट ने कुछ और विस्तार से इनके बीच भेदो की चर्चा की। जैसे रुद्रट के अनुसार कथा और आख्यायिका दोनो के आरम्भ मे श्लोको द्वारा इष्टदेव और गुरु को नमस्कार करना चाहिए, किन्तु कथा मे इसके बाद कर्तृरूप मे (स्वयं) अपना तथा अपने कुल का सक्षेप मे वर्णन करना चाहिए, जबकि आख्यायिका मे देव और गुरु-नमस्कार के अनन्तर तब तक

---

1 रुद्रट—काव्यालङ्कार (हिन्दी), 16/26 तथा 23 और 23 की वृत्ति

2 रुद्रट—काव्यालङ्कार, 16/26 तथा 30, 23

3 रुद्रट—काव्यालङ्कार, 16/30 तथा 23

4 रुद्रट—काव्यालङ्कार, 16/27

काव्य-रचना आरम्भ नही करनी चाहिए जब तक कि कवियो की प्रशंसा न कर ले और उसके बाद नृप मे भक्ति परगुण-संकीर्तन मे व्यसन तथा काव्यरचना की प्रेरणा का उल्लेख करे।[1]

भामह की ही सरणि पर हेमचन्द्र भी यही मानते हैं कि आख्यायिका केवल संस्कृत मे होगी, जबकि कथा सभी भाषाओं मे।[2] भामह की भाति वे यह तो मानते है कि आख्यायिका गद्य और पद्य दोनो में ही हो सकती है, किन्तु कथा के विषय मे वे भामह तथा रुद्रट दोनो का ही मत न मानकर अपना स्वतन्त्र मत देते है। उनके अनुसार कथा चाहे संस्कृत मे हो अथवा प्राकृत में, गद्य-पद्य दोनो मे ही लिखी जा सकती है।[3]

भामह की भांति आचार्य विश्वनाथ यह तो मानते हैं कि आख्यायिका गद्य तथा पद्य दोनो में हो सकती है और कथा केवल गद्य मे किन्तु उन्होने स्वयं कथा मे आर्या, वक्त्र, अपरवक्त्र छन्दो की सत्ता को स्वीकार करके प्रकारान्तर से कथा मे पद्य का सन्निवेश किया है।[4] भामह की भांति विश्वनाथ आख्यायिका के परिच्छेद का नाम उच्छवास न देकर आश्वास देते है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार कथा के प्रारम्भ मे पद्यमय नमस्कार तथा खलादिको का चरित् निबद्ध होता है तथा आख्यायिका मे कविवंशवर्णन और अन्य कवियो का वृत्तान्त रहता है।[1] विश्वनाथ ने कथा और आख्यायिका

---

1 रुद्रट—काव्यालङ्कार, 16/20, 24, 25

2 हेमचन्द्र—काव्यानुशासन 8/7, 8

3 हेमचन्द्र—काव्यानुशासन 8/9 तथा 8

4 साहित्यदर्पण, 6/334, 332 तथा 333 पूर्वार्द्ध

दोनो ही आर्या, वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्दो की सत्ता स्वीकार की है।[2]

कथा और आख्यायिका :

उपर्युक्त लक्षणो को देखने से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि लगभग सभी आचार्य बहुत कुछ भामह की पद्धति पर कथा तथा आख्यायिका को लक्षित करते है। लक्ष्य ग्रन्थो मे भी बहुत कुछ ऐसा ही निर्वाह मिलता है। आख्यायिका मे सभी आचार्यो ने वक्त्रापरवक्त्र छन्दो तथा उच्छवास का प्रयोग निश्चित किया है। महाकवि बाणभट्ट ने भी इसे स्वीकार किया है।[3] फिर भी आख्यायिका और कथा के बीच की उपर्युक्त डांड़ामेंड़ी अवास्तविक है। दण्डी ने इस तथ्य को उजागर अवश्य किया है लेकिन वे स्वयं दोनों के बीच के सही भेद को प्रकट नही कर सके। माना कि कथा और आख्यायिका एक ही जाति की रचनाएं है लेकिन इनके अलग-अलग नाम का क्या कारण है? दण्डी के पास इसका उत्तर नहीं है। कथा और आख्यायिका मे वस्तु स्वरूपगत अन्तर है जिसका स्पष्ट उल्लेख **आचार्य कोहल** तथा **अमरसिंह** की परिभाषाओं मे ही मिलता है।[4] कथा की वस्तु का कल्पित होना और आख्यायिका की वस्तु का परम्पराश्रित या थोड़ा बहुत ऐतिहासिक या फिर लोकख्यात होना ही वस्तुतः कथा और आख्यायिका के बीच भेदक तत्त्व है। लक्षणों से स्पष्ट निर्देश न मिलने पर भी लक्ष्य ग्रन्थो मे कथा तथा

---

1 साहित्यदर्पण, 6/333 तथा 334

2 साहित्यदर्पण, 6/333 तथा 335

3 हर्षचरित

4 अमरकोश 15/56 तथा सर्वानन्दकृत टीका सर्वस्व 1/6/5

आख्यायिका के उक्त वास्तविक भेद का बराबर निर्वाह मिलता है।

यद्यपि आख्यायिका तथा कथा वाला सस्कृत गद्यकाव्य लोककथाओं की वर्णनात्मक सामग्री को लेकर आता है, उसकी ही मानवी तथा अतिमानवी कथा-रूढियो को अपनाता है, पर इसका ढांचा अपना होता है, जो काव्य की देन है। वस्तुतः गद्यकवि का लक्ष्य सुसस्कृत श्रोताओं का मनोरञ्जन होता है, यही कारण है कि काव्यो की तरह ही यहाँ उदात्त अलङ्कृत आहार्य दिखाई पड़ता है और उसी की तरह कथावस्तु को गौण बनाकर वर्णनो को प्रधानता दे दी जाती है। काव्योपयुक्त लम्बे-लम्बे समास, श्लेष वैचित्र्य, अनुप्रास और अर्थालङ्कार प्राचुर्य की ओर गद्य-कवि विशेष ध्यान देता देखा जाता है। वह प्रकृति-बाह्यप्रकृति तथा अन्तः प्रकृति—के वर्णन करने की ओर अधिक ध्यान देता है। काव्योपयुक्त वातावरण की सृष्टि के लिए ही इनकवियों ने प्रायः प्रणयगाथा को चुना है। पर ध्यान देने की बात यह है कि प्रणयगाथा के कथांश पर गद्यकवि इतना ध्यान नहीं देता दिखाई देता, जितना वर्णन-शैली पर। सस्कृत गद्यकाव्यो की यह शैली जिस काव्य मे सर्वप्रथम दिखाई पड़ती है वह सुबन्धु की वासवदत्ता।

वासवदत्ता : कथा अथवा आख्यायिका :

उपर्युक्त विवेचन से यह निर्णय करना सुगम हो जाता है कि वासवदत्ता कथा किवा आख्यायिका। कुछ टीकाओं तथा पाण्डुलिपियों मे वासवदत्ता को आख्यायिका कहा गया है।[1] आचार्य हेमचन्द्र ने वासवदत्ता को चम्पू

---

1 द्रष्टव्य, हाल द्वारा सम्पादित वासवदत्ता की भूमिका एव ग्रन्थान्त मे पाद टिप्पणी।

कहा है।[1] शृङ्गारप्रकाश मे भोजराज ने भी इसे चम्पू कहा है।[2] कादम्बरी के प्रसिद्ध टीकाकार भानुचन्द्र सिद्धचन्द्र ने वासवदत्ता को आख्यायिका बताया है। जिन्होने वासवदत्ता को चम्पू कहा है आलोच्य वासवदत्ता के सम्बन्ध मे उनका सत सर्वथा अग्राह्य है। सम्भव है कि कोई वासवदत्ता नामक ग्रन्थ चम्पू भी रहा हो। जिन्होने वासवदत्ता को आख्यायिका कहा है उनके कथन का आधार दण्डी की स्थापना मे देखा जा सकता है।[3]

वासवदत्ता मे सुबन्धु ने एकत्र आदर्श काव्य का निरूपण किया है।[4] **आर० वी० कृष्णमाचार्य** ने इस स्थल पर कवि का सङ्केत गद्य काव्य भी अपने ग्रन्थ वासवदत्ता की ओर स्वीकार कियाहै।[5] **शिवप्रसाद भट्टाचार्य** ने भी इस बात को स्वीकार कर, वासवदत्ता को आख्यायिका भी कहा जा सकता है, इस मत का समर्थन किया है। उनके अनुसार सुबन्धु द्वारा वर्णित दीर्घोच्छवास रचनाकुल सुश्लेषबन्धघटनापटु, सत्काव्यविरचन भामह निरूपित सांका, सोच्छवासा और सवक्त्रा आख्यायिका से बहुत भिन्न नहीं है।[6] अपनी इस स्थापना के आग्रहवश उन्होने वासवदत्ता मे भी उच्छवासों की स्थिति कहॉ-कहाँ हो सकती है इसका उल्लेख किया है।[7] फिर भी शास्त्रीय निरूपण को देखते हुए वासवदत्ता को आख्यायिका कहना सर्वथा चिन्त्य है। वासवदत्ता

---

1 हेमचन्द्र, काव्यानुशासन 8/9

2 शृङ्गारप्रकाश परिच्छेद 12

3 दण्डी, काव्यादर्श 1/28

4 वासवदत्ता, श्रीरङ्गम सस्करण, पृ० स० 238

5 वासवदत्ता, श्रीरङ्गम सस्करण, पृ० स० 239, भूमिका भाग

6. द्रष्टव्य—एस० पी० भट्टाचार्य का लेख, सुबन्धु आर बाणभट्ट टू इज अर्लियर

7. द्रष्टव्य—वही उपर्युक्त लेख

की कथा कवि-कल्पित है। इसका कोई भी परम्परागत आधार नही है। चूँकि वासवदत्ता मे उच्छवास की व्यवस्था नही है, वक्त्रापवक्त्र छन्द नही है, अन्य कवियो का वृत्त कीर्तन नही है इसलिए यह आख्यायिका नही है।

निष्कर्ष : कविवर सुबन्धु कृत 'वासवदत्ता' गद्यकाव्य के कथा के लक्षणानुसार ही निर्मित की गई है। इसकी कथावस्तु कवि-कल्पित है सस्कृत गद्य मे ही सरस? वस्तु की रचना हुई है, आदि मे देवो को नमस्कार किया गया है, खलादि के वृत्तो का कीर्तन हुआ है इसलिए यह कथा है।[1] भले ही कथा के शास्त्र निरूपित समस्त लक्षणो का एकान्ततः पालन नही हुआ है।

---

1 अग्निपुराण 337वॉ अध्याय

द्वितीय अध्याय

व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व निरूपण

सुबन्धु का व्यक्तित्व निरूपण

वासवदत्ता कथा के कथाकार सुबन्धु ने अपने सम्बन्ध मे '**सुजनेकबन्धुः**'[1] के अलावा कुछ नही कहा है। अतः उनके जीवन और व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे अनुमान ही प्रमाण है। उनके ग्रन्थ से इतना अवश्य ही प्रकट होता है कि वे वैदिक धर्मावलम्बी थे। वासवदत्ता के प्रारम्भिक दो श्लोको मे उन्होने विष्णु और विष्णु के अवतार भगवान कृष्ण की स्तुति की है।[2] ग्रन्थ मे अन्यत्र भी अन्य देवो की अपेक्षा भगवान विष्णु या उनके अवतारो का स्मरण कुछ अधिक ही बार हुआ है।[3] इससे लगता है कि वे वैष्णव थे। परम भागवत गरुडध्वज गुप्त सम्राटो के सम्पर्क में रहने वाले सुबन्धु का विष्णु पदावलम्बी होना स्वाभाविक भी लगता है। लेकिन अन्य वैदिक देवों के प्रति भी उनका सहिष्णु भाव था। यह भी गुप्तो के प्रभाव का द्योतक है। कवि ने भगवान शिव के प्रति भी भक्ति भाव प्रकट किया है।[4] नास्तिक बौद्ध मतावलम्बियो के प्रति उनका अनादर भाव भी स्पष्ट है।[5] बहुत सम्भव है कि यह उस युग का प्रभाव हो जब उद्योतकर आदि वैदिक विद्वान बौद्ध मत का सतर्क प्रचण्ड खण्डन करते हुए वैदिक धर्म की पताका फहरा रहे थे। भारतीय ज्ञान विज्ञान की प्रायः सभी शाखाओं से कवि ने अपना परिचय

---

1 वासवदत्ता चौ0 स0, श्लोक स0 13

2 वासवदत्ता चौ0 स0, श्लोक स0 2 और 3

3 वासवदत्ता चौ0 स0, पृ0 स0 7 और 8 तथा अन्यत्र भी

4 वासवदत्ता चौ0 स0, श्लोक स0 4

5 वासवदत्ता श्रीरगम सस्करण भूमिका भाग पृ0 स0 23

प्रकट किया है।[1] इससे उसके बहुमुखी पाण्डित्य का आभास मिलता है। वासवदत्ता के दसवे तथा तेरहवे श्लोक से यह भी ध्वनित होता है कि कवि स्पष्टवादी और स्वाभिमानी था और वासवदत्ता की रचना किसी व्यक्ति की प्रेरणा से किवा उसके प्रसाद के लिए नही अपितु सरस्वती की कृपा से स्वान्तः सुखाय की गई थी। इससे अधिक कदाचित् कुछ भी सुबन्धु के व्यक्तित्व के विषय में कहना सम्भव नही है।

समस्त वैदिक एवं लौकिक-संस्कृत वाड्मय के इतिहास मे अनेकत्र 'सुबन्धु' नाम का उल्लेख हुआ है। इससे अनेक सुबन्धुओं के अस्तित्व का अनुमान होता है। ऋग्वेद[2] के दशम मण्डल मे अनेक बार 'सुबन्धु नाम का उल्लेख हुआ है। शौनकीय बृहद्देवता[3] तथा कात्यायन की सर्वानुक्रमणी[4] में सुबन्धु के बारे मे एक कथा भी दी गई है। षड्गुरुशिष्य की सर्वानुक्रमणी की वेदार्थदीपिका[5] में भी सुबन्धु की चर्चा है। किन्तु **'राथ'** ने इस 'सुबन्धु' को व्यक्तिवाचक संज्ञा न मानकर विशेषण माना है और इसका 'एक अच्छा मित्र' अर्थ किया है। **टेल-एल-अमरना टैवलेट्स**[6] (14वी 15वीं शती ई0 पू0) में भी यह नाम Su-ba-an-di या Su-ba-an-da इन रूपो में मिलता है।

---

1 वासवदत्ता श्रीरगम सस्करण भूमिका भाग पृ0 स0 107, 135, 334, 30-2, 303, 121, 107, 229 आदि पर नाना शास्त्रो के उल्लेख

2 ऋग्वेद 10/4/60/7 10/4/60/8 तथा 10/5/61/26

3 बृहदेवता 7, 85, श्लोक स0 83-101, मैक्डानेल सस्करण पृ0 86-87हार्वर्ड विश्वविद्यालय प्रकाशन 1904

4 मैक्डानेल सस्करण, सन् 1886, पृ0 39वा

5 वही

6 विकलर, थोन्टाफेन वान टेल-एल-अमरना, स0 224-229, बर्लिन

काव्यालङ्कारसूत्रवृत्तिकार वामनाचार्य ने ओजोगुण को परिभाषित करते हुए तदन्तर्गत साभिप्रायत्व के उदाहरण मे कही से एक श्लोक[1] उद्धृत किया है जिसमे किसी चन्द्रगुप्त तनय युवा चन्द्रप्रकाश का राजा होना तथा विद्वानो का आश्रयदाता होना वर्णित है। आगे वृत्ति में आचार्य ने लिखा है कि—'कृतघी जनो का आश्रय इस कथन मे **सुबन्धुसाचिव्योपक्षेपपरत्वात्** साभिप्रायत्व है।[2] यहाँ एक बात और अवधेय है कि उपर्युक्त वामनीय वाक्य के 'च सुबन्धु' पदो के स्थान पर के० बी० पाठक[3] डा० आर० पी० भण्डारकर[4], नोएल पैरी[5] तथा बी० स्मिथ[6] प्रभृति कतिपय विद्वानो ने वसुबन्धु पाठान्तर माना है। किन्तु यह मत मान्य नही हो सका जैसा कि **म० म० हरप्रसाद शास्त्री**[7] तथा **आर० ए० नरसिंहाचार्य** के लेखों से स्पष्ट है। वामनोदाहृत श्लोक प्राप्त चन्द्रगुप्त तथा तत्तनय युवा चन्द्रप्रकाश के अभिज्ञान को लेकर विद्वानों मे बड़ा मतभेद है जिसका विचार आगे यथावसर किया गया है। मजुश्रीमूलकल्प[8] में बिन्दुसार के मन्त्री के रूप मे एक सकाराधद्विज का उल्लेख है। डा० काशी प्रसाद जायसवाल के अनुसार यह सकाराध द्विज

---

1 काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति

2 काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति

3 इण्डियन एण्टीवबेरी 1911,पृ० स० 171

4 इण्डियन एण्टीववेरी 1912, पृ० स० 1-2

5 कोटेड इन अरली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया वाई वी० ए० स्मिथ

6 अरली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया का अन्तिम सस्करण

7 इण्डियन एण्टीक्वेरी 1912, पृ० स० 15 और जे० पी० ए० एस० बी 1905 न्यू सिरीज पी० पी० 253 एफ एफ

8 'तस्यापरेण विख्यातो सकाराधोद्विजस्तथा', डा० काशीप्रसाद जायसवाल की टेक्स्ट, पृ० स० 72-73

सुबन्धु ही है।[1] डा0 बी0 राघवन[2] की भी यही मान्यता है। उक्त ग्रन्थ मे बिन्दुसार को 'बाल' एव 'दुष्टमन्त्रिक' बताया गया है।[3] अनुमान है, जैसा कि अन्य आधारो से प्रमाणित होता है कि 'दुष्टमन्त्री' पद से कदाचित सुबन्धु ही निर्दिष्ट है। बिन्दुसार के मन्त्री के रूप मे किसी 'सुबन्धु' का उल्लेख एवं परिचय कतिपय जैन ग्रन्थो मे भी प्राप्त होता है। आचार्य हेमचन्द्र के 'परिशिष्ट पर्व या स्थविरावली चरित[4] मे चाणक्य द्वारा चन्द्रगुप्त मौर्य के पश्चात् बिन्दुसार का अभिषेक तथा उसके मन्त्री के रूप मे सुबन्धु की नियुक्ति का वर्णन मिलता है। वही लोभी तथा 'कृतघ्न' सुबन्धु ने मन्त्री बनने के बाद अपने उपकारक चाणक्य को ही रासते से हटा कर अपने मन्त्रित्व को निष्कण्टक करने के लिए जो असफल षड्यन्त्र रचा था उसकी भी कहानी दी गई है। इस प्रकार 'मंजुश्रीमूलकल्प' में उल्लिखित 'दुष्ट मन्त्री' वाली बात भी पुष्ट हो जाती है। एक अन्य जैन आचार्य हरिषेण के 'बृहत्कथाकोष'[5] मे भी एक मन्त्री सुबन्धु का उल्लेख है। लेकिन उसे वहाँ नन्द का मन्त्री बताया गया है। कहना न होगा कि बृहत्कथाकोष में उल्लिखित सुबन्धु भी स्थविरावलीचरित का सुबन्धु ही है जो कदाचित चाणक्य द्वारा बिन्दुसार का मन्त्री नियुक्त होने के पूर्व कभी नन्दों का भी मन्त्री रह चुका था। बिन्दुसार से सम्बन्धित सुबन्धु का उल्लेख महाकवि दण्डी की

---

1 दिस 'सकाराधाद्विज' आर सुबन्धु इज मेन्सन्ड आफ्टर द 'विकाराधद्विज' ह्विच इज विष्णुगुप्त बोध आर सेड टू हैव बीन इन पुष्पपुर द मौर्य कैपिटल, डा0 का0 प्र0 जायसवाल की टेक्स्ट, पृ0 स0 72-73

2 आई0 एच0 क्यू वाल्यूम 19, 1943

3 मजूश्रीमूलकल्प श्लोक सख्या 448वॉ

4 अष्टमसर्ग श्लोक स0 446 से 469

5 पुरेस्ति पाटलीपुत्रे भूपतेरस्य मन्त्रिण —कथानक 143वॉ

अवन्तिसुन्दरीकथा[1] मे भी मिलता है। कथा के अनुसार सुबन्धु को बिन्दुसार ने बन्दी बनाया था (बन्दी बनाने का कारण कदाचित् सुबन्धु द्वारा चाणक्य की हत्या का कुचक्र ही था जो जैन ग्रन्थो मे वर्णित है।) सुबन्धु ने उसे प्रसन्न कर छुटकारा पाया था[2] तथा कोई 'वत्सराज चरित' भी लिखा था।[4] के० बी० पाठक ने वामनोदाहृत श्लोक के चन्द्रगुप्त का, चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य तथा चन्द्रप्रकाश का कुमार गुप्त के साथ तादातम्य माना है तथा वृत्तिगत 'च सुबन्धु' के स्थान पर 'वसुबन्धु' पाठ मानकर यह बताया है कि वसुबन्धु कुमारगुप्त, स्कन्दगुप्त तथा बालादित्य क्रमशः इन तीन सम्राटो का समकालिक था। वामनोदाहृत श्लोक पाठक जी के अनुसार अधुना लुप्त किसी 'गुप्त वंश' महाकाव्य से लिया गया था जिसमे वसुबन्धु का साक्षात् नाम ग्रहण है अथवा जो खुद वसुबन्धु द्वारा लिखा गया है।[4] मैसूर के पुरातात्विक शोधो के निदेशक आर० ए० नरसिहाचार्य के अनुसार वामन का उद्धरण किसी नाटक की प्रस्तावना मे सूत्रधार की उक्ति है तथा सुबन्धु को चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य—जिसकी मृत्यु पर अपनी कथा के दशम श्लोक मे कवि ने शोक प्रकट किया है—के पुत्र कुमारगुप्त का सचिव मानने में कोई अड़चन नही है।[5] डा० डी०

---

1 मद्रास गवर्नमेण्ट लाइब्रेरी, ट्रिनियल कैटलाग, 1919-22, आर० 3454, पृ० स० 5150

2 वही

3 वही

4 इण्डियन एण्टीक्वेरी 1911, पृ० स० 170

5 प्रो० एण्ड ट्रा० ऑफ द सेकेण्ड ओरिर० कान्फ० कलकत्ता 1922, पृ० स० 203-213

आर० भण्डारकर ने भी 'वसुबन्धु' पाठ को मान्यता देते हुए यह समाधान प्रस्तुत किया है कि वामनोदाहृत श्लोक मे उल्लिखित चन्द्रगुप्त तनय गोविन्द गुप्तहै। इसी का परमार्थ ने विक्रमादित्य के पुत्र बालादित्य के रूप मे उल्लेख किया है। डा० भण्डारकर के अनुसार इसका काल 411-414वी शताब्दी ई० है और यह या तो अपने भाई कुमारगुप्त द्वारा बहिष्कृत कर दिया गया था या फिर बिना किसी उत्तराधिकारी के ही काल कवलित हो गया था।[1] एक ग्रन्थ कृष्णचरित[2] प्राप्त हुआ है जिसका कर्तृत्व गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त को दिया गया है। इसमे राजकवि वर्णन प्रसंग मे सुबन्धु तथा तत्कृत वत्सराज चरित[3] का भी उल्लेख मिलता है। सरस्वती के प्रसाद से इसमे भी सुबन्धु की मुक्ति का वर्णन है।[4] इससे एक अतिरिक्त सूचना यह प्राप्त होती है कि विद्वान् वत्सराज ने सुबन्धु के साथ अपनी भगिनी का विवाह कर दिया था।[4]

अवन्तिसुन्दरीकथाकार तथा कृष्णचरितकर दोनो सुबन्धु को शूद्रक का पूर्ववर्ती मानते हैं उनका कवि वर्णन क्रम इस तथ्य को पुष्ट करता है। अपि शूद्रक कृत मृच्छकटिकम् मे शकार ने सुप्रसिद्ध पौराणिक तथा ऐतिहासिक व्यक्तियो के साथ एक 'सुबन्धु का भी स्मरण किया है।[5] स्पष्ट है कि शूद्रक अपने पूर्ववर्ती किसी सुबन्धु को अवश्य जानता था जो महामति चाणक्य आदि

---

1 इण्डि० एण्डी० 1912, पृ० स० 1-2

2 प० भगवद्दत् कृत् 'भारतवर्ष का बृहत् इतिहास' भाग 2 पृ० स० 346, इति० प्रकाशन मण्डल 2017 तथा ए० डी० पुसारकर का हिस्टारिकल डाटा फ्राम द कृष्णचरित एस्क्राइब्ड टू समुद्रगुप्त—मुम्बई विश्वविद्यालय जोर्नल भाग 22, अक सख्या 2

3 द्रष्टव्य 'कृष्णचरित'

4 द्रष्टव्य 'कृष्णचरित'

5 मृच्छकटिकम् अष्टम अक श्लोक स० 34

की तरह ही प्रसिद्ध था।

बिन्दुसार से सम्बन्धित सुबन्धु के विषय मे कुछ और भी साक्ष्य उपलब्ध होते है। अभिनवगुप्तपादाचार्य की अभिनवभारती[1] तथा ध्वन्यालोकलोचन[2] दोनो ही कृतियो मे सुबन्धु के साथ ही बिन्दुसार का भी उल्लेख हुआ है। अभिनवगुप्तपादाचार्य ने सुबन्धु के लिए महाकवि विशेषण का व्यवहार किया है तथा उसे 'वासवदत्तानाट्याधार' (अवन्तिसुन्दरीकथा तथा कृष्णाचरित मे कदाचित् इसी को 'वत्सराजचरित' नाम से कहा गया है) का रचयिता बताया है।[3] महाकवि सुबन्धुकृत उपर्युक्त 'वासवदत्तानाट्याधार' का उल्लेख रामचन्द्र गुणचन्द्र कृत नाट्यदर्पण मे वासवदत्तानृत्तधार नाम से किया गया है। शारदातनय के भावप्रकाश[4] में भी सुबन्धु का उल्लेख मिलता है इसके अतिरिक्त सूचना यह प्राप्त होती है कि सुबन्धु ने नाटक का भी पंचधा लक्षण बताया है।

वामन द्वारा उल्लिखित चन्द्रगुप्त तनय युवा चन्द्रप्रकाश के सचिव सुबन्धु के अभिज्ञान को लेकर विद्वानो में बहुत मतभेद है। **महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री**[5] के अनुसार चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के चन्द्रप्रकाश और कुमारगुप्त दो पुत्र थे। चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य की मृत्यु के बाद दोनो भाइयो के बीच सत्ता के लिए सघर्ष छिड़ गया जिसमें कुमारगुप्त विजयी हुआ और चन्द्रप्रकाश

---

1 अभिनवभारती, मद्रास सरकार ओरि0 लाय0 मैनु0 वाल्यूम 3, पृ0 45 अगेन आन पेज 47 ऑफ द सेम—'नाट्यायितच वासवदत्तानाट्यधारे प्रति प (पदम्) दृश्यते।

2 ध्वन्यालोक लोचन काशी सस्करण पृ0 स0 363

3 ध्वन्यालोक लोचन काशी सस्करण, उद्धरण स0 22

4 सुबन्धुर्नाकस्यापि लक्षण प्राह पचधा इत्यादि बडौदा सस्करण। वही 238

5 जे0 पी0 ए0 एस0 बी0 1905 और इण्डियन एण्टीक्वेरी 1912 पृ0 स0 15

जिसका सचिव वासवदत्ताकथाकार सुबन्धु था नष्ट हो गया। शास्त्री जी के अनुसार सुबन्धु की वासवदत्ता के '**हिमकरोद्योत**'[1] तथा '**शशिरुक्**'[2] पदो मे उसी वामनोदाहृत (चन्द्रप्रकाश) की ओर सङ्केत है जिसे टीकाकार इतिहास की अनभिज्ञता के कारण पकड़ने मे असमर्थ रहे है। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने अपने मत के समर्थन मे वासवदत्ता कथा के बहुचर्चित दशम श्लोक[3] को भी प्रस्तुत किया है जिसमे कवि ने विक्रमादित्य के बाद साहित्य तथा समाज की दुःस्थिति पर शोक प्रकट किया है। वासवदतता के दशम श्लोक तथा वामन के उद्धरण को दृष्टि मे रखते हुए **डा0 मनमोहन घोष** ने जो निष्कर्ष[4] प्रस्तुत किया है प्रकृत प्रसङ्ग मे वह निश्चय ही एक महत्वपूर्ण प्रयास होता किन्तु वर्तमान ज्ञान के आधार पर अब यह मानना सम्भव नही लगता कि वामनोद्धृत श्लोक का चन्द्रप्रकाश कुमारगुप्त है और चन्द्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य ही है या वामनीय वृत्ति मे उल्लिखित सचिव सुबन्धु वासवदत्ता कथा का कवि है। **डा0 हार्नली** ने वामनोदाहृत श्लोक के चन्द्रप्रकाश को चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य का पुत्रतो स्वीकार किया है किन्तु महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री के विरुद्ध उन्होने यह निष्कर्ष निकाला है कि चन्द्रप्रकाश कुमारगुप्त का ही सम्राट होने के पूर्व का नाम है।[5] इन्होने भी 'चसुबन्धु' के स्थान पर 'वसुबन्धु' पाठ ही स्वीकार किया है।

---

1 वासवदत्ता, चौखम्बा सस्करण, श्लोक स0 5

2 वासवदत्ता, चौखम्बा सस्करण, श्लोक स0 9

3 वासवदत्ता, चौखम्बा सस्करण, पृ0 स0 5 श्लोक सख्या 10

4 इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली वाल्यूम 18, 1942, पृ0 स0 373-375

5 प्रोसिडिग्स एण्ड ट्राजिक्शन्स ऑफ द सेकेण्ड ओरिएन्टल कान्फरेन्स कलकत्ता 1922, पृ0 स0 203-213 मे रगास्वामी सरस्वती के लेख मे उद्धृत।

शासक के रूप में सुबन्धु का उल्लेख :

ऋषि, कवि तथा सचिव के अतिरिक्त **श्री रेश्वर वलवन्त गर्दे** के एक लेख से एक महाराज पदभाक् सुबन्धु का भी परिचय मिलता है। महाराज सुबन्धु के दो ताम्रपत्र शासन प्राप्त हुए है। एक बडवानी[1] से प्राप्त हुआ है, दूसरा उपर्युक्त गर्दे जी ने ही 1929 मे ग्वालियर राज्य के अमझेरा (सम्प्रति सरदारपुर) जिले मे स्थित बाघ की प्रसिद्ध बौद्ध गुफाओं के उत्खनन के समय प्राप्त हुआ था। दोनो ही शासनपत्र माहिष्मती नगरी से प्रचालित है तथा गुप्त कालीन लिपि में है। बाघ ताम्रपत्र की तिथि नष्ट हो गई है। बडवानी वाले पर संवत् 167 का उल्लेख है। स्पष्ट है कि उल्लिखित संवत् गुप्तो का है। किन्तु **महामहोपाध्याय मीराशी** ने इसे कलचुरीचेदि संवत् माना है। गुप्त संवत् का प्रारम्भ ई0 सन् 319 मे माना जाता है। कलचुरी चेदि संवत् ई0 सन् के 249-50वें वर्ष मे चला था। उभयथा ताम्रपत्रो की तिथि 5वी शताब्दी ईस्वी ठहरती है। यही प्रकृत महाराज सुबन्धु का भी काल होना चाहिए।

सुबन्धु : काव्यकार के रूप में :

इन सुबन्धुओं के अलावा किसी कवि सुबन्धु का वाक्पतिराज[2], राजशेखर, मंखक[3] तथा कविराज[4] प्रभृति सामान्य कृतिकारो[5] ने भी सादर स्मरण किया है। बारहवी सदी के एक कन्नड़ अभिलेख[6] मे भी एक कवि सुबन्धु का उल्लेख है।

---

1 एप्रीग्रेफिया इण्डिका, वाल्यूम 19, पृ0 स0 262

2 गउडवहो 800वॉ श्लोक

3 श्रीकण्ठचरित 2/53

4 राघवपाण्डवीय 1/41

5. एल0 एच0 ग्रे कृत् वासवदत्ता का अनुवाद भूमिका भाग

6 राइस कृत् मैसूर इन्स्क्रिप्शन्स भाग 3 बैगलोर 1979

अब प्रश्न यह है कि क्या हम इन अनेकत्र उल्लिखित सुबन्धुओं मे से किसी को वासवदत्ताकथाकार मान सकते है?

वैदिक वाङ्मय मे उल्लिखित सुबन्धु असन्दिग्ध रूप से वासवदत्ता कथा के कवि सुबन्धु से सर्वथा पृथक् व्यक्ति है। बिन्दुसार से सम्बन्धित सुबन्धु कवि है और इस रूप मे अवश्य ही वह वासवदत्ता कथाकार का समानधर्मा समाननामा तथा समकक्ष भी है। किन्तु बिन्दुसार से सम्बन्धित सुबन्धु वासवदत्तानाट्याधार या वासवदत्तानृत्तपार या वत्सराजचरित का कवि है जबकि आलोच्य ग्रन्थ का कवि वासवदत्ताकथाकार है। पुनश्च बिन्दुसार का समकालिक होने के कारण वासवदत्तानाट्याधार के कवि सुबन्धु का काल तीसरी सदी ई० पू० मान्य है जबकि वासवदत्ताकथाकार सुबन्धु को ईसवी सन् के बाद के व्यक्तियो का भी अनेकत्र स्मरणोल्लेख करने के कारण कम से कम वर्तमान ज्ञान के आधार पर ईसा पूर्व किसी शताब्दी मे नही रखा जा सकता है। अतः कालकला एवं कृतिविधा के अनुरोध से यही कहना संगत है कि आलोच्य कथाकार सुबन्धु से वासवदत्तानाट्याधार या वत्सराजचरित का कवि सुबन्धु भी सर्वथा पृथक् व्यक्ति है।

भारतीय अलङ्कारशास्त्रियो ने वस्तु, नेता तथा रस इन तीन तत्त्वो को काव्यालोचन की प्रधान कसौटी माना है। इन्ही तीन तत्वो का स्पष्टतः निर्देश आचार्य धनञ्जय ने भी अपने ग्रन्थ दशरूपक मे किया है।[1] वस्तु, नेता तथा रस का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। सच तो यह है कि कथावस्तु का साध्य है—

---

1 दशरूपक, 1/16

रसचर्वणा अथवा रसानुभूति और इस साध्य तक पहुँचने का साधन है नेता अथवा पात्रगण। इस प्रकार किसी ग्रन्थ की कथावस्तु स्वय मे एक उपलब्धि है। इसकी सार्थकता दर्शक के लिए होती है और दर्शक की सार्थकता कथावस्तु के लिए। कथा मे शास्त्रीय निरूपण के अनुसार प्रारम्भ मे पद्य द्वारा देवादि को नमस्कारात्मक मङ्गल किया जाया करता है और खल-निन्दा तथा सज्जन-प्रशंसा-सम्बन्धी पद्य भी उपन्यस्त रहा करते है।[1] रुद्रट ने कहा है कि कथा में कुछ श्लोको मे देवो और गुरुओं को नमस्कारकरके कवि रचयिता रूप मे अपना और अपने वश का सक्षेप मे वर्णन करे।[2] कवियो मे आदृत तथा ग्रहीत इस शास्त्री मर्यादा का कवि सुबन्धु ने भी यथारुचि पालन किया है। आरम्भिक चार श्लोकों मे कवि ने क्रमशः भगवती सरस्वती, भगवान् श्रीकृष्ण तथा उमापति भगवान् चन्द्रमाललाम का स्तवन किया है। पॉचवे श्लोक मे सज्जन प्रशंसा तथा छठवे, सातवे, आठवें और नवे में दुर्जन निन्दा वर्णित है। दसवे बहुचर्चित श्लोक मे कवि ने कीर्तिशेष विक्रमादित्य का स्मरण किया है, उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की है। ग्यारहवे श्लोक में सुगन्ध न मिलने पर भी दर्शनमात्र से नेत्रो को आकृष्ट करने वाली मालतीमाला की तरह गुणो का ज्ञान न होने पर भी कानों में मानो मधु की धारा, वर्षा करने वाली सत्कवि की भणिति की प्रशंसा की है। बारहवे मे कवि ने बताया है कि गुणियो को भी स्वरूप की प्रतिपत्ति दूसरो से ही होती है। ऑखे भी तो अपनी महिमा का दर्शन दर्पण मे ही कर पाती हैं। तेरहवे, अन्तिम श्लोक[3] में कवि ने अपने ऊपर सरस्वती की कृपा, अपनी सुजनैक बन्धुता तथा

---

1 साहित्यदर्पण, 6/333

2 रुद्रट काव्यालङ्कार, 16/20

3 वासवदत्ता, श्री रङ्गम् सस्करण—ग्रन्थान्त श्लोक

प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्ध के विन्यास मे विदग्धता और एक निबन्ध (वासवदत्ता कथा) की रचना का वर्णन करते हुए कदाचित् परम्परानुसार[1] अतिशय सक्षेप मे अपना परिचय तथा वासवदत्ता कथाकार के रूप मे अपना उल्लेख किया है।

रुद्रट के अनुसार कथा मे देवादिस्तवन, खलादि वृत्तकीर्तन तथा अपना और अपने वंश का परिचय देने के बाद कवि अनुप्रासयुक्त, लघु अक्षरो वाले गद्य से महाकाव्य की भाति पुरवर्णनादि क्रम से कतावस्तु का विस्तार करे।[2] आचार्य के अनुसार कथावस्तु का विस्तार प्रसङ्गानुकूल देश, पर्वत, नदी, अटवी, वन, सरसी, मरुस्थल, सागर, द्वीप, लोक, पड़ाव, सूर्यास्त, सन्ध्या, अन्धकार, चन्द्रोदय, रात्रि, युवको के समाज और सङ्गीतादि के वर्णन से करना चाहिए।[3] काव्यादर्शकार ने भी महाकाव्य मे वर्णनीय नगरार्णवशैलर्तुचन्द्रोदयादि के वर्णन को स्वीकार किया है। कवि सुबन्धु ने वासवदत्ता की कथायोजना मे इनका प्रचुर प्रयोग किया है। इसमे सन्देह नही है कि नगरीवनपर्वतादि के सुन्दर वर्णनो मे कवि का कवित्व सर्वथा सफल और अद्‌भुत कल्पनामण्डित रहा है जिसका यथास्थान, यथावसर विवेचन होगा।

वासवदत्ता की कथावस्तु

सुबन्धु की कीर्ति पताका उनकी एकमात्र उपलब्ध रचना 'वासवदत्ता' पर अवलम्बित है। सुबन्धु की कृतियो मे वासवदत्ता ही गद्यकाव्य की एकमात्र कृति है। संस्कृत के अलङ्कृत गद्यकाव्यो मे इसका आदरपूर्ण स्थान है। बाण ने

---

1 रुद्रट काव्यालङ्कार, 16/20

2 रुद्रट काव्यालङ्कार, 16/21

3 रुद्रट काव्यालङ्कार, 16/13-15

अपने ग्रन्थ मे जिस वासवदत्ता का उल्लेख किया है वह सुबन्धुकृत न होकर पतञ्जलि (200 ई0 पू0) की पूर्ववर्ती रचना है।[1] यद्यपि पतञ्जलि ने किसी वासवदत्ता का उल्लेख किया है किन्तु उसका सम्बन्ध सुबन्धुकृत वासवदत्ता से स्थापित करना उचित न होगा। सुबन्धु की इस वासवदत्ता का सम्बन्ध प्राचीन सस्कृत साहित्य की प्रसिद्ध आख्यायिका वासवदत्ता तथा उदयन की प्रसिद्ध प्रणयकहानी उदयन कथा से कुछ भी नही है। उसके साथ सुबन्धु की कृति का केवल नामसाम्य है। सुबन्धु वाली वासवदत्ता की कथा संस्कृत साहित्य में अन्यत्र कही उपलब्ध नही होती। कथासरित्सागर या बृहत्कथामंजरी मे यह कथा नही मिलती। ऐसा प्रतीत होता है कि सुबन्धु ने प्रचलित लोक-कथाओं से आवश्यक सामग्री प्राप्त करके वासवदत्ता की कथा का ढाँचा खड़ा किया है वह मौलिक ही है इसलिए वासवदत्ता की कथा लेखक के अपने मस्तिष्क की उर्वर कल्पना होने के कारण कवि की स्वयं की निजन्धरी कथा जान पड़ती है। वासवदत्ता का कथानक बहुत लघु है जिसे सुबन्धु ने युवक कन्दर्पकेतु और युवती वासवदत्ता की प्रणय गाथा के आधार पर चित्रित किया है।

संक्षिप्त कथानक : पुस्तक का प्रारम्भ सरस्वती-वन्दना से किया गया है। इसके पश्चात् दो पद्यो मे श्रीकृष्ण की स्तुति और एक पद्य में शिव जी की स्तुति की गई है। सज्जन प्रशंसा, खलनिन्दा आदि के बाद में कवि ने स्वरचित 'प्रत्यक्षरशलेषमय कृति वासवदत्ता का उल्लेख किया है। कथा का प्रारम्भ एक अत्यन्त प्रतापी व गुणवान् राजा चिन्तामणि के वर्णन से होता है, जिसके शासन

---

1 वी0 वरदाचार्य, सस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ0 16

मे प्रजा नितान्त सन्तुष्ट थी।[1] इस राजा का कन्दर्पकेतु नामक सुन्दर पुत्र था। चिन्तामणि का पुत्र कन्दर्पकेतु भी पिता की भाँति दयालु, गुणवान् एव प्रजाप्रिय था।[2] एक दिन जबकि रात्रि ढलने को ही थी राजकुमार कन्दर्पकेतु ने स्वप्न मे एक अत्यन्त अनुपम सुन्दरी अष्टादशवर्षदेशीय कन्या को देखा जो मानो मन की आकर्षणमन्त्रसिद्धि, कामदेवरूपी जादूगर की आँखो को बाँधने की महौषधी और प्रजापति की त्रिभुवनविलोभन सृष्टि है।[3] वह उस स्वप्नदृष्टा कन्या के रूप पर मुग्ध होकर विरह से व्याकुल होकर उस अज्ञातसुन्दरी को खोजने के लिए अपने मित्र मकरन्द के साथ चुपचाप नगर से निकल पडता है। ढूँढते-ढूँढते वे विन्ध्याटवी पहुँच जाते हैं। चलते हुए वे दोनो रात्रि में विन्ध्य पर्वत की तलहटी मे एक जामुन के वृक्ष के नीचे विश्राम के लिए ठहरते हैं। रात्रि मे विश्राम करते हुए उन दोनो को उसी वृक्ष पर परस्पर झगडते हुए शुक-दम्पत्ति का संवाद सुनाई देता है। सारिका अप्रसन्नता व्यक्त करते हुए क्रुद्ध होकर अपने पति शुक से रात्रि को देर से आने का कारण पूछती है। शुक सारिका से बताता है कि आज उसने अपूर्व तथा बृहत् कथा सुनी है और उसकी घटनाएं स्वय प्रत्यक्ष भी की है, इसलिए इतनी देर हो गई। कुतुहलवश सारिका के पूछने पर शुक अपने देर से आने का कारण बताते हुए पाटलिपुत्र की राजकुमारी वासवदत्ता की मनोहर कथा का वर्णन करता है। शुक बताता है कि कुसुमपुर नगर मे श्रृङ्गारशेखर नामक राजा राज्य करता है। उसकी रूपवती राजपुत्री वासवदत्ता ने राजा चिन्तामणि के रूपमान् पुत्र कन्दर्पकेतु को स्वप्न मे देखकर उस पर मुग्ध

---

1 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 7-20

2 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 21-31

3 वासवदत्ता चौ० स०, पृ० स० 31-50

होकर उस अपरिचित युवक से प्रणय करने लगी। शुक यह भी बताता है कि वासवदत्ता उसकी खोज मे तथा अपने प्रति उसके मनोभावो की परीक्षा के हेतु अपनी प्रिय सारिका तमालिका को पत्रदेकर भेजा है जो इसी वृक्ष के नीचे बैठी हुई है। शुक का वृत्तान्त यहॉ समाप्त हो जाता है।[1] वृक्ष के नीचे विश्राम करते हुए दोनो मित्र यह सवाद सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। कन्दर्पकेतु और मकरन्द सारिका तमालिका के साथ रात्रि मे ही कुसुमपुर पहुॅच जाते है। इस प्रकार शुक दम्पत्ति की सहायता से नायक और नायिका एक दूसरे से मिलते हैं। दोनों के हृदय मे आपस मे गाढ अनुराग है, लेकिन कुसुमपुर पहुँचने पर जब कन्दर्पकेतु को वासवदत्ता की प्रिय सखी कलावती से यह ज्ञात होता है कि वासवदत्ता के पिता अपनी पुत्री का विवाह उसकी इच्छा के विपरीत कन्दर्पकेतु के साथ न करके किसी विद्याधर राजकुमार के साथ करना चाहते हैं तो इस अड़चन के कारण कन्दर्पकेतु समाचार जानने के लिए अपने मित्र मकरन्द को उसी नगर मे नियुक्त करके राजपुत्री वासवदत्ता के साथ एक जादुई घोड़े पर सवार होकर नगर से भागकर दोनों प्रेमी विन्ध्याटवी मे पहुँच जाते हैं और रात्रि भर जागते रहने तथा थके होने के कारण दोनो एक कुञ्ज में सो जाते हैं। प्रातःकाल के समय जब कन्दर्पकेतु सोया हुआ ही था वासवदत्ता पहले जाग जाती है और उसे सोया हुआ छोड़कर अपने प्राणवल्लभ को बहुत दिनो का भूखा-प्यासा समझकर उसके लिए कन्द-मूल एकत्रित करने के लिए अकेली ही निकल पड़ती है। वासवदत्ता को वन मे घूमते देखकर दो भिन्न-भिन्न किरात समूह उसके सौन्दर्य से आकृष्ट होकर उसका पीछा करते हैं और उस पर अपना अधिकार जमाकर उसे

---

1 वासवदत्ता चौ0 सं0, पृ0 स0 85-147

प्राप्त करने के लिए उन दोनो किरात सेनाओं मे युद्ध होता है। अवसर पाकर वासवदत्ता वहाँ से भागने मे समर्थ होती है और चुपके से खिसकर समित्संचयार्थ बाहर गये एक ऋषि के आश्रम मे पहुॅच जाती है। इन दोनो किरात झुण्डो के बीच हुए युद्ध मे ऋषि का आश्रम पूर्णतया ध्वस्त हो जाता है। लौटने पर ध्वस्त आश्रम को देखकर ऋषि अत्यन्त क्रुद्ध हो जाते हैं और वासवदत्ता को इस विनाश का कारण समझकर उसे शाप दे देते है। आश्रम मे ऋषि के शाप से वासवदत्ता प्रस्तर की शिला बन जाती है। उधर दोपहर में जब कन्दर्पकेतु की आँख खुलती है तो वह वासवदत्ता को वहॉ नही पाता है। वासवदत्ता को खोकर कन्दर्पकेतु अत्यन्त तीव्र विरहावेश मे दुःखी होकर आत्महत्या करने के लिए उद्यत होकर शरीर त्याग करने के लिए समुद्र मे उतरना प्रारम्भ करता है किन्तु एक आकाशवाणी उसे आत्मघात करने से विरत कर देती है[1] और साथ ही उसे आश्वासन भी मिलता है कि उसकी प्रिया उसे मिल जायेगी। वन मे इधर-उधर घूमते हुए और अपनी प्रिया को खोजते हुए कन्दर्पकेतु ऋषि के आश्रम मे उसी स्थल पर आ पहुँचता है जहाँ वासवदत्ता प्रस्तर बनी खड़ी रहती है उस स्थल पर कन्दर्पकेतु को दृष्टिगत वह प्रस्तर की मूर्ति अपनी प्रिया के सदृश जान पड़ती है विस्मृति और विस्मय के खुमार मे वह उस मूर्ति का स्पर्श करता है ज्यो ही वह शिला पर हाथ रखता है वह पाषाण-प्रतिमा का रूप त्यागकर पुन अपने मानवी रूप वासवदत्ता को धारण करके उठ खडी हो जाती है क्योकि उसके शाप की अवधि समाप्त हो गई थी। दोनों प्रेमियो का पुनर्मिलन हो जाता है। कन्दर्पकेतु के पूछने पर वासवदत्ता अपने शिलारूप मे होने की घटना कह

---

1 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० 245

सुनाती है। वह कन्दर्पकेतु से पहले ही जाग गई थी फल-मूत लेने के लिए कुछ दूर ही गई थी कि किरातो के दो दल उसे पकडने के लिए झपटते है। दैववशात् कोई भी दल उसे प्राप्त नही कर सका। दोनो दल एक-दूसरे से लडकर नष्ट हो जाते हैं। लेकिन उस आश्रम के अध्यक्ष मुनि जब वहॉ पहुॅचते हैं तो अपने आश्रम के नष्ट-भ्रष्ट होने का कारण वासवदत्ता को ही जानकर उसे शिला हो जाने का शाप दे डालते है। बाद मे अनुनय-विनय किये जाने पर मुनि ने सहृदय होकर कन्दर्पकेतु के स्पर्श से शाप के प्रभाव के समाप्त हो जाने की छूट दे दी थी। इसके अनन्तर मकरन्द भी इनसे आकर मिलता है। तब कन्दर्पकेतु अपनी प्रेयसी और मित्र के साथ सानन्द राजधानी वापस लौट आता है। जहाँ कन्दर्पकेतु वासवदत्ता के साथ अलभ्य मनोवाञ्छित सुखो का उपभोग करते हुए सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करता है।

वासवदत्ता और कथानक रूढ़ियाँ : उपरोक्त वर्णित वासवदत्ता के सक्षिप्त कथानक की छानबीन करने से स्पष्ट है कि लोक-कथा मे सर्वत्र प्रचलित अनेक रूढ़ियॉ प्रेमोत्पादन के लिए कारणभूत मानी गई है। सुबन्धु ने लोककथाओं की कथानक रूढियो और 'मोटिफ' का आश्रय लेकर अपनी कल्पना से इस प्रणयकथा का प्रासाद निर्मित किया है। वासवदत्ता की कथावस्तु मे हम जिस लोककथा की कथानक रूढियो या 'मोटिफ' का ग्रहण कर पाते हैं उन पर कुछ सङ्केत कर देना आवश्यक होगा वासवदत्ता की ये रूढ़ियाँ निम्नलिखित है—

(1) स्वप्न मे एक-दूसरे को देखकर नायक-नायिका का परस्पर प्रेमासक्त हो जाना।

(2) नायक-नायिका के मिलन मे शुक (पक्षी) द्वारा सहायता करना।

(3) शुक के द्वारा कथा के कुछ अश को वक्ता के रूप मे कहलवाना।

(4) अत्यधिक तीव्र वेग वाले (मनोजव) जादू के घोड़े के द्वारा दोनो प्रेमियो का चुपके से भाग जाना।

(5) शाप की कल्पना तथा शाप के द्वारा नायक अथवा नायिका का शिला बन जाना और बाद मे अपने पहले रूप मे आ जाना।

(6) नायक अथवा नायिका को आत्मघात करने से आकाशवाणी के द्वारा रोका जाना।

स्वप्नदर्शन से प्रणयोद्बोध वाली कथानक रूढ़ि का प्रयोग हम कई लोककथाओं मे पाते हैं। उषा तथा अनिरुद्ध की प्रसिद्ध प्रणयकथा मे भी इस 'मोटिफ' का प्रयोग किया गया है। इसी का प्रयोग कई लोककथाओं मे सुना जाता है। नायक-नायिका के रागोद्बोध के लिए कई तरह के हेतु माने गये है— साक्षात् दर्शन, गुणश्रवण, चित्रदर्शन या स्वप्नदर्शन। वासवदत्ता मे कन्दर्पकेतु नायिका को स्वप्न मे ही देखता है, नायिका भी नायक को स्वप्न में ही देखकर मोहित होती है। नायक-नायिका के मिलन कराने में भी कई कथाओं मे पक्षी की 'मोटिफ' वाली योजना पायीजाती है। नल तथा दमयन्ती को मिलाने मे हस का हाथ है। बाद के अपभ्रंश तथा हिन्दी के कवियों ने भी इस 'मोटिफ' को अपनाया है। **चन्द के रासो में पृथ्वीराज और पद्मावती** को मिलाने मे शुक का हाथ है, तो **जायसी** के पद्मावत मे रत्नसेन और पद्मावती को मिलाने मे हीरामन शुक का हाथ है। वासवदत्ता से नायक-नायिका को मिलाने में तमालिका नामक मैना

का हाथ पाया जाता है। लोककथाओं की तीसरी रूढि मनुष्य की तरह बोलते हुए शुक-शुकी की योजना है। वासवदत्ता मे नायिका की विरहक्षाम स्थिति का वर्णन शुक-सारिका के सवाद के रूप मे कराया जाता है।[1] इतिवृत को गति देने के लिए इस प्रकार शुक के मुख से कथा कहलवाने की रूढि का प्रयोग शुकसप्तति मे भी मिलता है। कादम्बरी की कथा भी वैशम्पायन शुक के मुख से कहलवाई गई है। अपभ्रश के एक काव्य **'करकण्डचरिउ'** मे भी इस रूढि का प्रयोग किया गया है और यही रूढ़ि एक ओर भृङ्ग-भृङ्गी के संवाद के रूप मे **विद्यापति की 'कीर्तिलता'** मे प्रस्फुटित हुई है। **आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी** का अनुमान है कि इस रूढि का प्रयोग 'चन्द' ने भी अपने 'रासो' में किया है। घोड़े या उडनखटोले के द्वारा नायिका के साथ उसके घर से भाग निकलने की रूढि का प्रयोग तो प्रणय सम्बन्धी लोक-कथाओं का खास तत्त्व रहा है। उदयन भी प्रद्योत महासेन की पुत्री को लेकर घोड़े से भाग निकला था। शाप की कल्पना के द्वारा लोककथाएँ कुछ अति मानवीय तत्त्वो का सङ्केत करती है। शाप रूढि पौराणिक कथाओं मे पायी जाती है और उसका प्रयोग कालिदास ने किया है। वासवदत्ता का शाप के कारण शिला बनना एक ओर अहिल्या वाली घटना और दूसरी ओर कुमारवन मे प्रविष्ट उर्वशी के शाप के कारण लता के रूप मे परिवर्तित होने[2] की कथानक रूढ़ियो की याद दिलाता है। आकाशवाणी के द्वारा नायक और नायिका को सान्त्वना दिलाना भी भारतीय लोककथाओं की एक खास 'मोटिफ' है। इन अन्तिम दोनो रूढ़ियों का प्रयोग तो बाण ने भी अपनी

---

1 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 85

2 कालिदास का विक्रमोर्वशीय

कादम्बरी मे किया है।

इस प्रकार 'वासवदत्ता' मे सुबन्धु ने लोककथाओं की सभी वर्णनात्मक रूढियो (मोटिफ) का प्रयोग करते हुए नायक तथा नायिका के परस्पर मिलन को '**रोमानी**' कहानी कही है, जो कई विघ्नो पर विजय पाकर अन्त मे सुख से जीवन यापन करते है। किन्तु साधारण लोककथाकार या बूढी दादी-नानी की तरह सुबन्धु का ध्येय घटना-वर्णन नही है, अपितु उनका ध्येय वर्णनो को कलात्मकता देना, नायक या नायिका के अङ्गो का पूरी बारीकी से अलङ्कृत वर्णन करना, उनके भावो का, उनकी एक-दूसरे की प्राप्ति के लिए की गई चेष्टाओं, विरह एवं मिलन के प्रतिबन्धक रूप विघ्नो का विस्तार से वर्णन करना है। सुबन्धु लोककथाकार की तरह सीधी कथा कहता नही चला जाता है, वह रुक-रुक कर आगे बढ़ता है और कथा के साथ नगर, समुद्र, पर्वत, ऋतु, सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रोदय युद्धादि के अत्यधिक कलात्मक वर्णन साथ मे चलते है जिनके द्वारा वो अपने विशाल शास्त्रीय ज्ञान तथा समृद्ध कलावित्ता का परिचय देता जाता है।

चिन्तामणि का वर्णन : अभूतपूर्व एक चिन्तामणि नामक राजा हुए हैं। वराहावतार द्वारा पृथ्वी का उद्धार करने वाले नारायण के समान जिसने बिना प्रयास ही समस्त पृथ्वीमण्डल को अपने अधीन कर लियाहै। अपने गुणो और कृत्यो से यह भगवान् नृसिह, श्रीकृष्ण, नारायण, वरुण तथा कामदेवादि की बराबरी करता था। उसके शासन मे जनता में किसी प्रकार का राग-द्वेष नही था। तीन शक्तियो से सम्पन्न वह राजा क्षत्रियोचित मार्ग से च्युत न होने वाला मनुष्य था। अपनी रानी सुदक्षिणा से युक्त गौ की रक्षा करने वाले दिलीप के

समान, कुशल विद्वानो से युक्त तथा पृथ्वी की रक्षा करने वाला था।

राजपुत्र कन्दर्पकेतु का वर्णन : राजा चिन्तामणि के कन्दर्पकेतु नामक पुत्र था। पराक्रमी राजकुमार कन्दर्पकेतु दशरथपुत्र राम को आनन्दित करने वाला सुबाहु, समदृष्टि, कुल को उज्ज्वल करने वाला, सम्पूर्ण कलाओं का आश्रय तथा उत्तम दशा सम्पन्न था। एक बार कभी भोरही रात मे जबकि कुमुदिनी नायक चन्द्रमा मानो शङ्ख-कान्ति को प्राप्त करने की अभिलाषा से पश्चिम समुद्र मे डूब रहा था, उस समय भ्रमर शीतल हिमकणो के कर्दमरूप बने हुए कुमुदो के पराग मे फंसे हुए थे तथा चक्रवाक प्रियतमाओं के शब्द को दूर तक फैलाने वाली प्रातःकालीन वायु धीरे-धीरे चल रही थी ऐसे समय मे कन्दर्पकेतु ने एक अट्ठारह वर्षीय कन्या देखी।

अष्टादशवर्षदेशीय स्वप्नदृष्ट कन्या का वर्णन : वह रमणी कमर में मेखला पहने हुए तथा उन्नत पयोधरो से अलङ्कृत होती हुए अत्यन्त कृश मध्यभाग से सुशोभित हो रही थी। दीप्यमान अलङ्कारों (सूर्य), शुभ्रकान्ति मुस्कराहट (चन्द्र), रक्तवर्ण अधर (मङ्गल), मनोरम दर्शन (बुध), विशाल नितम्बमण्डल (बृहस्पति), श्वेत हार (शुक्र), मन्दगामी चरण (शनैश्चर), नीलवर्ण केशपाश (राहु) और प्रफुल्ल नेत्रकमल (केतु) द्वारा ग्रहमयी सी, प्रजापति की तीनो लोको को लुभाने वाली रचना के समान स्थित थी।

स्वप्नदृष्ट कन्या के लिए कन्दर्पकेतु की व्याकुलता और मकरन्द का उपदेश : अनन्तर प्रातःकाल जागने पर कन्दर्पकेतु अपने आपको सम्भाल न सका। जैसा कि उसकी चेष्टाओं से विदित हो रहा था—वह, आलिङ्गन करने के लिए आकाश मे बिना लक्ष्य ही दोनो बाहुओं को प्रसारित करके '**एह्येहि**

प्रियतमे! मा गच्छ, मा गच्छे' ति इत्यादि प्रलाप करने लगा। फिर उसने शय्या पर ही लेटे हुए, समस्त परिजनो का वहाँ आना निषिद्धकर तथा किवाड बन्द करके किसी प्रकार दिवस तथा रजनी को बडे कष्ट से व्यतीत किया। इसके बाद उसके प्रियमित्र मकरन्द ने बड़े यत्न से अन्दर जाकर उसे काम के बाणो से व्यथित हुआ देखकर अनेको प्रकार से समझाया कि वह इस कुमार्ग से निवृत्त होकर सन्मार्ग का अवलम्बन करे। किन्तु राजकुमार पर उसके समझाने-बुझाने का कोई अनुकूल प्रभाव नही पडा। कन्दर्पकेतु ने कामबाण की व्यथा से उत्पन्न असमर्थता के कारण बड़े कष्ट से थोड़े से शब्दो मे मकरन्द से कहा कि 'मित्र, **नायमुपदेशकालः**। मेरे अङ्ग भस्म से हो रहे हैं, इन्द्रियाँ खौल सी रही है, कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान समूल नष्ट हो रहा है, इसलिए अब इस चर्चा को छोड़ो।

स्वप्नदृष्ट कन्या के लिए कन्दर्पकेतु का गृह निष्क्रमण : कन्दर्पकेतु ने अपने मित्र मकरन्द से कहा यदि तुम बाल्यकाल से मेरे सुख-दुःखो के साथी रहे हो तो मेरे साथ आओ यह कहकर परिजनों की आँख बचाकर राजकुमार अपने मित्र मकरन्द के साथ नगर से चल पडा।

विन्ध्याचल, नर्मदा और जम्बुवृक्ष का वर्णन : अनन्तर अनेक **नल्वपरिमित** (नल्व = 400 हाथ) मार्ग पार करके उन्हे विन्ध्याचल पर्वत दृष्टिगोचर हुआ। जिसने अगस्त्य ऋषि के कहने से आकाश मे फैले हुए अपने हजारों शिखरो को सङ्कुचित कर लिया था। इस पर्वत के चारों ओर सिप्रा नदी बह रही थी जिससे ऐसा प्रतीत होता था मानो नदी ने उस पर्वत को प्रियतमा के समान अपनी तरङ्गरूपी भुजाओं से आवेष्टित कर लिया हो। विन्ध्याटवी से कुछ दूर जाकर स्नेहवती छाया तथा अनेक विटो से दीप्यमान वेश्यावृन्द के समान, अनेक पत्तों

से सुशोभित जम्बूवृक्ष के नीचे राजकुमार कन्दर्पकेतु और मकरन्द थके होने के कारण विश्राम करने लगे। इस समय भगवान् सूर्य भी अस्ताचल शिखर पर चढ गये। तब, मकरन्द ने फल-मूल लाकर किसी प्रकार कन्दर्पकेतु को भोजन कराया। अनन्तर उसने भी बचे हुए फल-मूलादि से भोजन किया। उसके बाद हृदयरूपी पट्टिका पर सकल्परूपी तूलिका से चित्रित उस प्रियतमा को देखते हुए कन्दर्पकेतु, मकरन्द निर्मित पत्तो की शैय्या पर सो गया।

शुक-सारिका संवाद : एक प्रहर रात व्यतीत होने पर तम्बू वृक्ष के शिखर पर आपस मे लडते हुए शुक-दम्पत्ति का कोलाहल सुनकर कन्दर्पकेतु ने मकरन्द से कहा—'मित्र! इन दोनो की बातचीत सुननी चाहिए।' उस समय निकुञ्ज में बैठी हुई सारिका, देर करके आये हुए शुक से क्रोधपूर्वक लड़खडाती आवाज से कह रही थी—'धूर्त! किसी दूसरी सारिका को तलाश करने गया था, अन्यथा तुझे इतनी रात क्यो हो गई।' यह सुनकर शुक ने उससे कहा—भद्रे! क्रोध न करो। मैने एक अद्भुत लम्बी कथा सुनी है और स्वयं प्रत्यक्ष देखा भी है, इसी कारण इतनी देर हो गई है।' इस पर सारिका के कुतूहलवश बार-बार आग्रह करने पर शुक ने कथा प्रारम्भ की।

कुसुमपुर का वर्णन : कुसुमपुर नामक एक नगर है। जिसके प्रासाद, उत्तम सुधा-अमृत से शुभ्रवर्ण, सुधा-शिलाओं से मनोहर मन्दारपर्वत के शिखरो के समान, कलई के लेप से शुभ्रवर्ण हैं। वहाँ के निवासी दानशील एव उदारचेता थे अतएव वे धनद और प्रचेता भी थे। इस नगर में स्वयं भगवती दुर्गा चण्डिका नाम से निवास करती थी। इस कुसुमपुर नगर मे शृङ्गारशेखर नामक राजा निवास करता था। राजा शृङ्गारशेखर ने अपने गुणो द्वारा इन्द्र को भी नीचा

दिखा दिया था। उसकी सभा मे बृहस्पति ग्रहरूप है। शत्रुसेना मे पञ्चत्व (पाँच सख्या)—मृत्यु उपस्थित हुई परन्तु श्रृङ्गारशेखर को अन्यसख्या, अन्य युद्ध समस्त शत्रुओं के विनष्ट हो जाने के कारण प्राप्त नही हुआ। समस्त अन्त·पुर की शिरोमणिभूता अनङ्गवती नामक उसकी रानी थी। राजा श्रृङ्गारशेखर और रानी अनङ्गवती इन दोनों के यौवन के उतार पर किसी प्रकार भाग्यवश वासवदत्ता नामक पुत्री उत्पन्न हुई।

वासवदत्ता का जन्म और यौवन लाभ : कुसुमपुर नरेश की पुत्री वासवदत्ता की आकृति तीनो लोको को लुभाने वाली और हजारो नेत्रो को आनन्दित करने वाली थी। आह्लादक पवन के समान धीर पुरुष के मन को हरने वाला यद्यपि उसका यौवन दिनोंदिन बढ़ रहा था तो भी वह विवाह नही करना चाहती थी। गच्छताकालेन ऋतुराज वसन्त के आगमन पर जब आम्र की कलियाँ खिल रही थी, उन पर भ्रमर-पंक्ति आ-आकर बैठती थी। उनके मद-हर्षाधिक्य से किए हुए झंकाररूपी हुंकार से पथिकों को अत्यन्त सन्ताप होता था, धीमी-धीमी दक्षिण-पवन बह रही थी।

स्वयंवर वर्णन : इसी समय वासवदत्ता की सखियों द्वारा अपनी पुत्री की इच्छा जानकर श्रृङ्गारशेखर ने, कन्या के स्वयंवर के लिए समस्त पृथ्वी-मण्डल के राजपुत्रो को एकत्रित किया। उन आमन्त्रित राजपुत्रो को वासवदत्ता, क्षण भर मे एक-एक करके देखती हुई विरक्त हो उसी कर्णीरथ यान से उतर गई। वासवदत्ता ने उन सभी राजपुत्रो मे से किसी का भी वरण नही किया।

स्वप्न में कन्दर्पकेतु का दर्शन : अनन्तर वासवदत्ता ने उसी रात त्रिलोक में एकमात्र अद्वितीय सौन्दर्य वाले एक युवक को स्वप्न मे देखा। 'वह राजा

चिन्तामणि का पुत्र है और उसका नाम 'कन्दर्पकेतु' है इत्यादि उसने उसके नामादि स्वपन मे ही सुन लिए थे। जगने पर स्वप्नदृष्ट राजकुमार के रूप लावण्य की भावना करती हुई राजकुमारी मूर्च्छित सी हो गई।

सखियों द्वारा सारिका तमालिका को भेजना : अनन्तर वासवदत्ता की प्यारी सखियो ने बड़े यत्न से उसे होश मे लाकर आपस मे विचार करके कन्दर्पकेतु का भाव जानने के इए तमालिका नामक सारिका को भेजा है। वह भी, मेरे ही साथ चली थी और इसी जम्बुवृक्ष के नीचे बैठी है, यह कहकर शुक चुप हो गया तब, मकरन्द ने आनन्दपूर्वक उठकर तमालिका को बुलाकर उसे सब बात बता दी। उसने उसे प्रणाम कर वह पत्रिका दे दी।

वासवदत्ता की ओर से प्रेषित पत्र : वासवदत्ता की ओर से उसकी सखियो द्वारा प्रेषित पत्रिका को मकरन्द ने खोला और स्वयं ही पढ़ने लगा—

'कामिनी का हृदय अपने प्रेमी के भावो को प्रत्यक्ष देखकर भी स्थिर नहीं होता—उसमे सन्देह बना ही रहता है, फिर जिसने स्वप्न मे ही उस भाव का अनुभव किया है वह युवती उस पर कैसे विश्वास कर सकती है।'[1]

पत्र को सुनकर, कन्दर्पकेतु ने अपने को अमृत समुद्र मे डूबा हुआ सा—तथा सब प्रकार के आनन्दो को अनुभव करता हुआ-सा समझा तथा उसने धीरे-धीरे उठकर दोनों भुजाएं फैलाकर तमालिका का आलिङ्गन किया। उसी के साथ बैठकर—राजकुमारी क्या करती है? क्या कहती है? कैसे रहती है? इत्यादि वासवदत्ता सम्बन्धी बाते पूछता रहा।

---

1 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 148

कन्दर्पकेतु का वासवदत्ता के नगर की ओर प्रस्थान तथा सन्ध्यादि वर्णन : उस दिन को वही पर बिताकर तमालिका तथा मित्र मकरन्द के साथ कन्दर्पकेतु कुसुमपुर के लिए चल पड़ा। इस समय भगवान् सूर्य भी मानो यह वृत्तान्त कहने के लिए ही मध्यमलोक-भूलोक-से उतर गये—अस्त हो गये। अनन्तर क्रमशः सायंकाल उपस्थित हुआ। क्षण भर बाद ही अन्धकार चारो ओर फैल गया। तारे चमकने लगे और चाँद भी निकल आया। अनन्तर यह जगत् क्षीरोदधि मे निमग्न, स्फटिकशिलानिर्मित गृह में प्रविष्ट और श्वेत द्वीप में स्थित हुआ सा आनन्दित होने लगा।

कुसुमपुर नगर प्रवेश एवं भवन वर्णन : सन्तापहारक रात्रिरूपी युवती के विश्वास सदृश वायु के चलने पर कन्दर्पकेतु वासवदत्ता के साथ नगर को प्रस्थित हुआ। अनन्तर, कार्तिकेय के समान प्रभावशाली कन्दर्पकेतु ने राजधानी के एक भाग मे बने हुए वासवदत्ता के भवन को देखा जिसके शिखर आकाश से बाते करते थे, जो सुधा से श्वेत हो रहा था। जिसके चारो ओर परकोटा खीचा हुआ था। जो वायु से हिलती हुई आकाश रूपी वृक्ष की पुष्प मंजरी के समान स्थित पताकाओं से सुशोभित हो रहा था। वह राजमहल कौतुक का निधि, शृङ्गार का दरबार, सब प्रकार के विलासों का परम्परागत गृह और सौन्दर्य का सङ्केतस्थान था—सब प्रकार का वह सौन्दर्य, वहाँ सङ्केतपूर्वक मानो एकत्रित हो रहा था।

कन्दर्पकेतु का वासवदत्ता के भवन में प्रवेश तथा वासवदत्ता का प्रत्यक्ष दर्शन : अनन्तर कन्दर्पकेतु प्रमदाजनो की प्रेम-पूर्ण मनोहर बातचीत सुनते हुए मकरन्द के साथ वासवदत्ता के भवन मे प्रविष्ट हुआ। उसने वहाँ

वासवदत्ता को देखा जो **'तेन रक्तं रागात्'** इत्यादि सूत्र से प्रारब्ध पादसमन्वित व्याकरण के समान तथा **'तनुमध्या'** नामक छन्द से अलकृत छन्दोविचिति की तरह उसका कृश मध्यभाग सुन्दरता पा रहा था। अश्वतर नामक विद्याधर की कन्या मदालसा के समान वह यौवन-मद से धीमे-धीमे विलासपूर्वक चलती थी।

निर्निमेष दृष्टि से उसे देखते हुए कन्दर्पकेतु मूर्च्छित हो गया। उसकी यह दशा देखकर वासवदत्ता भी मूर्च्छित हो गई। अनन्तर, मकरन्द तथा सखियो के प्रयत्न से वे दोनो होश मे आकर एक आसन पर बैठ गये इसके बाद वासवदत्ता की प्राणो से भी प्यारी अन्तरङ्ग सखी कलावती ने कन्दर्पकेतु से कहा—हे आर्य! निश्चिन्त बैठकर प्रेमालाप करने का यह समय नही है। हमारी इस राजपुत्री को प्रातःकाल इसके पिता ने यौवनातिक्रमदोष की सम्भावनाकर, इसकी इच्छा के विपरीत ही विद्याधरचक्रवर्ती विजयकेतु के पुत्र पुष्पकेतु को देना निश्चय कर लिया है। अब जो कुछ करना उचित हो वह आप ही जाने।

वासवदत्ता के साथ कन्दर्पकेतु का कुसुमपुर से निष्क्रमण : वासवदत्ता की अन्तरङ्ग सखी कलावती के ऐसा कहने पर कन्दर्पकेतु अत्यन्त भयभीत हो तथा प्रेम और आनन्दरूपी अमृत सागर की लहरो से स्नान सा कर वासवदत्ता के साथ सलाह करके मकरन्द को समाचार जानने के लिए उसी नगर मे नियुक्त कर दिया और स्वयं, वायु के सम्मुख मनोजव नामक अश्व पर चढ़कर वासवदत्ता के साथ नगर से निकल गया।

श्मशान होते हुए विन्ध्याटवी प्रवेश : अनन्तर, वहाँ से चलकर लगभग चार मील चलकर एक श्मशान भूमि मे पहुँचने के बाद वहाँ से निकलकर वे क्षण भर में सैकड़ो योजन रास्ता तय कर विन्ध्याटवी में प्रविष्ट

हुए। उस समय कन्दर्पकेतु सारी रात जागने और भोजन न मिलने के कारण शरीर के क्षीण हो जाने से निश्चेष्ट हो रहा था, साथ ही सैकड़ो योजन मार्ग तय करने से अत्यन्त थका हुआ था। वासवदत्ता की भी यही दशा हो रही थी। इसलिए वे दोनो ही, धीमी-धीमी वायु से हिलते हुए पुष्पो की गन्ध मे उत्कण्ठित सुन्दर और गुजायमान भ्रमरो की झकार से मनोहर लताकुञ्ज मे सो गये। उस समय उनकी इन्द्रियाँ बिल्कुल असमर्थ हो गई थी और ऐसे समय नीद का आना अत्यन्त स्वाभाविक ही था।

वासवदत्ता का खो जाना : अनन्तर जब सूर्यदेव आकाश को विस्तृत, सब दिशाओं को उद्दीपित और सम्पूर्ण पूर्वादि दिशाओं को अलड्कृत कर मध्याकाश मे चढ़ रहे थे उस समय कन्दर्पकेतु ने जागकर लतागृह प्रिया वासवदत्ता से खाली देखा। उसने इधर-उधर देखा। वह क्षण भर वृक्षो पर, क्षण भर लताओं मे, क्षण भर नीचे कुओं मे, क्षण भर ऊपर वृक्ष-शिखरो पर, क्षण भर सूखे पत्तों के ढेर पर, क्षण भर आकाश मे, क्षण भर दिशाओं और उपदिशाओं मे घूमते हुए विलाप करने लगा। 'हा प्यारी वासवदत्ता! मुझे दर्शन दो। हँसी मत करो। हा प्यारे मित्र मकरन्द! आकर दुर्भाग्य की करतूत देखो इत्यादि बहुविध विलाप करता रहा।

समुद्र में उतरकर आत्मघात का प्रयास और आकाशवाणी : इस प्रकार अनेक तरह से विलाप करते हुए आत्मघात की इच्छा से जङ्गल के दाहिनी ओर से निकलकर कन्दर्पकेतु को एक समुद्र दिखाई दिया। समुद्र को देखकर वह सोचने लगा—भाग्य ने, अपकार करते हुए भी मेरे साथ उपकार ही किया है क्योंकि यह समुद्र मेरी दृष्टि मे पड़ गया है। यहीं मै शरीर-विसर्जन

किए देता हूँ। यद्यपि स्वस्थ पुरुष के लिए आत्महत्या शास्त्र-विहित नही है तो भी मै करूँगा ही क्योकि इस असार-ससार मे सभी मनुष्य उचित कर्म ही नही करते। किसने क्या नही किया? अतः ससार मे कोई भी निष्कलङ्क मालूम नही देता। इसलिए मै भी शरीर छोडता हूँ। यह सोचकर वह समुद्र तट पर पहुँचा और समुद्र मे उतरना प्रारम्भ किया उसी समय आकाशवाणी हुई—'आर्य कन्दर्पकेतु! शीघ्र ही तुम्हारी प्रिया के साथ भेट होगी इसलिए मृत्यु का विचार त्याग दो। यह सुनकर कन्दर्पकेतु ने मृत्यु का विचार त्याग दिया। और, प्रिया-मिलन की आशा कर प्राणधारण के एकमात्र कारण भोजन करने की इच्छा से कच्छप्रदेश के सीमापवर्ती वन मे पहुँचा। अनन्तर इधर-उधर घूमते हुए फल-फूलादि से शरीर-धारण करते हुए बहुत सा समय बिता दिया।

वर्षा ऋतु तथा शरद् ऋतु वर्णन तथा वासवदत्ता की पुनः प्राप्ति : कुछ समय व्यतीत होने पर एक समय वर्षा काल उपस्थित हुआ। जब वर्षा-रूपी दासी, पृथ्वी रूपी नायिका को मेघरूपी कलश-जल से स्नान कराके चली गई तब शरद्रूपी दूसरी दासी स्वच्छ आकाशरूपी वस्त्र लेकर उपस्थित हुई। इसी शरद् ऋतु में कन्दर्पकेतु ने इधर-उधर घूमते हुए किसी पाषाण की पुतली का, अपनी प्रिया के सदृश समझकर हाथ से स्पर्श किया। छूने के साथ ही वह, पाषाण-स्वरूप छोडकर वासवदत्ता के रूप में परिवर्तित हो गई। उसे देखकर अमृत सागर मे गोता लगाते हुए कन्दर्पकेतु ने अच्छी तरह आलिङ्गन कर पूछा कि—'प्यारी वासवदत्ता! यह क्या बात है'?

वासवदत्ता की आपबीती तथा युद्ध वर्णन : वासवदत्ता ने लम्बी और गर्म सांस लेकर जवाब दिया—आर्यपुत्र! मुझ अभागिन के लिए आपने राज्य

छोडकर साधारण मनुष्य के समान अकेले ही इधर-उधर घूमते हुए इतने अवर्णनीय दुःखो को झेला। आप, उपवास और प्यास मे व्याकुल हो सो गये। मै आपसे पहले ही जाग गई और यह सोचकर कि आपके लिए फल-मूलादि ले आऊॅं, फलादि खोजने के लिए नल्वमात्र गई। क्षण भर मे ही जवकि मैं वृक्ष और झाड़ियो मे छिपी हुई सेना का पडाव देखकर यह सोच ही रही थी कि 'क्या मुझे जबर्दस्ती पकड़ने के लिए आई हुई पिता की सेना है? अथवा आयपुत्र की सेना है?' उसी समय, गुप्तचर द्वारा समाचार पाकर किरात सेनापति दूर से ही मेरी ओर दौड़ा आ रहा था। उधर वैसा ही एक दूसरा किरात सेनाध्यक्ष वैसे ही सेना के साथ शिकार के लिए वहाँ आया, वह भी यह सुनकर मेरी ओर दौड़ा। एक ही मांस के लिए दो गीधों के समान वे दोनो परस्पर युद्ध करने लगे। अन्ततः परस्पर युद्ध करती हुई ऐसी वे दोनो किरात सेनाएं विनष्ट हो गईं। अनन्तर, पुष्पादि लेकर आए हुए आश्रमाध्यक्ष मुनि ने, योगदृष्टि से सब वृत्तान्त जानकर और क्रुद्ध हो 'तुम्हारे ही लिए मेरा यह आश्रम नष्ट-भ्रष्ट हुआ है, अतः तुम पाषाण पुत्तलिका हो जाओ' मुझे यह शाप दे दिया। बाद में क्षण भर मे ही, यह बेचारी बड़ा दुःख भोग रही है, यहसमझकर कृपावश और आर्यपुत्र पर दया करके उन मुनि ने, प्रार्थना किये जाने पर, आर्यपुत्र का कर स्पर्श शाप की अवधि कर दी।

कन्दर्पकेतु, वासवदत्ता तथा मकरन्द का नगरागमन : इसके पश्चात्, मकरन्द ने आकर सारा वृत्तान्त सुना। तब कन्दर्पकेतु उसे तथा वासवदत्ता को साथ लेकर अपने नगर गया और वहाँ स्वर्ग में भी अलभ्य मनोवाञ्छित सुख, उन दोनो के साथ भोगते हुए उसने बहुत समय व्यतीत किया।

वासवदत्ता—समीक्षात्मक विवेचन

वासवदत्ता एक सरस एवं सरल प्रणयग्रन्थ है। इस कथा के बहाने कवि ने सस्कृत गद्य निर्माण मे अपने प्रौढ़ पाण्डित्य का प्रचुर प्रदर्शन किया है। सुबन्धु की यह कृति सस्कृत गद्य काव्य के उस रूप का प्रतिनिधित्व करती है, जिसमे कथानक अति स्वल्प रहता है, वर्णन विस्तार का प्राधान्य होता है तथा पाण्डित्य कल्पना का स्थान ले लेता है। राजकुमार कन्दर्पकेतु स्वप्न मे अपनी भावी प्रियतमा के दर्शन करता है और स्मरपीडित हो उसकी खोज मे निकल पड़ता है। अति संक्षिप्त वासवदत्ता का यही कथानक है। बीच-बीच मे इसी अत्यन्त सक्षिप्त कथावस्तु को लेकर कवि ने अपने पात्रो के नाना विशेषणो तथा शैलसमुद्र वननगरसन्ध्यादि के अति विस्तृत एवं अलंकृत वर्णनो द्वारा वासवदत्ता का कलेवर गढ लिया है। इस कथानक की प्रमुख विशेषता कथानक मे नही वरन् नायक-नायिका के रूप सौन्दर्य के सूक्ष्म वर्णन में, उनकी गुणावलि के गान मे, उनकी तीव्र विरहातुरता में, मिलनाकांक्षा तथा संयोग दशा के चित्रण मे निहित है। यद्यपि कहानी किसी लोक-कथा पर आधारित है और बहुत छोटी सी है, किन्तु लेखक ने अपनी प्रतिभा से उसे इतने सुन्दर ढंग से तथा विस्तारपूर्वक वर्णन किया है कि उसे पढने में विशेषानन्द आने लगता है। यह विस्तार वातवारण की विशद व्याख्या के कारण हो पाया है। कहानी की घटना बहुत ही स्वल्प तथा निर्जीव है, परन्तु सुबन्धु ने अपनी प्रतिभा पर आधारित सुन्दर वर्णनो के बल पर इनमे जान फूंक दी है। कवि यहाँ रोचक कहानी लिखने नही बैठा है, जिसके पात्र तथा घटनाएं कौतुक तथा विस्मय उत्पन्न करती हो। उसका मुख्य उद्देश्य वर्णन ही है और इस वर्णन की चातुरी के लिए

ही सुबन्धु की ख्याति साहित्याकाश मे है। सुबन्धु की प्रतिभा परिपक्व है और उनकी वर्णनशक्ति उससे कहीं बढ़कर। गति उनकी गद्य और पद्य दोनो के क्षेत्र मे अबाध है। कथावृत्त को कवि-कौशल से खूब अलंकृत तथा विशेष चमत्कृत बनाना ही कवि का ध्येय है।

इस कथा की छानबीन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि सुबन्धु का यह कथानक नितान्त कल्पनाप्रसूत है जिससे सुबन्धुकी कृति में कृत्रिमता की अधिकता है। अलंकरण की प्रवृत्ति और लम्बे-चौड़े वर्णनो से कथा विस्तार की प्रवृत्ति वासवदत्ता मे सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। सुबन्धु की कथावस्तु को देखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि कथावस्तु की कल्पना और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से सुबन्धु समृद्ध नहीं जान पड़ते और यह कह भी दिया जाय कि यह सुबन्धु के कथाकार की दरिद्रता का परिचय देती है तो कोई बुरा नहीं होगा, सुबन्धु की कथा के क्षुद्र कलेवर तथा उसकी अस्वाभाविकता के विषय मे निःसन्देह आलोचक प्रश्न उठा सकता है और विषय की अवहेलना करते हुए अभिव्यञ्जना पक्ष को आवश्यकता से अधिक बढ़ाना अखरता है। वर्णनो के दुर्वह बोझ के तले वस्तु की दम तो नही घुटी है किन्तु अत्यन्त अस्वाभाविक और विषम अवश्य हो गई है। कवि परम्परा और काव्यशास्त्रियों की मान्यतानुसार गृहीत नगरार्णवशैलर्तु प्रभृति का वर्णन इतना विस्तृत है कि अनावश्यक प्रतीत होने लगा है। इनके कारण न केवल वस्तु की स्वाभाविक गति मे बराबर अवरोध उत्पन्न हुआ है, घटनाओं की आवश्यक पुछ-गछ या उनका विकास विलम्बित हुआ है अपितु रसाभिव्यक्ति मे भी बाधा पड़ी है। लेकिन इसके लिए केवल सुबन्धु को ही दोषी नहीं कहा जा सकता। कालिदासोत्तर युग मे काव्य जगत् में

एक ऐसी हवा ही बही कि कवियो ने वाल्मीकि, व्यास, भास, कालिदासादि के सहज स्वाभाविक और सुघटित कवि कर्म के आदर्श को स्वीकार करने के स्थान पर 'बह्वाडम्बरलघुक्रिया' उक्ति को चरितार्थ करते हुए रस और वस्तु दोनों से पर्याप्त पराङ्न्मुख होकर केवल अलंकृत एवं लम्बे चौडे वर्णनो की योजना मे ही अपनी सारी प्रतिभा जुटा दी। अवधेय है कि क्या किरातार्जुनीय, शिशुपालवध, हरविजय या कादम्बरी और तिलकमंजरी आदि का कथा भाग इनके कलेवर के अनुरूप है? क्या इनमे वर्णनो की परिमिति कथानक के अनुपात में है? लेकिन युगप्रवाह को मानते हुए भी सुबन्धु ने कथायोजना मे जो असावधानी या उपेक्षावृत्ति दिखाई है वह अक्षम्य नहीं है। यहाँ तक कि कवि ने कथा के नायक के जन्म कर्मभूमि का उल्लेख करना भी आवश्यक नहीं समझा है। प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्ध के विन्यास के लोभ में तथा बहुत कुछ शास्त्रस्थितिसम्पादनेच्छया किये गये शैलार्णवादि के वर्णनों में सुबन्धु ने अपेक्षित संयम और कुशलता नहीं दिखाई है। प्रबन्ध कवि की कुशलता या सफलता अलंकृत या विस्तृत काल्पनिक वर्णनों मे नहीं अपितु प्रबन्ध की कथा के मार्मिक स्थलों को पहचानने और उन्हे अधिकाधिक सहृदय हृदयावर्जक रूप मे उपस्थापित करने मे है। कवि सुबन्धु इस दृष्टि से निश्चय ही एक अत्यन्त असावधान या अन्यथा सावधान कवि हैं। जिन्होने रस और वस्तु को नाममात्र के लिए रखकर सारा कौशल अपने पाण्डित्य के प्रदर्शन में ही व्यय किया है, शब्दो की करामात या अलङ्कारो की प्रदर्शनी सजाने में ही सारा संरम्भ दिखाया है वासवदत्ता का कवि उन्ही की बिरादरी होते हुए उन्हीं का प्रतिनिधित्व करता मालूम पड़ता है।[1] पात्रो के चरित्र-चित्रण मे भी विस्तार का ही अवलम्बन करने

1 वासवदत्ता, श्रीरङ्गम सस्करण, भूमिका भाग, पृ0 स0 18

के कारण सुबन्धु का चरित्र-चित्रण कृत्रिम सा जान पड़ता है। चरित्र-चित्रण मे भी पाण्डित्य एवं विचित्रता का समावेश कर देने के कारण उसकी सहजता नष्ट हो गई है। सुबन्धु के गद्य-काव्य मे स्थल-स्थल पर वर्णन विस्तार, शब्दचमत्कृति एवं विषयान्तर का प्रसर तो खलता ही है; इसमे इतिवत्त का उचित निर्वाह और चरित्र-चित्रण का उन्मेष भी नही हो पाया है। कन्यारत्न के विलासविभ्रम का अतिरंजित चित्रण करते समय सुबन्धु ने पचहत्तर पंक्तियो का एक वाक्य लिखा है, जिससे उनके परिनिष्ठित शास्त्रीय ज्ञान एवं अलङ्कार प्रयोग की कुशलता तो भली प्रकार अभिव्यक्त होती है किन्तु समस्त वर्णन नितान्त अस्वाभाविक सा लगने लगता है।

वासवदत्ता का यह कथानक सुबन्धु को एक असफल कथाकार ही सिद्ध करता है। इस कथावस्तु मे न तो वासवदत्ता जैसे विस्तृत गद्यकाव्य के ऊपर जटिल घटनाओं की योजना है न ही इसकी घटनाओं को परिष्कृत करने का प्रयास लेखक ने किया है। एक अत्यन्त संक्षिप्त कथानक का आधार लेकर सुबन्धु एक विस्तृत गद्यकाव्य का निर्माण करते है। सुबन्धु शुक द्वारा कथा कहलाकर कथानक को रोचकता प्रदान करने का प्रयत्न करते हैं किन्तु शैली का यह परिवर्तन कादम्बरी मे शुक द्वारा कही गई कथा के समान नवीनता की सृष्टि नही करता। वासवदत्ता के कथा प्रवाहकी गति अत्यन्त मन्थर रहती है। कवि वन, नदी, पर्वत, सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रोदय, ऋतु आदि के वर्णनो मे सलग्न रहता है और कथातत्व उपेक्षित रह जाता है घटनाओं का वर्णन करने में कवि दो-चार वाक्य लिखकर अपनी इतिकर्त्तव्यता समझ लेता है जबकि नायक तथा नायिका के रूपचित्रण मे, उनकी प्रेमदशा का विस्तृत रूप से अङ्कन करने मे

श्लेष, विरोधाभास, परिसख्यादि अलङ्कारो का चमत्कार प्रदर्शित करता हुआ पृष्ठ पर पृष्ठ रंगता जाता है। कथानक को गति देने वाले अंशो की विरलता आधुनिक आलोचक के लिए अधिक खटकने वाली चीज है। वासवदत्ता मे कलात्मक वर्णनों की अधिकता तथा कथानक के प्रति लेखक की उपेक्षा देखकर तो यही कहा जा सकता है कि चमत्कारपूर्ण उक्तियो तथा जटिल श्लेषो द्वारा अपने शास्त्रीय ज्ञान का ही प्रदर्शन करना चाहता है और इसकेलिए उसने प्रचलित लोककथाओं से कुछ 'मोटिफ' ग्रहण करके वासवदत्ता के कथानक का एक दुर्बल ढांचा तैयार किया जो इतने अधिक विस्तृत वर्णनों के भार को सम्भालने के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। इन वर्णनो के प्रति सुबन्धु का इतना अनुराग है कि अपने पात्रों के चरित्र-चित्रण की ओर उन्होंने ध्यान ही नही दिया है। इस प्रकार वासवदत्ता न तो कथाशिल्प की दृष्टि से सफल रचना कही जा सकती है और न ही चरित्र-चित्रण तथा रस की अभिव्यक्ति की दृष्टि से।

सुबन्धु की काव्य कला : काव्य की आधुनिक मान्यताओं के आधार पर सुबन्धु के काव्य की समीक्षा करना कवि के प्रति अन्याय होगा। सुबन्धु की अलङ्कृत गद्य शैली उनके युग की उन सब विशेषताओं को अपने में अन्तर्निहित किए हुए है जिनका कुन्तक ने विचित्र मार्ग कह कर उल्लेख किया है। इस अलङ्कृत शैली का व्यावहारिक रूप दण्डी के गद्य मे देखा जा सकता है। इसका प्रौढ़तम रूप सुबन्धु और बाण की रचनाओं मे मिलता है। गद्य-शैली की दृष्टि से भी सुबन्धु और बाण एक-दूसरे के अत्यन्त समीप ही हैं। यह दूसरी बात है कि दोनो में से किसने भावपक्ष और अभिव्यञ्जना-पक्ष का सुन्दर समन्वय करके उसका चारुता से प्रयोग किया है।

कवित्व की दृष्टि से सुबन्धु के काव्य पर विचार करे तो नि सन्देह उन्हे उत्कृष्ट कवि नही कहा जा सकता। सफल तो वही कहा जा सकता है जो काव्य के भावपक्ष और कलापक्ष दोनो के प्रति समान रूप से जागरूक रहे। सुबन्धु के काव्य में भावपक्ष की दरिद्रता स्पष्ट दीख पड़ती है। साथ ही उसमे भावपक्षके तीनो उपांगों—बुद्धि तत्व, रागात्मक तत्व और कल्पना तत्व मे बाण के काव्य जैसी रमणीयता नही दिखाई देती। सुबन्धु के बुद्धि तत्व को शैली शिल्प ने अत्यधिक आवृत्त कर लिया है। रागात्मक तत्त्व का भी विधिवत् निर्वाह नहीं हो पाया है। कवि की चित्तवृत्ति हमे पात्रो के हर्ष-विषाद आदि भावों के चित्रण मे लीन होती इतनी दिखाई नही देती जितनी कि शब्द क्रीडा मे। सुबन्धु अपने गद्यकाव्य के लिए एक प्रेमकथा का चुनाव करके भी नायक नायिका के हृदय की भावनाओं को प्रायः उपेक्षित छोड़ देते हैं। उनके वर्णनो में रागात्मक तत्व का विशेष रूप से अभाव और पाण्डित्य प्रदर्शन के प्रति विशेष आग्रह मिलता है। कवि का शास्त्रीय ज्ञान प्रदर्शित करने तथा अलङ्कारों की प्रयत्नपूर्वक योजना करने की यह प्रवृत्ति उसके कल्पना तत्व की चारुता मे भी विशेष रूप से बाधक होती है। कल्पना तत्व जो कि काव्य को साधारण उक्ति से ऊपर उठाकर सच्चे अर्थो में उसे काव्य बनाने मे विशेष सहायक होता है, सुबन्धु की कृति मे अधिकांश स्थलो पर पाठक के हृदय पर वर्ण्य विषय का संश्लिष्ट तथा प्रभावपूर्ण चित्रांकन करने के स्थान पर पाठक की बुद्धिमात्र को ही चमत्कृत करने मे समर्थ हो पाता है।

लेकिन सुबन्धु की कृति मे इसके अपवाद न मिलते हों, ऐसी बात नही है। वासवदत्ता में ऐसे गिने-चुने स्थल अवश्य है जहॉ भावपक्ष की सरलता देखने को मिलती है। स्वप्न मे राजकुमार कन्दर्पकेतु को देखकर प्रेमाकुल हुई

राजकुमारी की दशा का चित्रण अच्छा बन पडा है।[1]

सुबन्धु बाण की भॉति अपनी कक्षा मे ऐसी घटनाओं की योजना नही करते जो नायक-नायिका के पारस्परिक प्रणय को स्वाभाविक रूप से विकसित करने मे सहायक हो सके। उनके नायक-नायिका के हृदय मे प्रणयोद्बोध स्वप्न मे एक-दूसरे का रूप देखने के कारण होता है न कि पारस्परिक परिचय अथवा संसर्ग के द्वारा। यद्यपि इस स्थल पर सुबन्धु ने एक कुमारी के हृदय में प्रणय-भाव के प्रथमांकुरण तथा उसकेप्रभाव का वर्णन बड़े स्वाभाविक रूप मे किया है लेकिन औचित्य की अवहेलना—जो कि सुबन्धु का एक महान् दोष है यहाँ भी विद्यमान है। इस प्रकार प्रणय-चित्रण की दृष्टि से सुबन्धु को सफल कवि नही कहा जा सकता है। कवि कुछ असंगत उक्तियो की यहाँ योजना करके वर्णन के अभीष्ट प्रभाव मे बाधा ही डाल देता है। एक के बाद दूसरी कल्पना करने में कवि भाव और रस की समीचीनता को भुला देता है। 'रुधिराशय', 'मज्जारस' और 'कच्चे मांस' का उल्लेख शृङ्गार की तरलता के अनुकूल न होकर वीभत्स रस की सामग्री बनाने मे अधिक उपयुक्त है। प्रणय की सुकुमार रस भावनाएं व्यञ्जित करने के लिए इनका प्रयोग कदापि वाञ्छनीय नही कहा जा सकता है।

सुबन्धु की शैली : सुबन्धु ने **गौडी शैली** को अपनाया है और उसमें श्लेष, यमक, अनुप्रास और अतिशयोक्ति का परिमल बसा दिया है। इस गौड़ी शैली की प्रमुख विशेषताएं हैं—लम्बे समासों की योजना, प्रसङ्ग तथा भावार्थ

---

1 द्रष्टव्य—वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 140-144

का विशेष विचार किये बिना शब्दों का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थो मे प्रयोग, अस्वाभाविक अत्युक्तियॉ उक्ति को स्वाभाविक रूप से न रखकर एक विशेष भङ्गिमा के साथ रखना, कर्णकटु शब्दो की चिन्ता किये बिना अस्वाभाविक तथा जटिल अनुप्रासो की योजना तथा श्लेष, विरोधाभास और परिसंख्यादि अलङ्कारो की सहायता से दुरूह अर्थो की अभिव्यक्ति करना। ये सब विशेषताएँ एक ऐसी शैली की ओर सङ्केत करती है जो काव्य के भावपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष पर विशेष बल देती है।

सुबन्धु की समस्त पदावली को बाण के दीर्घकाय समासों के समकक्ष रखा जा सकता है। दीर्घकाय समासो का प्रयोग सुबन्धु सर्वत्र ही नहीं करते। कथानक के सूत्रों को जोडने वाले वाक्यो तथा पात्रो के संवादों में समस्त पदावली के द्वारा कवि दुरूहता की सृष्टि नही करता सुबन्धु वाक्यों का गठन भी सावधानी से करते हैं। उनके वाक्यो की लम्बाई प्रसङ्गानुकूल कम और अधिक देखी जा सकती है। किसी वस्तु का वर्णन करते समय जब वर्णन को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए कवि एक के बाद दूसरे विशेषणपद की योजना करता जाता है और अपनी उर्वर कल्पनाशक्ति को सहज ही विराम नहीं लेने देता, तब स्वभावतः उसके वाक्य बाण के वाक्यो के समान लम्बे हो जाते हैं। उदाहरणार्थ कन्दर्पकेतु द्वारा **स्वप्न में देखी गई कन्या के रूप का वर्णन चौहत्तर पंक्तियों के एक लम्बे वाक्य में किया गया है।**[1] इसी प्रकार विन्ध्याचल[2] तथा रेवा नदी[3] का वर्णन भी दीर्घकाय वाक्यो में मिलता है। ऐसे वर्णनों की इस काव्य मे भरमार है। एक ही क्रिया पर

---

1 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 40-50

2 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 63-73

3 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ स0 73-78

आश्रित विपुलकाय वाक्य की रचना करने मे सुबन्धु सिद्धहस्त हैं, किन्तु आवश्यकता पड़ने पर वे छोटे-छोटे वाक्यो का भी चयन कर लेते है, विशेषकर संवादो और भावप्रधान अशो मे। सुबन्धु के संक्षिप्त वाक्यो का ही उदाहरण देखिए—स्वप्न मे अपरिचिता सुन्दरी को देखकर कामपीडित हुआ राजकुमार कन्दर्पकेतु अपने मित्र मकरन्द को उपदेश देने से विरत करके अपनी दशा का वर्णन कितने संक्षिप्त किन्तु सशक्त वाक्यो मे करता है—

"नायमुपदेशकाल। पच्यन्त इव मेऽङ्गानि। क्वथ्यन्त इवेन्द्रियाणि। भिद्यन्त इव मर्माणि। निःसरन्तीव प्राणाः। उन्मूल्यन्त इव विवेकाः। नष्टेव स्मृति। अधुना तदलमनया कथया।"[1]

कवि ने ऐसे स्थलो पर स्वाभाविकता का निर्वाह करने की पूर्ण चेष्टा की है। आकुल होकर व्यक्ति कभी भी विस्तारपूर्वक लच्छेदार भाषा मे अपनी बात नही कहना चाहेगा। वह स्वाभाविक रूप से तथा संक्षेप में अपने विचार प्रकट करेगा। कन्दर्पकेतु की उपरोक्त उक्ति मे हमें यही बात दृष्टिगत होती है। कवि ने कुछ ऐसे स्थलो पर अपने पात्रो की मनःस्थिति तथा अन्य वर्ण्य-विषयो के अनुरूप ही अपनी गद्य शैली को परिवर्तित कर दिया है।

वासवदत्ता मे जिस प्रकार के गद्य का प्रयोग हुआ है वह नितान्त ओजस्वी है, ओजगुण समासाधिक्य से पैदा होता है और वह गद्य का जीवन माना जाता है—

---

1 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 63

'ओजः समासभूयस्त्वमेतद्गद्यस्य जीवनम्।'

—दण्डी

उदाहरणार्थ सुबन्धु की वासवदत्ता का एक गद्य उद्धृत किया जाता है—

'अभूदभूतपूर्वः सर्वोर्वीपतिचक्रचूडामणिश्रेणीशाणकोणकषण-निर्मलीकृतचरणनखमणिर्नृसिह इव दर्शितहिरण्यकशिपुक्षेत्रदानविस्मयः, कृष्ण इव कृतवसुदेवतर्पणः, नारायण इव सौकर्यसमासादितधरणिमण्डलः, कसारातिरिव जनितयशोदानन्दसमृद्धिः।'[1]

इस गद्य मे शब्द-सज्जा के साथ श्लेष का चमत्कार बड़ा हृदयग्राही हुआ है।

सुबन्धु की चित्रोपम एवं अलंकृत गद्य शैली की आलोचना करते समय यह स्मरण रखना होगा कि अनेक कथानक के लिए सरल और अलङ्कार रहित शैली अनुपयुक्त सिद्ध होती है। शृङ्गारिक वैभव के चित्रण मे, तीव्र मनोराग की अभिव्यक्ति मे एव प्रभावोत्पादक वर्णन में पंचतंत्र की सी सरल शैली सर्वथा अप्रासंगिक होती है। यह दूसरी बात है कि सुबन्धु अलङ्कारो का मात्रातीत प्रयोग कर अपनी शैली के लालित्यमय प्रवाह की रक्षा नही कर सके हैं। उनके समासों मे एक प्रकार का स्वर-माधुर्य है तथा उनके अनुप्रासो में सङ्गीत है। कही-कही **'मदकलकलहंससारसरसितोद्भ्रान्तभाः कूटविकटपुच्छच्छटा व्याधूतविकलकमलखण्ड-विगलितमकरन्दबिन्दुसन्दोहसुरभितसलीलया'**[2] जैसे प्रलम्ब समास भी मिल जाते है। फिर भी सुबन्धु रचित 'वासवदत्ता' के समय बाण के 'हर्षचरित' मे गुंथे समासो

---

1 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 7-8

2 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 73-74

जैसे लम्बे कम ही होते है।

पतञ्जलि द्वारा सङ्केतित[1] यवक्रीत, प्रियगव और ययाति-सम्बन्धी आख्यानो मे एवं वासवदत्ता, सुमनोत्तरा (तत्वबोधिनी 'सुमनोत्तरा') और भैमरथी आदि आख्यायिकाओं मे काव्यमय गद्य की एक विधा उभर चुकी थी, जो वररुचिरचित चारुमती, रामिल-सोमिलकृत 'शूद्रककथा', 'मनोवती', 'माधविका' (एक आख्यायिका), अनङ्गवती (मन्थलिका), 'मत्स्यहसित' (मणिकुल्य), 'लीलावती' (कथा), 'इन्दुमती' (खण्डकथा) और 'चित्रलेखा' (उपकथा) आदि रचनाओं मे परिपुष्ट होकर सुबन्धु के सामने आई थी और यदि हम पाणिनि के[2] 'शिशुक्रन्दयमसभद्वनद्वेन्द्रजननादिभ्यश्छः' सूत्र पर काशिकाकथित 'यमसभीय', 'अग्निकाश्यपीय', 'श्येनकपोतीय', 'प्रद्युम्नागमनीय' आदि को भी गद्यबद्ध मान ले तो गद्य की यह परम्परा और भी अधिक लम्बी और सान्द्र-सबल बन जाती है। गद्य की इन रचनाओं मे ढलता-ढलता संस्कृत गद्य अपने पूरे निखार पर आ चुका था और उसमे किन-किन बातो का किस-किस प्रकार आधान करना चाहिए यह सब कुछ निश्चित हो चुका था। उसमें यह निर्णय भी लिया जा चुका था कि गद्यकाव्य मे नगर, पर्वत, नदी, सरस्, प्रातः एवं सायं के वर्णन मे कितना और किस प्रकार का लिखा जाना चाहिए—फिर नायक और नायिका के चरित्रोन्मेष मे क्या-क्या होना अभीष्ट है इसकी भी एक परिपाटी उभर चुकी थी। इसी परिपुष्ट परिपाटी का नमूना हमे सुबन्धु के प्रस्तुत सन्दर्भ में मिल रहा है। **'इति बहुविधं चिन्तयती'** से लेकर **'भवन्ती'** तक संस्कृत गद्य की एक सर्वमान्य

---

1 पतञ्जलि, यवक्रीत 4/3/8

2 पाणिनि अष्टाध्यायी 4/3/88

विधा है, जिसे सुबन्धु, बाण, दण्डी आदि सभी ने समान रूप से अपनायाहै। इसके यदि प्रकार मे साम्य है तो शब्दोपन्यास मे उससे कही बढकर है। प्रेमप्लोषित प्रेमियो के उद्गार सभी की रचनाओं मे एक समान रहते हैं—फिर **भवभूति** ने भी तो अपने **मालतीमाधव नाटक** मे **'सा नश्चेतसि कीलितेव'** आदि कहकर इसी शब्दावली को अपना लिया है। इसमे किसी एक कवि से दूसरे कवि मे आदान-प्रदान देखना अविवेक होगा।

निश्चय ही सुबन्धुरचित वासवदत्ता पतञ्जलि निर्दिष्ट 'वासवदत्ता' से भिन्न है; और हो सकता है कि पुरुप्रथित 'वासवदत्ता' नायिका को लेकर अनेक पद्यगद्य कवियो ने अपनी-अपनी रचनाओं में उसकी नीराजना की हो, किन्तु सुबन्धु की अपनी वासवदत्ता मे भी काव्य के वे सभी घटक पूरे निखर आये हैं, जो कि एक परिनिष्ठित रचना मे होने वाञ्छनीय हैं।

सुबन्धु की सबसे बड़ी विशेषता उनके श्लेष है। उनकी रचना का एक-एक अक्षर श्लेषमयहै। परन्तु जहाँ कहीं उन्होने अपने श्लेषप्रेम को त्यागकर काव्य को मधुर बनाने का प्रयास किया है, वहाँ की शैली अवश्य रोचक बन पडी है। संक्षेप मे सुबन्धु ने गुणाढ्य की बृहत्कथा की शैली का अनुकरण करने का प्रयत्न किया है।

सुबन्धु ने चरित्र नायको से सम्बन्धित घटनाओं के आस-पास की वस्तुओं, प्राकृतिक स्थलो आदि का वर्णन सुन्दर ढंग से किया है, जो श्लेष के प्रपंच से रहित होने के कारण काफी मनोरंजक है। प्रभात का वर्णन इसका स्पष्ट उदाहरण है।[1] परन्तु यहाँ भी उपमा तथा उत्प्रेक्षा का साहित्य नही है। सच तो

---

1 वासवदत्ता, चौ० स9, पृ० 318

यह है कि सुबन्धु के काव्य मे कलापक्ष का ही साम्राज्य है। उनकी यह 'वासवदत्ता' उस विशाल सुसज्जित प्रासाद के समान है जिसका प्रत्येक कक्ष चित्रो से भूषित है तथा अलङ्कारो के प्राचुर्य से जो दर्शको की आखो को हमेशा चकाचौध किया करती है। कुन्तक के द्वारा वर्णित 'विचित्र मार्ग' का सबसे सुन्दर उदाहरण है सुबन्धु की यह कृति। बाणभट्ट की हर्षचरित मे वासवदत्ता की प्रशंसा मे की गई यह आलोचना बहुत श्लाघ्य तथा तथ्यपूर्ण है, जिसमे वासवदत्ता के द्वारा कवियो के दर्प को चूर्ण कर देने की बात कही गई है—

'कवीनामगलद् दर्पो नूनं वासवदत्तया।

शक्त्येव पांडुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम्।।'

वासवदत्ता कथा का स्त्रोत : अस्मद् विवेच्य वासवदत्ता कथा का जैसा कि कुछ पण्डितो ने कहा है कि सुप्रसिद्ध अवन्तिका वासवदत्ता की कथा से नाम के अलावा कोई साम्य नही है।[1] और यह सुबन्धु की सर्वथा अपनी काल्पनिक सृष्टि है।[2] लेकिन बात बिल्कुल ऐसी ही नहीं है। सुबन्धुकृत वासवदत्ता की कथा यद्यपि ज्यो कि त्यो याहूबहू एकत्र नही मिलती है तथापि इसकी योजना मे कवि ने निःसंदेह प्रसिद्ध वासवदत्ता के इतिवृत्त से भी कुछ घटनाएं ली है। कुछ अन्य स्त्रोतो से भी घटनाओं का आकलन किया गया है। इस प्रकार विविध स्त्रोतो से कथानक के अंशो को लेकर अभीष्ट रूप से उनकी एकत्र संघटना द्वारा कवि ने एक कथा तैयार कर ली है जो अपने समस्त रूप मे भले ही अपूर्व हो पर व्यस्त

---

1 वासवदत्ता, एल0 एस0 ग्रे सस्करण, भूमिका पृ0 2

2 'द प्रोज काव्याज ऑफ दण्डी, सुबन्धु एण्ड बाण' स्टडीज इन इन्डोलाजी मे 1941 मे प्रकाशित लेख से, पृ0 स0 125

रूप मे अनेकत्रदेखी जा सकती है। भास के स्वप्नवासवदत्तम के नायक उदयन ने वासवदत्ता को स्वप्न मे देखा था। विवेच्य कथा का नायक कन्दर्पकेतु भी अपनी वासवदत्ता को स्वप्न मे ही देखताहै। सम्भव है **'ग्रे'** का यह अनुमान सही हो कि स्वप्न की घटना तथा नायिका का नाम सुबन्धु ने भास के 'स्वप्नवासवदत्तम' से ग्रहण किया है।[1] अगर **'ड्रीम एपिथेट'** का आदान न भी माना जाय तो नायिका के नाम का ग्रहण तो अवश्य ही प्रसिद्ध वासवदत्ता के अनुकरण पर है। प्रसिद्ध वासवदत्ता की कहानी से नाम के अलावा भी सुबन्धु की वासवदत्ता कथा अनेकत्र समानता रखती है। जैसे प्रसिद्ध वासवदत्ता उज्जयिनि के राजकुल से सम्बन्धित है। प्रस्तुत कथा की वासवदत्ता भी कुसुमपुर के राजा की दुहिता है। जैसे प्रसिद्ध वासवदत्ता की सहमति से उज्जयिनी के राजमहल से राजा उदयन ने उसका अपहरण किया था सुबन्धु की वासवदत्ता को भी उसका प्यारा राजकुमार वैसे ही कुसुमपुर के राजमहल से भगा ले जाता है। जैसे वासवदत्ता का अपहरण कर भागते हुए वत्सराज को विन्ध्य वन मे दस्युओं से युद्ध करना पड़ा था[2] ठीक वैसे ही तो नही परन्तु उसी सरणि पर सुबन्धु की वासवदत्ता के लिए भी जब वह राजकुमार कन्दर्पकेतु के साथ कुसुमपुर से भागती हुई विन्ध्य वन मे पहुँचकर थकान के कारण सोए हुए राजकुमार से पहले ही जागकर कुछ खाद्य फल-मूलादि लाने थोड़ी दूर आगे बढ गई थी तो दो किरात सेनापतियो के बीच युद्ध वर्णित हुआ है। सुबन्धु ने पिता द्वारा पुष्पकेतु के लिए दित्सित वासवदत्ता का अपहरण कन्दर्पकेतु द्वारा बताया है। भवभूति के मालती माधव

---

1 वासवदत्ता, एस0 एस0 ग्रे सस्करण, भूमिका, पृ0 स0 2

2 द्रष्टव्य—भवभूति मालतीमाधव

से यह ज्ञात होता है कि प्रसिद्ध वासवदत्ता को भी उसके पिता ने किसी संजय नृप को व्याहने का वाग्दान दिया था।[1] इस तरह भी दोनो के इतिवृत्त मे सवाद स्पष्ट है। सुबन्धु की वासवदत्ता का मुनि के शाप से शिलामयी पुत्र का होना तथा उसके लिए व्याकुल राजकुमार कन्दर्पकेतु का इतस्ततः खोजते फिरना निश्चयही कालिदासोपग्श विक्रमोर्वशीयम् के चतुर्थाक के वृत्त से अनुकृत है।

बृहत्कथा और सुबन्धु की वासवदत्ता : सुबन्धु की वासवदत्ता मे राजकुमार कन्दर्पकेतु स्वप्नदृष्टा कन्या को खोजने के लिए घर से निकल विन्ध्य वन मे एक जामुन के वृक्ष के नीचे विश्राम करते हुए ऊपर वृक्ष पर बैठे तोता-सारिका के परस्पर आलाप से वासवदत्ता के सम्बन्ध मे जानकारी पाता है।[2] यह कथांश भी बृहत्कथामूलक तथा सरितसागर[3] तथा बृहत्कथामंजरी मे नाना कथा प्रसंगो मे देखा जा सकता है। अवधेय है कि शुक ने सारिका से अपने विलमब से आने का हेतु बताते हुए एक अपूर्व वृहत्कथा के सुनने तथा प्रत्यक्ष करने का उल्लेख किया है।[4] इस उल्लेख के बाद ही उसने मैना के अनुरोध पर 'श्रुता और प्रत्यक्षीकृता' बृहत्कथा-वासवदत्ता-की कथा कही है। यह निश्चय ही इसका सङ्केत है कि सुबन्धु की वासवदत्ता की वस्तु वृहत्कथामूलक है। दुर्भाग्य से वृहत्कथा अब प्राप्त नही है। अगर प्राप्त होती तो बहुत सम्भव है कि वासवदत्ता की जो कथा हमे सुबन्धु ने सुनायी है हम उसका वहाॅ प्रत्यक्ष भी करते।

---

1 द्रष्टव्य—भवभूति मालतीमाधव।

2 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० सं० 85

3 कथासरित्सागर, पचक लम्बक

4 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 85

कथावस्तु का वर्गीकरण

कथावस्तु का सम्बन्ध पात्रो तथा दर्शको से होता है, इसलिए कथावस्तु का वर्गीकरण भी इन्ही दृष्टियों से सम्भव हो सकता है। इस सन्दर्भ मे प्रस्तुत किये गये आचार्य धनञ्जय के विवरण को हम इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते है—

नाटक की कथावस्तु

(पताका) (सूच्य = विष्कम्भक, प्रवेशक,

(प्रकरी) (जनान्तिक, अपवारित) चूलिका, अङ्कास्य, अङ्कावतार)
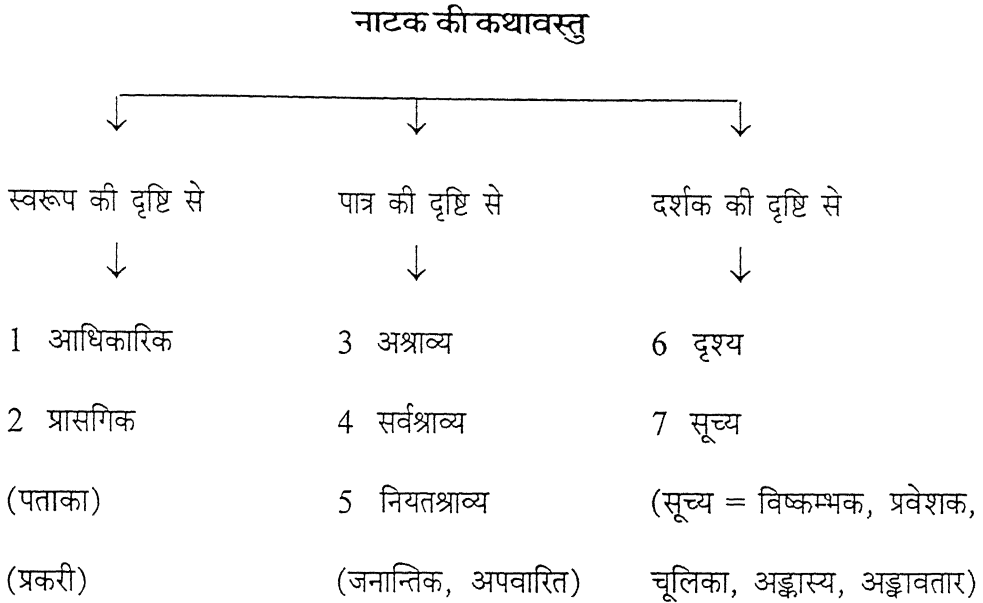
स्वरूप की दृष्टि से वस्तु विभाजन : स्वरूप का तात्पर्य है अपनी अभिव्यक्ति। स्वयं मे कैसी होती है? इस प्रश्न का समीचीन उत्तर यह है कि प्रत्येक कथावस्तु किसी न किसी लोकवन्द्य महापुरुष का चरित होती है जैसे रामायण की कथावस्तु, दशरथनन्दन श्रीराम की चरितगाथा है, महाभारत की कथा पञ्चपाण्डवो की चरितगाथा है। इसी तथ्य को प्रमाण मान कर आचार्यो ने स्वरूप की दृष्टि से कथावस्तु को दो भागो में विभक्त कर दिया है—

1. आधिकारिक 2 प्रासङ्गिक[1]

---

1 दशरूपक, 1/11

आधिकारिक वस्तु : आधिकारिक कथा को ही प्रधान अथवा मूलकथा भी कहते है। किसी फल (वस्तु) पर स्वामित्व होना ही अधिकार है और वह अधिकार जिसके पास हो उसी को 'अधिकारी' कहते है। उस अधिकार के द्वारा किया हुआ या उससे सम्बद्ध काव्य मे अभिव्याप्त इतिवृत्त आधिकारिक कहलाता है।[1] उदाहरणार्थ वाल्मीकि रामायण मे वर्णित रामकथा के अधिकारी (स्वामी) चूँकि भगवान् राम है, इसलिए रामायण की कथा 'आधिकारिक' कथा है।

प्रासङ्गिक इतिवृत्त : इसे अङ्गरूप वस्तु भी कहते है। जो इतिवृत्त दूसरे (आधिकारिक कथा) के प्रयोजन की सिद्धि के लिए होता है किन्तु प्रसङ्ग से उसके अपने प्रयोजन की भी सिद्धि हो जाती है वह प्रासङ्गिक इतिवृत्त कहलाता है, क्योंकि उसकी प्रसङ्ग से सिद्धि होती है।[2] उदाहरणार्थ रामकथा में राम की कथा मुख्य (आधिकारिक) है उसका फल रावण-वध तथा सीता की प्राप्ति आदि है। सुग्रीव की कथा इस प्रधान फल की प्राप्ति मे उपकरण है, किन्तु उस कथा का फल बालि वध और राज्य लाभ की प्रसङ्ग से सिद्ध हो जाता है।

प्रासङ्गिक कथावस्तु के भेद : पताका और प्रकरी : प्रासङ्गिक इतिवृत्त भी पताका और प्रकरी के भेद से दो प्रकार का होता है।[3] जो प्रासङ्गिक वृत्त (प्रधान इतिवृत्त के साथ) दूर तक चलता है। जिस प्रकार पताका (ध्वजा) नायक का असाधारण चिन्ह होती है और उसका उपकार करती है इसी प्रकार यह इतिवृत्त

---

1 साहित्यदर्पण, 6/43

2 दशरूपक, 61/13

3 दशरूपक, 1/13

भी नायक का उपकार करता है इसलिए इसे पताका कहते है।[1] जो प्रासङ्गिक वृत्त थोडी दूर तक चलता है, वह प्रकरी कहलाता है,[2] जैसे रामायणादि मे श्रवणादि का वृत्तान्तहै।

वासवदत्ता की आधिकारिक वस्तु : इस दृष्टि से देखने पर वासवदत्ता कथा मे कन्दर्पकेतु तथा वासवदत्ता का इतिवृत्त ही आधिकारिक या प्रधान वस्तु है क्योकि अथ से इति पर्यन्त प्रधान रूप से इन्ही की कथा चलती है और 'प्रिय प्राप्ति' रूप फल का स्वामित्व भी इन्ही को प्राप्त होता है।

वासवदत्ता में प्रासङ्गिक कथा का अभाव : प्रासङ्गिक वस्तु पताका का वासवदत्ता मे अभाव है। नायक कन्दर्पकेतु के मित्र मकरन्द का वृत्त पताका वस्तु की पूरी सम्भावना रखता है लेकिन कवि की अन्यमनस्कता या अकुशलता के कारण ऐसा सम्भव नही हो पाता है। कुल ले-देकर उसका वृत्त इतना ही है कि एक अच्छे मित्र की तरह स्वप्नदृष्टा राजकुमारी के प्रति राजकुमार की अतिशय विह्वलता को देखकर उसने पहले तो उसे इस अकार्य से हटाना चाहा किन्तु पुनः जब इसमे सफल नही हुआ तो एक वफादार मित्र के नाते उसने राजकुमार के प्रयत्न में सहायता की। उसके वृत्त पर पताका का लक्षण घटित नहीं होता है। उसका जितना भी जैसा भी वृत्त है परार्थ है, दूर तक, आदि से अन्त तक, नायक के साथ जब तक उसका उल्लेख भी मिलता है और इस प्रकार उसके वृत्त को पताका कहा जा सकता था लेकिन राजकुमार के प्राप्तव्य या लक्ष्य से भिन्न उसका कोई स्वार्थ नहीं है जो प्रंसगतः सिद्ध हो जाता है।

---

1. दशरूपक, 1/13
2 दशरूपक, 1/13

पुनश्च उसका वृत्त कुछ इतना नाम मात्र का है कि इस आधार पर उसकी चर्चा को पताका कह देना अनुचित है। दूसरी प्रासङ्गिक वस्तु प्रकरी का भी वासवदत्ता मे संधान नही हुआ है। केवल 'शुकसारिका' प्रसंग ही ऐसा है जिसे प्रकरी कहा जा सकता था किन्तु इसका भी सम्यक निर्वाह नही हो सका है।

वासवदत्ता की कथा उत्पाद्य और मर्त्यलोकीय : इतिवृत्त को प्रख्यात, उत्पाद्य और मिश्र के भेद से पुनः तीन प्रकार का बताया गया है।[1] इतिहासादि से लिया गया इतिवृत्त प्रख्यात, कवि द्वारा कल्पित उत्पाद्य तथा इन दोनो के मिश्रण से मिश्र कहलाता है।[2] साथ ही **आचार्य द्रौहिणि** के अनुसार यह वस्तु दिव्य, मर्त्य (अदिव्य) और दिव्यादिव्य भेद से भी तीन प्रकार की होती है।[3] **यायावरीय** मान्यता के अनुसार उपर्युक्त तीन प्रकारो के अलावा वस्तु के पातालीय मर्त्य, पातालीय, दिव्यपातालीय और दिव्यमर्त्यपातालीय यह और चार प्रकार हैं।[4]

इस दृष्टि से वासवदत्ता की आलोचना करने पर इसकी वस्तु उत्पाद्य तथा मर्त्य या मानुष प्रकार की कही जाएगी क्योकि वासवदत्ता की वस्तु न इतिहास पुराण से गृहीत है न ही मिश्र प्रकार की है और इसके सभी पात्र मानुष तथा मर्त्यलोकीय हैं।

नाटकीय वस्तु की भांति काव्य वस्तु मे भी आचार्यो ने सन्धि-सन्ध्यांगादि

---

1 दशरूपक, 1/15

2 दशरूपक, 1/17

3. राजशेखर, काव्य मीमासा, 9वॉ अध्याय

4 राजशेखर, काव्य मीमासा, 9वॉ अध्याय

की आवश्यकता मानी है।[1] इस सम्बन्ध मे अर्थ-प्रकृतियो, अवस्थाओं और सांगसन्धियो का विवेचन अपेक्षित है। यद्यपि लक्षणकारों ने कथा के प्रसग मे इनकी योजना का निर्देश नही किया है तथापि ये इतिवृत्त के अनुपेक्षणीय तत्त्व हैं और इनके अनुसार भी वस्तु की विवेचना होनी चाहिए। बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी तथा कार्य ये पञ्च अर्थ प्रकृतियॉ है।[2] **लोचनकार** ने सन्धि-सन्ध्यंगो मे ही इनका अन्तरभाव माना है। दशरूपककार तथा उन्ही की पद्धति पर साहित्यदर्पणकार ने इनकी व्याख्या प्रयोजन की सिद्धि के हेतु के रूप में की है।[3] इस दृष्टि से स्वयं प्रयोजन रूप 'कार्य' का 'प्रयोजन सिद्धिहेतुत्व' चिन्त्य[4] है। आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार यदि सिद्धि कर्ता अर्थात् नायक के स्वाधीन है तो 'बीज', 'बिन्दु' तथा 'कार्य' ये तीन ही अर्थ प्रकृतियॉ होगी। बीज से समस्त व्यापार, बिन्दु से अनुसंधान और कार्य से निर्वाह विवक्षित है। इस प्रकार 'सन्दर्शन', 'प्रार्थना' तथा 'व्यवसाय' रूप ये तीनों सम्पाद्य, अर्थ मे कर्ता अर्थात् नायक की प्रकृतियाँ—स्वभाव विशेष हैं। यदि कर्त्ता की सिद्धि 'सचिवायत्त' है तो सचिव के 'कर्त्ता' के लिए अथवा अपने लिए भी प्रवृत्त होने पर प्रकीर्ण और प्रसिद्ध होने के कारण प्रकरी, पताका के नाम से उभय प्रकार के सम्बन्ध वाला व्यापार विशेष पताका तथा प्रकरी शब्द से कहा गया है।[5] अल्परूप से निर्दिष्ट हेतुविशेष वृत्त के कार्य का साधक है तथा आगे अनेक प्रकार से विकसित होने वाला है,

---

1 साहित्यदर्पण, 6/317

2 दशरूपक, 1/18

3 दशरूपक, 1/18 वृत्ति-भाग

4 भोलाशङ्कर व्यास की दशरूपक व्याख्या, पृ0 स0 13 पादटिप्पणी 2

5 ध्वन्यालोक लोचन, चौ0 स0, पृ0 स0 370-371

बाद मे अनेक प्रकार से डालपात करने वाले वृक्ष के बीज की भॉति होने के कारण बीज कहलाता है।[1] यह वस्तु का वह तत्व है जो आरम्भ मे ही अल्परूप मे सङ्केतित होता है और बाद मे यही फल-फूल कर फैलता है।

वासवदत्ता कथा में 'बीज' अर्थप्रकृति : वासवदत्ता के इतिवृत्त का 'कार्य' कन्दर्पकेतु तथा वासवदत्ता का मिलन करा देना है। राजकुमार तथा राजकुमारी दोनो का एक-दूसरे को स्वप्न में देखकर मोहित होना इस 'कार्य' का स्तोकोद्दिष्ट, कार्यसाधक, पुरस्तादनेकप्रकारविस्तारी हेतु विशेष है। उनका परस्पर स्वप्नदर्शन ही उनको प्रयत्न की ओर प्रवृत्त करता है तथा नाना संघर्षो के बीच फल तक पहुँचता है। वासवदत्ता मे कन्दर्पकेतु द्वारा 'एह्येहि प्रियतमे।' मा गच्छ मा गच्छेति दिक्षु विदिक्षु च विलिखितामिव उत्कीर्णामिव चक्षुषि, निखातामिव हृदये प्रियतमामाजुहाव।[2] स्वप्नदृष्टा कन्या के प्रति उसके मोह भाव या अनुराग को, जो कथा के फलागम का बीज है, प्रकट करता है।

वासवदत्ता कथा में 'बिन्दु' अर्थ प्रकृति : किसी दूसरी कथा से विच्छिन्न हो जाने पर इतिवृत्त को जोड़ने और आगे बढ़ाने के लिए जो कारण होता है वह बिन्दु कहलाता है।[3] वासवदत्ता मे वर्णित शुकसारिका वृत्त एक अवान्तरार्थ है। इससे स्वप्नदृष्टा कन्या की तलाश मे निकले राजकुमार की मुख्य कथा मे विश्रृंखलता आ जाती है किन्तु मैना से कथा कहते हुए तोते ने जब यह बताया कि राजा चिन्तामणि के पुत्र कन्दर्पकेतु को स्वप्न में देखकर

---

1 दशरूपक, 1/17

2 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 51

3 दशरूपक, 1/17

कुसुमपुर की राजकुमारी वासवदत्ता उसके विरह में अत्यन्त व्याकुल हो गई है जिससे विवश होकर उसकी सखियो ने राजकुमारी की तमालिका नामक सारिका को राजकुमार के मनोभावो को जानने केलिए भेजा है जो मेरे ही साथ चलकर आयी हुई यहीं वृक्ष के अधोभाग में कही बैठी है और उससे ऐसा सुनकर कुमारमित्र मकरन्द तमालिका को बुलाकर सारे वृत्तान्त को कहता सुनता है तो अवान्तरार्थविच्छिन्न कथा की कड़ी फिर जुट जाती है और वृत्त आगे बढता है। वासवदत्ता का-राजकुमारी द्वारा राजकुमार को स्वप्न से देखने से लेकरे सारिका को भेजने और उससे कन्दर्पकेतु—मकरन्द की भेट वार्ता तक का स्थल अवान्तरार्थविच्छिन्न वस्तु का अच्छेद-कारण बिन्दु है।[1]

वासवदत्ता में पताका तथा प्रकरी का अभाव है। नायक की कार्यसिद्धि 'स्वायत्त' है इसलिए जैसा कि लोचनकार ने कहा भी है पताका तथा प्रकरी की आवश्यकता नहीं है।[2] अन्तिम अर्थप्रकृति 'कार्य' वासवदत्ता कथा मे वासवदत्ताकन्दर्पकेतुमिलनांश ही है।

अर्थप्रकृतियो के अलावा फल की इच्छा वाले नायकादि के द्वारा प्रारब्ध कार्य की पॉच अवस्थाएं होती हैं।[3] लोचनकार के अनुसार फल की सिद्धि के लिए कर्ता द्वारा आश्रियमाण उपाय पाँच अवस्थाओं को प्राप्त करता है—स्वरूप अर्थात् उपाय के अनुष्ठान की अवस्था, स्वरूप से कुछ उच्छूनता अर्थात् कुछ पोषण, कार्य के सम्पादन की योग्यता, प्रतिबन्ध के आगमन से कार्यसिद्धि

---

1 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 146-48

2 सलोचन ध्वन्यालोक, चौ0 स0 2021, पृ0 स0 370-371

3. दशरूपक, 1/19

मे आशंक्यमानता तथा प्रतिपक्षता के न रहने पर बाधक के बाध द्वारा सुदृढफलपर्यन्तता।[1] भरतमुनि ने कहा है कि फलयोग के साध्य होने के कारण का जो व्यापार है उसकी आनुपूर्वी से आरम्भ प्रयत्न, प्राप्ति का नियत फलप्राप्ति और फलयोग ये पाँच अवस्थाये प्रयोक्ताओं को जाननी चाहिए।[2] अत्यधिक फललाभ के लिए औत्सुक्य मात्र को आरम्भ कहते है।[3] किसी भी फल की प्राप्ति के लिए नायकादि मे इच्छा होती है तथा उसके प्रति उत्सुकता भी होती है। इस उत्सुकता मात्र का पाया जाना आरम्भ है। आरम्भ के लक्षण को अधिक स्पष्ट करते हुए धनिक ने कहा है कि 'मैं इसे करूँ' सिर्फ यह अध्यवसाय ही आरम्भ है।[4] इस अवस्था के अन्तर्गतनेता मे किसी वस्तु की प्राप्ति की इच्छा व्यक्त होती है। यह इच्छा प्रकाशन कभी-कभी नायक द्वारा होता है कभी किसी अन्य पात्र द्वारा। वासवदत्ता में स्वप्नदृष्टा कन्या के लिए **वासवदत्ता में 'आरम्भ' अवस्था :** व्याकुल होकर जब राजकुमार कन्दर्पकेतु 'एह्येहि प्रियतमे' इत्यादि कहने लगता है तो उसमे 'भुयसे फललाभाय' 'औत्सुक्य' व्यक्त हो जाता है और यही आरम्भ नामक अवस्था है।

वासवदत्ता में 'प्रयत्न' नामक अवस्था : फल की प्राप्ति न होने पर उपाय, योजनादि रूप जो चेष्टा विशेष होता है वही फलार्थी द्वारा प्रारब्ध कार्य की प्रयत्न नामक अवस्था है।[5] जगने पर स्वप्नदृष्टा सुन्दरी कन्या को न पाकर

---

1 सलोचन ध्वन्यालोक, चौ0 स0, पृ0 स0 369-70

2 भरत नाट्यशास्त्र, 21/7/9

3 दशरूपक, 1/20

4 दशरूपक, 1/20, वृत्ति भाग

5 दशरूपक, 1/20 वही वृत्तिभाग

आकुलाकुल राजकुमार जब मकरन्द के साथ उसकी तलाश मे निकल पडता है तब 'कार्य' की 'प्रयत्न' नामक अवस्था आरम्भ होती है और तमालिका को साथ लेकर कुसुमपुर मे वासवदत्ता-राजकुमार मिलन पर्यन्त चलती है।

वासवदत्ता में 'प्राप्त्याशा' नामक अवस्था : जहाँ उपाय तथा विघ्न की आशंका से फलप्राप्ति के विषय मे कोई ऐकान्तिक निश्चय नही हो पाता है वहाँ प्राप्त्याशा नामक अवस्था होती है। वासवदत्ता मे इस अवस्था का आरम्भ वासवदत्ता की प्रिय सखी कलावती के 'आर्यपुत्र। यह निश्चित होकर वार्ता करने का अवसर नही है। हमारी राजकुमारी को इनके पिताजी ने यौवनातिक्रम दोष की आशङ्का के कारण कल विद्याधर चक्रवर्ती के पुत्र पुष्पकेतु के साथ व्याह देने का निश्चयकिया है।'—इस कथन से होता है। उससे ऐसा सुनकर राजकुमार अत्यन्त भयभीत होकर, मकरन्द को उसी नगर मे अपने पीछे वार्तान्वेषणाय नियुक्त कर वासवदत्ता के साथ नगर से निकल जाता है। यद्यपि राजकुमारी वासवदत्ता राजकुमार कन्दर्पकेतु को मिल गई है तथापि राजा के विरोध की आशंका से उसका चित्त सशयित है। राजा की ओर से उसे विघ्न की आशङ्का है। कलावती के मुख से राजा के निश्चय सुनकर वह डर गया था कि कही वासवदत्ता छिन तो न जायेगी और इसी आशङ्का के वशीभूत उसने मकरन्द को खोज टोह लेते रहने के लिए अपने पीछे कुसुमपुर मे छोड़ दिया था।[1]

वासवदत्ता में 'नियताप्ति' अवस्था : 'प्राप्त्याशा' नामक अवस्था जब तक मकरन्द कुसुमपुर से अपना कार्य निपटाकर राजकुमार से आकर मिल नहीं जाता चलती रहती है। जब विघ्ङ के अभाव के कारण फल की प्राप्ति निश्चित

---

1 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 211-259

हो जाती है तो तब नियताप्ति नामक अवस्था होती है।[1] वासवदत्ता मे यह अवस्था कुसुमपुर मे वार्तान्वेषण के लिए नियुक्त मकरन्द के लौट आने पर ही आती है। कवि ने इतनी द्रुति से 'निर्वहण' की सूचना दी है कि 'नियताप्ति' नामक अवस्था अह्य मात्र है।

वासवदत्ता में 'फलागम्' अवस्था : 'फलागम' वह कार्यावस्था है जिसे समग्र फललाभ कहा गया है। वासवदत्ता तथा कन्दर्पकेतु का नाना विघ्नो के बाद परस्पर मिलन ही वासवदत्ता कथा का 'फलागम' है और यह 'वासवदत्ता' की इसके बाद मकरन्द ने आकर सारा वृत्तान्त सुना और कन्दर्पकेतु उसे तथा वासवदत्ता को साथ लेकर अपने नगर चला गया जहाँ अभीष्ट सुरलोकदुर्लभ नाना सुखों को भोगता हुआ बहुत काल तक रहा इन पंक्तियो में प्रकट है।

सन्धि निरूपण

सन्धि शब्द का अर्थ है—सन्धान, मिश्रण, ठीक ढंग से मिलाना यहाँ पर किसी रूपक की कथावस्तु की सुव्यवस्थित योजना का नाम ही सन्धि है, अर्थात् कथावस्तु को विभक्त करके ठीक रूप से सगठित करना। बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य इन पॉच अर्थप्रकृतियो का क्रमशः आरम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा; प्रकरी और फलागम इन पञ्च अवस्थाओं के साथ योग होने से क्रमशः मुख, प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्श और उपसंहृति—ये पॉच सन्धियॉ होती हैं।[2] यह मत दशरूपककार का है। किन्तु उन्होंने पुनः सन्धि का सामान्य लक्षण बताते हुए अपनी उपर्युक्त स्थापना से कुछ भिन्न ही बात कही है।[1] जिसे स्पष्ट

---

1 दशरूपक, 1/21

2 दशरूपक, 1/22-23

करते हुए धनिक ने अपनी वृत्ति मे लिखा है कि किसी एक प्रयोजन से सम्बद्ध कथांशो को किसी एक अवान्तर प्रयोजन के साथ सम्बन्ध होना ही सन्धि कहलाता है।[2]

धनञ्जय के अनुसार सन्धि का लक्षण है—किसी रूपक मे कई कथाश होते हैं उनके अपने प्रयोजन भी भिन्न-भिन्न होते हैं किन्तु वे इतिवृत्त के प्रधान प्रयोजन से समन्वित होते है और किसी जवान्तर प्रयोजन के साथ भी उन सबका सम्बन्ध हुआ करता है। यही सम्बन्ध सन्धि कहलाता है अर्थात् मुख्य प्रयोजन से अन्वित कथांशो का किसी एक अवान्तर प्रयोजन से सम्बन्ध। सन्धियो का रचनात्मक स्वरूप है—

1. बीज + प्रारम्भ = मुखसन्धि
2. बिन्दु + प्रयत्न = प्रतिमुखसन्धि
3. पताका + प्राप्त्याशा = गर्भ सन्धि
4. प्रकरी + नियताप्ति = अवमर्श सन्धि
5. कार्य + फलागम = उपसंहृति।

अवधेय है कि सन्धि सामान्य की इस परिभाषा मे कही भी अर्थप्रकृति तथा अवस्था के मिश्रण की बात नही आई है। आचार्य भरत ने भी अर्थ-प्रकृति तथा अवस्थाओं के मिश्रण से सन्धि की उत्पत्ति की चर्चा नही की है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने भी दशरूपककार का अनुसरण करते हुए अर्थप्रकृतियो तथा

---

1. दशरूपक, 1/23
2 दशरूपक, 1/23, वृत्तिभाग

अवस्थाओं के योग मे सन्धियो की उत्पत्ति मानी है।[1] किन्तु यह योग मानने पर जैसा कि **डा० भोलाशङ्कर व्यास** ने निरूपित किया है, एक गडबड़ी हो सकती है। प्रकरी का सम्बन्ध विमर्श या अवमर्श से माना गया है पर कही यह गर्भ मे पायी जाती है। जैसे रामकथा मे शबरी वृत्तान्त प्रकरी माना जाता है पर रामकथा में यहाँ 'गर्भसन्धि' ही चल रही है। अस्तु सन्धियों को अर्थप्रकृतियो और अवस्थाओं के योग से उत्पन्न मानना ही त्रुटिपूर्ण है।[2] अभिनवगुप्त पादाचार्य ने परस्पर तथा अङ्गो के साथ सन्धीयमान अर्थावयवों को सन्धि कहा है। यही उनके अनुसार सामान्य लक्षण हैं।[3] लोचन में आचार्य ने इस प्रकार कहा है कि 'आरम्भादि जो ये कारण की अवस्थाये है उनको सम्पन्न करने वाले कर्त्ता का इतिवृत्त पाँच प्रकार से विभक्त है। वे ही मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहन नामक पाँच सन्धियाँ—इतिवृत्त खण्ड— है। 'सन्धान की जाती है' इस प्रकार इनकी व्युत्पत्ति है। इन सन्धियो के भी स्वनिर्वाह्य फल के प्रति तथा क्रमशदर्नात अवान्तरभिन्न इतिवृत्त भाग हैं। अपक्षेप परिकरादि ही सन्धियो के अङ्ग है।[4] भरत ने कहा है कि इतिवृत्त नाट्य का (प्रसङ्गतः काव्य का भी) शरीर है और पाँच सन्धियों द्वारा इस शरीर का विभाग सम्प्रकल्पित होता है।[5] सन्ध्यांगो की कुल संख्या दशरूपककार ने चौसठ बतायी है।[1] सन्ध्यंगो के

---

1 दशरूपक, 6/74

2 द्रष्टव्य—दशरूपक, चौ० स० 1962, पृ० सख्या 17

3 तेन अर्थावयवा सन्धीयमाना परस्परम् अगश्च सन्ध्यः इति समारया निरुक्ता। तदेषा सामान्य लक्षणम्।

4 द्रष्टव्य—ध्वन्यालोक लोचन, चौ० स०, पृ० स० 370

5 द्रष्टव्य—भरत नाट्यशास्त्र

सम्बन्ध मे डा0 कीथ की मान्यता है कि इतिवृत्त की दृष्टि से यह विभाजन विशेष महत्व नही रखता।[2]

मुखसन्धि तथा उसका वासवदत्ता में विवेचन : इस 'सन्धिपञ्चक' मे जो प्रथम सन्धि है उसे 'मुख' कहा करते है। मुखसन्धि का अभिप्राय रूपक की अर्थराशि का वह अंश है जिसके साथ नायक की प्रारम्भावस्था सम्बद्ध रहा करती है और जिसमे 'बीज' रूप अर्थप्रकृति की योजना हुआ करती है। यह 'मुखसन्धि' रूप अर्थराशि ऐसी हुआ करती है जिसमें भिन्न-भिन्न रसभावो की अभिव्यञ्जना भरी रहा करती है।[3] अभिनवगुप्त के अनुसार प्रारम्भोपयोगी जितनी अर्थराशि है उतनी मुखसन्धि है।[4] चूँकि सन्धियाँ अवस्था परतन्त्र हैं इसलिए प्रारम्भाभिधानदशाविशेषोपयोगी कथा खण्डलक को आचार्य ने मुखसन्धि कहा है।[5] वासवदत्ता मे राजकुमार द्वारा राजकुमारी को स्वप्न मे देखने से लेकर उसकी तलाश मे मकरन्द के साथ निकल पड़ने से ठीक पूर्व तक मुखसन्धि का स्थल है। इस मुखसन्धि के बीज, आरम्भ तथा प्रयोजन से समन्वित—उपक्षेप, परिकर, परिन्यास, विलोभन, युक्ति, प्राप्ति, समाधान, विधान, परिभावना, उद्भेद, 11 भेद और 12 करण ये अन्वर्थ नाम हैं।[6] इनमें भी उपक्षेप, परिकर, परिन्यास, युक्ति, उद्भेद और समाधान का उपादान आवश्यक बताया गया

---

1 द्रष्टव्य—दशरूपक 1/54

2 द्रष्टव्य—कीथ का सस्कृत ड्रामा, पृ0 स0 299

3 साहित्यदर्पण, 6/76

4 अभिनवभारती नाट्यशास्त्र 19 39

5 वही

6 दशरूपक, 1/25-26

है।[1] वासवदत्ता के इतिवृत्त मे केवल 'विलोभन', 'उद्भेद' एवं 'करण' की ही घटना प्राप्त होती है। गुणो का वर्णन विलोभन कहलाता है।[2] कोई व्यक्ति किसी पर उसके गुणो के कारण ही लुब्ध होता है। काव्यादि मे नायकादि को फल की ओर लुभाने के लिए कवि उसके गुणो का आख्यान करता है। नायकादि को फल की ओर आकृष्ट करने के कारण ही यह तत्त्व 'विलोभन' कहलाता है। वासवदत्ता में सुबन्धु ने जहाँ स्वप्नदृष्टा कन्या का वर्णन करते हुए यह कहा है कि राजकुमार—'इन्द्रियो को अपने-अपने व्यापार से निवृत्त करने वाला चूर्ण, मन को आकृष्ट करने वाला मन्त्र, कामरूपी ऐन्द्रजालिक की दृष्टि बन्धक महौषधि, प्रजापति की तीनो लोको को लुभाने वाली रचना के समान स्थित....कन्या को देखा,[3] वहाँ 'विलोभन' नामक मुखरन्ध्यङ्ग ही है।

बीज के अनुकूल किसी गूढ़ बात को प्रकट करना ही 'उद्भेद' कहलाता है। वासवदत्ता में स्वप्न मे एक सुन्दरी कन्या को देखकर जगा हुआ राजकुमार जब आकाश मे निर्लक्ष ही आलिगनार्थ दोनों बाहे फैलाकर 'आओ आओ प्रियतमे मत जाओ' कहकर दिशाओं विदिशां मे चित्रित सी, नेत्रों में खुदी हुई सी, हृदय में स्थापित सी प्रियतमा को बुलाने लगा[4] तब गूढ बीज का भेदन हो जाता है। सब पर कन्दर्पकेतु का स्वप्नदृष्ट सुन्दरी कन्या के प्रति अनुराग जो कन्दर्पकेतु वासवदत्ता मिलन रूप फलागम का बीज है

---

1 दशरूपक, 1/29

2 दशरूपक, 1/27

3 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 50

4 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 51

प्रकट हो जाता है।

प्रस्तुत कार्य का आरम्भ करना 'करण' कहलाता है।[1] वासवदत्ता का— 'यदि तुम बाल्यकाल से मेरे सुख-दुःखो के साथी रहे हो तो मेरे साथ आओ यह कहकर परिजनो की आंख बचाकर उस (मकरन्द) के साथ ही नगर से चल पड़ा'—यह स्थल 'करण' का उदाहरण है। कथा के अनुरूप प्रकृत कार्य का आरम्भ यही से होता है।

वासवदत्ता में 'प्रतिमुख सन्धि' : जहाँ उस बीज का कुछ लक्ष्य रूप मे और कुछ अलक्ष्य रूप मे उद्भेद होता है वह प्रतिमुख सन्धि कहलाती है।[2] दशरूपककार के मतानुसार बिन्दु नामक अर्थप्रकृति और प्रयत्न नामक कार्यावस्था के योग से इसके तेरह अङ्ग होते हैं।[3] वासवदत्ता मे बीज का लक्ष्यालक्ष्यतयाउद्भेद कहीं भी दृष्टिगोचर नही होता। अतः इस सन्धि का— इसके अङ्गो का भी—इसमे अभाव है।

गर्भ सन्धि और वासवदत्ता में उसका निरूपण : जहाँ दिखलाई देकर खोये गये बीज का बार-बार अन्वेषण किया जाताहै, वह गर्भसन्धि है। इसमे पताका नामक अर्थप्रकृति कही होती है कहीं नही भी होती है, किन्तु प्राप्त्याशा नाम की कार्यावस्था होती ही है। इसके बारह अङ्ग होते हैं।[4] इस सन्धि को 'गर्भ' इसलिए कहा करते है क्योंकि इसमें नाटक का प्रधान फल

---

1 दशरूपक, 1/29

2 दशरूपक, 1/30

3 दशरूपक, 1/30

4 दशरूपक, 1/36

गर्भित प्रतीत हुआ करता है।[1] जिस बीज को प्रतिमुखसन्धि मे कभी पनपता कभी मुर्झाता देखा गया है वही यहॉ आकर विशेष रूप से फूट पडता है किन्तु फलागम विघ्नरहित नही होता है। 'कभी तो विच्छेदहोता है, पुनः उसकी प्राप्ति होती है, पिर विच्छेद हो जाता है और इसी प्रकार बारम्बार उसी का अन्वेषण किया जाता है। यहाँ प्राप्ति की सम्भावना तो होती है किन्तु फल का ऐकान्तिक निश्चय नही हो पाता।[2] वासवदत्ता मे राजकुमारी को साथ लेकर कुसुमपुर से राजकुमार के भाग आने पर एक तरह से राजकुमारी राजकुमार को प्राप्त हो जाती है। कम से कम ऐसी सम्भावना आवश्यक हो जाती है। किन्तु यह दृष्ट बीज मुनि के शाप से नष्ट हो जाता है और राजकुमार के द्वारा इसका बारम्बार अन्वेषण होता है इसलिए यह प्रकरण 'गर्भ सन्धि' के अन्तर्गतहै। इसके अभूताहरणादि बारह अंग बताये गये हैं किन्तु वासवदत्ता के इतिवृत्त में इनका स्फुट संधान नही हुआ है।

अवमर्श सन्धि : अवमर्श शब्द का अर्थ है—ऊहा-पोह करना, पर्यालोचन। जहाँ क्रोध से, व्यसन से अथवा प्रलोभन से फलप्राप्ति के विषय में विमर्श किया जाता है, तथा जिसमें गर्भसन्धि द्वारा निर्भिन्न बीजार्थ का सम्बन्ध दिखलाया जाता है, वह अवमर्श सन्धि कहलाती है।[3] अवमर्श नामक सन्धि का भी वासवदत्ता के इतिवृत्त मे अभाव है।

---

1 साहित्यदर्पण, 6/78
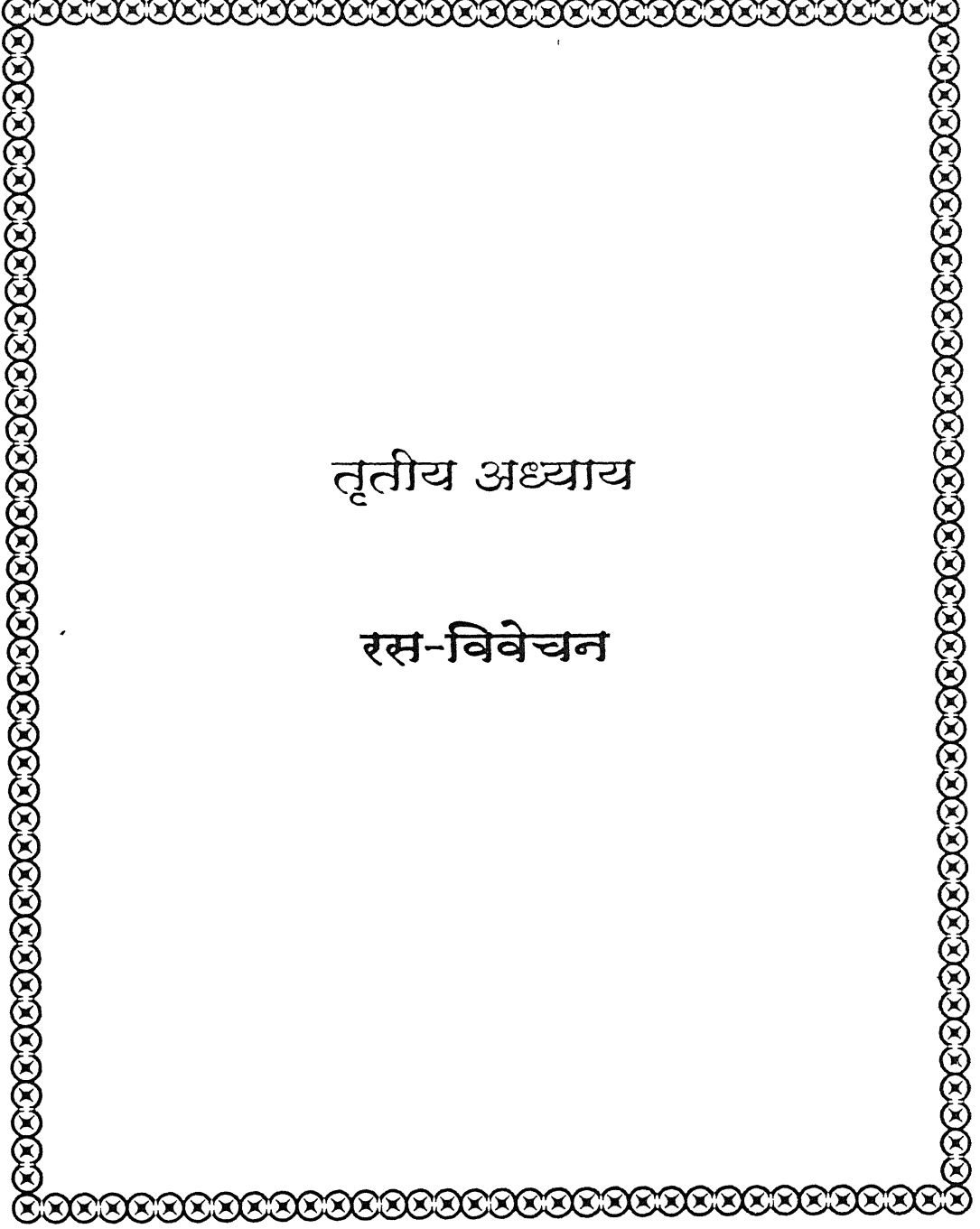
2 दशरूपक, 1/32 वृत्ति भाग

3 दशरूपक, 1/43

निर्वहण सन्धि और वासवदत्ता में उसका विवेचन : जहाँ बीज से सम्बन्ध रखने वाले मुख सन्धि आदि मे अपने-अपने स्थान पर बिखरे हुए प्रारम्भादि अर्थो का एक मुख्य प्रयोजन के साथ सम्बन्ध दिखलाया जाता है, वह 'निर्वहण सन्धि' कहलाती है।[1] वासवदत्ता मे इसका भी यथोचित विधान नही हो सका है। कथा के अन्तिम वाक्य मे कवि का—'इसके बाद मकरन्द, जिसने आकर सारा वृत्तान्त सुना तथा वासवदत्ता को साथ लेकर राजकुमार अपने नगर गया जहाँ स्वर्ग दुर्लभ मनोवांछित सुख भोगते हुए उसने बहुत काल व्यतीत किया।[2] यह वक्तव्य निर्वहण की सूचना भर देता है। यह उपसंहार वाक्य है जिसमे सारे कथानक का फलागम अकस्मात घोषित हो गया है। कवि का यह समापन इतना अकस्मात होता है कि पाठक या श्रोता को खटकने लगता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे कथा कहते-कहते कवि ऊब गया हो और कथा तन्तुओं को धीरेधीरे समापन की ओर लाने के बजाय एक ही वाक्य मे एक साथ एकदम फलागम कहकर उसने अपनी जान छुड़ा ली है। अस्तु। निर्वहण सन्धि के निर्णयादि चौदह अङ्ग बताये गये हैं। इसमें केवल 'आनन्द' नामक सन्ध्यङ्ग का उपयोग वासवदत्ता मे किया गया है। अभीष्ट की प्राप्ति होना 'आनन्द' कहलाता है। वासवदत्ता मे नायक कन्दर्पकेतु तथा नायिका वासवदत्ता के पारस्परिक संयोग की कथा के अन्तिम वाक्य मे सूचना देकरे कवि ने 'आनन्द' का ही यथा-तथा निरूपण किया है।

---

1 दशरूपक, 1/48-49

2 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 259

तृतीय अध्याय

रस-विवेचन

भारतीय सौन्दर्य कल्पना

भारतीय सौन्दर्य-दर्शन का मूल आधार है—काव्यशास्त्र यद्यपि दर्शन मे भी, विशेषकर आनन्ददायी आगम ग्रन्थो मे, आत्म-तत्व के व्याख्यान के अन्तर्गत सौन्दर्य की अनुभूति के विषय मे प्रचुर उल्लेख मिलते हैं, फिर भी सौन्दर्य के आस्वाद और स्वरूप का व्यवस्थित विवेचन काव्यशास्त्र मे ही मिलता है। आधुनिक मनोविज्ञान की दृष्टि से सौन्दर्य-चेतना एक मिश्रवृत्ति है। इसके योजक तत्व हैं— **1. प्रीति अर्थात् आनन्द और 2. विस्मय।** भारतीय काव्यशास्त्र इस रहस्य से आरम्भ से ही अवगत था। उसके दो प्रतिनिधि सिद्धांत रस और अलङ्कार, क्रमशः प्रीति और विस्मय के ही शास्त्रीय विकास हैं। सौन्दर्य के आस्वाद मे निहित प्रीति तत्व का प्राधान्य रस-सिद्धान्त में प्रस्फुटित और विकसित हुआ, और दूसरी ओर विस्मय-तत्व की प्रमुखता ने वक्रता, अतिशयादि के माध्यम से अलङ्कारवाद का रूप धारण किया। इन दोनो मे रस-सिद्धान्त केवल कालक्रम की दृष्टि से ही नही, वरन् प्रभाव और प्रसार की दृष्टि से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है—वास्तव में भारतीय काव्यशास्त्र की आधारशिला यही है।

रस शब्द का अर्थ विकास

रस भारतीय वाङ्मय के प्राचीनतम शब्दों मे से है। सामान्य व्यवहार में इसका चार अर्थो मे प्रयोग होता है : 1. पदार्थो का रस-अम्ल, तिक्त; कषायादि; 2. आयुर्वेद का रस 3. साहित्य का रस और इसी से मिलता-जुलता, 4. मोक्ष या भक्ति का रस। प्राकृतिक (पार्थिव) रस में रस का अर्थ

है पदार्थ (वनस्पति आदि) को निचोड़कर निकाला हुआ द्रव, जिसमे किसी न किसी प्रकार का स्वाद होता है। इस प्रसङ्ग मे रस का प्रयोग पदार्थ-सार और आस्वाद दोनो अर्थो मे होता है : पदार्थ का सार (या सारभूत द्रव्य) भी रस है और उसका आस्वाद भी रस है। आगे चलकर ये दोनों अर्थ स्वतन्त्र रूप मे विकसित हो गये। आयुर्वेद मे रस का अर्थ है पारद—यह प्राकृतिक रस का ही अर्थ-विकास है। यहाँ पदार्थ-सार तो अभिप्रेत है ही, किन्तु उसके साथ उसके आस्वाद का नही वरन् गुण (शक्ति) का ग्रहण किया जाता है। पदार्थ-रस जहाँ आस्वाद-प्रधान है, वहाँ आयुर्वेद का रस शक्ति-प्रधान है। आयुर्वेद में रस का एक और अर्थ है देह-धातु—अर्थात् शरीर मे अन्तर्भूत ग्रन्थियो का रस जिस पर शरीर का विकास निर्भर रहता है। यहाँ भी शक्ति का ही प्राधान्य है। तीसरा प्रयोग है साहित्य का रस, जहाँ रस का अर्थ है (अ) काव्य सौन्दर्य, और (आ) काव्यास्वाद—तथा काव्यानन्द भी। मोक्ष-रस या आत्म-रस ब्रह्मानन्द अथवा आत्मानन्द का वाचक है; भक्ति-रस का अर्थ भी, सिद्धान्त भेद होने पर भी, मूलतः यही है।

रस के उपरोक्त विवेचित सभी अर्थो में आस्वाद का अन्तर्भाव तो स्पष्ट है, चाहे उसको ग्रहण करने का माध्यम ज्ञानेन्द्रिय रसना हो या सूक्ष्मेन्द्रिय मन हो, मस्तिष्क हो या आत्मा; द्रवत्व और सार अथवा प्राण-तत्व का भाव भी प्रायः किसी न किसी रूप मे सर्वत्र मिलता है। रस शब्द का पहला अर्थ—अर्थात् पदार्थों का सारभूत द्रव—वेदों में स्पष्ट रूप से मिलता है। वनस्पतियों के रस का वैदिक युग मे प्रचुर प्रयोग होता था : मानव सभ्यता के उस प्रभात युग में यह स्वाभाविक ही था।[1]

---

1 मये यत्पित्र इँ रस दिवे करवत्सरत् । ऋग्वेद 1 71 5

रस सम्प्रदाय

राजशेखर के कथनानुसार **नन्दिकेश्वर** ने ब्रह्मा जी के उपदेश से सर्वप्रथम रस का निरूपण किया। परन्तु नन्दिकेश्वर के रस-विषयक मत का पता नही चलता। उपलब्ध रस-सिद्धान्त भरतमुनि के साथ सम्बद्ध है। भरत रस-सम्प्रदाय के प्रथम तथा सर्वश्रेष्ठ आचार्य हैं। नाट्यशास्त्र के षष्ठ तथा सप्तम अध्यायो मे रस और भाव का जो निरूपण प्रस्तुत किया गया है वह साहित्य-संसार में एक अपूर्व वस्तु है। भरत के समय मे नाट्य का ही बोलबाला था। इसलिए भरत ने नाट्यरस का ही विस्तृत, व्यापक तथा मार्मिक विवेचन प्रस्तुत किया है। रस-सम्प्रदाय का मूलभूत सूत्र है— **'विभावानु-भावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः'।** अर्थात् विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। देखने मे यह सूत्र जितना छोटा है, विचार करने मे उतना ही सारगर्भित है। भरत ने इसका जो भाष्य लिखा है, वह बड़ा ही सुगम है। भरत के टीकाकारों ने इस सूत्र की भिन्न-भिन्न व्याख्याएँ की हैं, जिनके चार मत प्रधान है। इन टीकाकारों के नाम हैं—भट्टलोल्लट, शङ्कुक, भट्टनायक तथा अभिनवगुप्त। **भट्टलोल्लट उत्पत्तिवादी** है। वे रस को विभावादि का कार्य मानते हैं। शंकुक विभावादिको के द्वारा रस की अनुमिति मानते है। उनकी सम्मति मे विभावादिको का रस से अनुमाप्य-अनुमापक सम्बन्ध है। **भट्टनायक भुक्तिवादी** हैं। उनकी सम्मति मे विभावादि का रस से भोज्य-भोजक सम्बन्ध है, जिसे सिद्ध करने के लिए उन्होने अभिधा से अतिरिक्त भावकत्व तथा भोजकत्व नामक दो व्यापारों को भी स्वीकार किया है। **अभिनवगुप्त व्यक्तिवादी** हैं। उन्हीं का मत अधिक

मनोवैज्ञानिक है और इसलिए उनका मत समस्त आलङ्कारिको के आदर तथा श्रद्धा का पात्र है। समग्र स्थायी भाव वासनारूप मे सहृदयो के हृदय मे विद्यमान रहते है। विभावादिको के द्वारा ये ही सुप्त स्थायी भाव अभिव्यक्त होकर आनन्दमय रस का रूप प्राप्त कर लेते हैं।

रस की सख्या के विषय मे आलङ्कारिको मे मतभेद दीख पड़ता है। **भरत ने आठ रस** माने हैं—(1) शृङ्गार (2) हास्य (3) करुण (4) रौद्र (5) वीर (6) भयानक (7) वीभत्स (8) अद्‌भुत। शान्त रस के विषय मे बड़ा विवाद है। भरत तथा धनञ्जय ने नाटक मे शान्त रस की स्थिति अस्वीकार की है।[1] नाटक अभिनय के द्वारा ही प्रदर्शित किया जाता है और शान्तरस सब कार्यो का विरामरूप है। ऐसी दशा मे शान्त का प्रयोग नाटक मे हो ही नही सकता। काव्यादिको में उसकी सत्ता अवश्य विद्यमान रहती है। आनन्दवर्धन के अनुसार महाभारत का मूल रस शान्त ही है। **रुद्रट ने 'प्रेयान्'** को भी रस माना है। **विश्वनाथ 'वात्सल्य'** को रस मानने के पक्षपाती हैं। **गौडीय वैष्णवों** की सम्मति मे **'मधुर रस'** सर्वश्रेष्ठ, सर्वप्रथम रस है। साहित्य मे रस-मत की महत्ता है। लौकिक संस्कृत का प्रथम शलोक—जो क्रौंचवध से मर्माहत होकर महर्षि वाल्मीकि को स्फुरित हुआ—रसमय ही था। इस रस को सब सम्प्रदायों ने अपनाया है, परन्तु अपने मतानुसार इसे ऊँचा-नीचा स्थान दिया है।

अङ्गीरस तथा अङ्ग रस

यद्यपि आस्वाद्य होने के कारण सभी रस समान रूप से महत्वपूर्ण होते हैं। परन्तु अनेक विवेचको ने सभी रसों में से किसी एक रस को अन्य रसों

---

1 दशरूपक 4/35

की अपेक्षा अधिक महत्व प्रदान किया है। शृङ्गार को रस-राज स्वीकार करने वाले चिन्तको की सख्या भले ही अधिक हो परन्तु वीर, करुण तथा शान्त-रस को सभी रसो से श्रेष्ठ स्वीकार करने वाले मनीषियो के भी अपने सारगर्भित तर्क है। विभिन्न विवेचको के तर्को मे अन्तर होते हुए भी साहित्य जगत् मे उनकी मान्यताओं को आदर प्रदान किया गया है और महाकाव्यो मे प्रायः उन्ही रसो की प्रधान रूप से योजना करने पर बल दिया गया है जिन्हे किसी न किसी मनीषी ने रस राज सिद्ध करने का प्रयत्न किया है—

'शृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गीरस इष्यते।
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः॥'[1]

काव्य मे सर्व प्रथम ही जिसकी व्यञ्जना की गई हो तथा अन्त तक जिसका पुनः-पुनः अनुसन्धान किया गया हो ऐसे स्थायी रूप से भासित होने वाले रस को आनन्दवर्धन ने अङ्गी रस के नाम से अभिहित किया है :

'प्रबन्धेषु प्रथमतरं प्रस्तुतः सन् पुन· पुनरनुसंधीयसानत्वेन स्थायी यो रसस्तस्य सकलसन्धिव्यापिनो रसान्तरैरन्तरालवर्तिभिः समावेशो यः, स नांगितामुपहन्ति।[2]

यत्र-तत्र विनियोजित प्रधान रस के उपकारक अन्य रसो को अङ्ग रस के नाम से अभिहित किया जाता है। महाकाव्य मे इन दोनो प्रकार के रसो का सन्निवेश करना अनिवार्य होता है।

---

1 साहित्यदर्पण 6-317

2 ध्वन्यालोक पृ0 387

रसादि निरूपण

रसादि के अन्तर्गत रसाभास, भाव, भावाभास, भावप्रशम, भावोदय, भावसन्धि और भाव सबलता का ग्रहण होता है।

रस के चार अवयव : अलङ्कार-शास्त्रियो ने रस के (1) स्थायीभाव, (2) विभाव, (3) अनुभाव और (4) व्यभिचारी भाव—चार अवयव बताये है।[1]

स्थायी भाव : रसानुभूति का आन्तरिक और मुख्य कारण स्थायीभाव है। स्थायी भाव मन के भीतर स्थिर रूप से रहने वाला प्रसुप्त सस्कार है जो अनुकूल आलम्बन तथा उद्दीपन रूप उद्बोधक सामग्री को प्राप्त कर अभिव्यक्त हो उठता है और हृदय मे एक अपूर्व आनन्द का संचार कर देता है। इस स्थायी भाव की अभिव्यक्ति ही रसास्वादजनक या रस्यमान होने से रस शब्द से बोध्य होती है।[2] भरत ने इनकी संख्या आठ बतायी थी किन्तु बाद मे संख्या बढकर नौ-दस हो गई।[3]

विभाव : रसानुभूति के कारणो को 'विभाव' कहते हैं। वे दो प्रकार के होते हैं— **(1) आलम्बन विभाव, (2) उद्दीपन विभाव।**[4] जिसको आलम्बन करके रस की उत्पत्ति होती है उसको 'आलम्बन विभाव' कहते हैं।जैसे सीता को देखकर राम के मन मे और राम को देखकर सीता के मन मे रति आदि की

---

1 द्रष्टव्य—साहित्यदर्पण, तृतीय परिच्छेद

2 द्रष्टव्य—साहित्यदर्पण, 3/144

3 द्रष्टव्य—साहित्यदर्पण, 3/175

4 द्रष्टव्य—साहित्यदर्पण, तृतीय परिच्छेद

उत्पत्ति होती है और उन दोनो को देखकर सामाजिक के भीतर रस की अभिव्यक्ति होती है। इसलिए सीता, रामादि श्रृङ्गार रस के आलम्बन विभाव कहलाते है। चॉदनी, उद्यान, एकान्त स्थानादि के द्वारा उस रति का उद्दीपन होता है। इसलिए उनको श्रृङ्गार रस के 'उद्दीपन विभाव' कहा जाता है।[1] प्रत्येक रस के आलम्बन तथा उद्दीपन विभाव अलग-अलग होते हैं।

अनुभाव : जो वाचिक या आङ्गिक अभिनय के द्वारा रत्यादि स्थायी भाव की आन्तर अभिव्यक्ति रूप अर्थ का बाह्य रूप मे अनुभव कराता है उसको 'अनुभाव' कहते है।[2]

संचारी या व्यभिचारी भाव : उद्बुध हुए स्थायी भावो की पुष्टि तथा उपचय मे जो सहकारी होते है उनको व्यभिचारी भाव कहते है।[3] इन व्यभिचारी भावो की सख्या 33 मानी गई है। ये 33 व्यभिचारी भाव सब रसों मे मिलकर होते है। अलग-अलग रसों के हिसाब से उनका वर्गीकरण नहीं किया गया है।[4]

विभावादि के संयोग से रस निष्पत्ति : उपर्युक्त विभाव, अनुभाव तथा संचारी भाव के सयोग से स्थायी भाव रस दशा को प्राप्त होता है।[5]

---

1 साहित्यदर्पण—तृतीय परिच्छेद, 3-131।

2 साहित्यदर्पण—तृतीय परिच्छेद, 3-132।

3 साहित्यदर्पण—तृतीय परिच्छेद, 3-140।

4 नाट्यशास्त्र—7-18, 19, 20, 21

5 साहित्यदर्पण—तृतीय परिच्छेद, 3-1

कवि सुबन्धु और रसादि : सुबन्धु का काव्यात्मक आदर्श : सुबन्धु अलङ्कारवादी कवि थे। निश्चय ही भावपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष की ओर उनका आकर्षण अतिशययुक्त था। वासवदत्ता के प्रारम्भ मे ही अपनी रचना की श्लेषालकृति का गर्व के साथ उन्होने उल्लेख किया है।[1] वही एकत्र उन्होने अपने काव्यात्मक आदर्श को भी प्रकारान्तर से स्पष्ट कर दिया है।[2]

जिस समय सुबन्धु ने वासवदत्ता की रचना की उस समय कवियो मे रस और वस्तु की बजाय कला-पक्ष को ही उभारने का आग्रह स्पर्धा की कोटि तक पहुँच गया था।[3] ऐसी स्थिति मे कवि की व्यक्तिगत रुचि और युग प्रवाह को देखते हुए सुबन्धु से किसी रसपेशल रचना की अपेक्षा करना असमीचीन है। उनकी अपनी लक्ष्य साधना (प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्धविन्यास) के मार्ग में यदि अनायास यत्र कुत्रचित् रसादि की संवलना या निष्पत्ति हो गई है तो अलग बात है नही तो उन्होने इसके लिए कोई तत्परता नही दिखाई है। फिर भी वासवदत्ता, जैसी कि साधारणतया लोगों की धारणा है, चित्रकाव्य नहीं है। प्रायः नारिकेलिपाक[4] प्रकार की वासवदत्ता में रसोदय अन्तर्गूढ़ है।

वासवदत्ता का अङ्गी रस : श्रृङ्गार : वासवदत्ता में अङ्गीरस श्रृङ्गार है। श्रृङ्गार के संयोग तथा वियोग—दोनो ही पक्षो का कवि ने पर्याप्त विस्तार

---

1 द्रष्टव्य—वास0 चौ0 स0, श्लोक स0 13

2 वास0 श्रीरङ्गम स0, पृ0 स0 303

3 द्रष्टव्य—वास0 श्रीरङ्गम स0, पृ0 स0 15-16

4 विश्वनाथ—भूमिकाभाग

किया है। वियोग मे भी पूर्वराग विशेषतया द्रष्टव्य है। वीर, अद्‌भुत तथा कुछ अन्य रसो की भी कदाचित् शास्त्रस्थितिसपादन[1] अङ्ग रूप में अभिव्यक्ति हुई है।

रति : स्वरूप और भेद : प्रिय वस्तु के प्रति हृदय की उत्कट उन्मुखता को 'रति' कहते है।[2] यह रति ही शृङ्गार का स्थायीभाव है। 'शृङ्गाररस' का स्वरूप 'शृङ्गार' शब्द की व्युत्पत्ति (शृङ्गं ऋच्छति इति शृङ्गारः) से ही स्पष्ट हो जाता है। 'शृङ्ग' का अभिप्राय है (कामुक-युगल के उत्पीड़क) कामाविर्भाव का और 'शृङ्गार' का अभिप्राय है इसका जो 'रस प्रकार के कामोद्‌भेद से सम्भूत हो। इस रस के आलम्बन प्रायः उत्तम प्रकृति के ही प्रेमीजन हुआ करते हैं। अर्थात् परकीया किंवा अनुराग शून्य वेश्या-नायिका को छोड़कर अन्य प्रकार की नायिकाएं तथा दक्षिणादि प्रकार के नायक ही इसके उपयुक्त 'आलम्बन' विभाव हैं। इसके 'उद्दीपन' विभाव हैं—चन्द्र-चन्द्रिका, चन्दनानुलेपन, भ्रमर-झङ्कार आदि-आदि। इसके अनुभाव प्रेम-पगे भृकुटि-भङ्ग, कटाक्ष आदि-आदि हैं। औग्रध, मरण, आलस्य और जुगुप्सा को छोड़ कर सभी व्यभिचारी भाव इसके परिपोषक हुआ करते है। इसका वर्ण श्याम है और अभिमानिदेव विष्णु भगवान् हैं। यह शृङ्गार रस दो प्रकार का होता है—(1) विप्रलम्भ (2) संयोग।[3]

विप्रलम्भ शृङ्गार : जिसमे नायक-नायिका का परस्परानुराग तो प्रगाढ़ हुआ करता है किन्तु परस्पर मिलन नहीं होने पाता वहाँ विप्रलम्भ शृङ्गार

---

1 साहित्यदर्पण—6/317

2 साहित्यदर्पण—3/176

3 साहित्यदर्पण, 3/186

होता है।[1]

सम्भोग श्रृङ्गार : परस्पर प्रेम-पगे नायक और नायिका के परस्पर दर्शन, परस्पर-स्पर्शन आदि-आदि की अनुभूति का प्रदाता जो रस है वह 'सम्भोग-श्रृङ्गार' है।[2]

वासवदत्ता में वर्णित प्रेम का स्वरूप : भारतीय काव्यो मे मोटे तौर पर चार प्रकार के प्रेम का चित्रण प्रेम कथाओं मे मिलता है। एक प्रकार का प्रेम राम और सीता का है जो स्वाभाविक ढङ्ग से विवाहोपरान्त प्रारम्भ होता है और जीवन की सभी सुख दुःखात्मक परिस्थितियो में निखरता चला गया है। यह सर्वथा उदात्त प्रेम है। इसमे त्याग भाव भी है और सामाजिक दायित्व बोध भी।

दूसरे प्रकार का प्रेम दुष्यन्त-शकुन्तला का है। यह नायक नायिका मे आकस्मिक मिलन से प्रारम्भ होकर क्रमशः प्रगाढ़ होकर गान्धर्व-विवाह के रूप मे परिणत हुआ है। इसका आधार शुद्ध यौनाकर्षण है।

तीसरे प्रकार का प्रेम राजमहलो में अन्त पुर की रूप गुणवती दासियो तथा रानियो की सखियो के बीच चित्रित मिलता है। यह राजाओं के विलासी जीवन का ही एक अग है। मालविकाग्निमित्र, रत्नावली प्रभृति मे वर्णित प्रेम इसी कोटि का है। चतुर्थ प्रकार का प्रेम वह है जो नायक-नायिका मे परस्पर गुण, श्रवण, चित्र दर्शन, साक्षात् या स्वप्न में दर्शन से प्रारम्भ होता है। उषा-अनिरुद्ध का प्रेम इसी प्रकार का है।

---

1 साहित्यदर्पण, 3/187

2 साहित्यदर्पण, 3/210

विश्वनाथ कविराज ने पूर्वराग के अन्तर्गत नीली राग, कुसुम्भ-राग और मञ्जिष्ठा-राग—तीन प्रकार के प्रेम का निरूपण किया है।[1]

नीलीराग : जो अनुराग बाहरी दिखावे मे नही दिखाई पडता किन्तु हृदय मे कूट-कूट कर भरा रहता है वह 'नीलीराग' कहा जाया करता हे।[2] राम और सीता का अनुराग 'नीलीराग' का एक सुन्दर निदर्शन है।

कुसुम्भ राग : जो अनुराग बाहरी चमक-दमक तो रखता हो किन्तु हृदय से हट जाय वह 'कुसुम्भ राग' माना जाया करता है।[3]

मञ्जिष्ठा राग : यह उस अनुराग को कहते हैं जो हृदय मे भी हो और बाहरी दिखावे मे भी आये।[4]

कहना न होगा कि वासवदत्ता मे वर्णित प्रेम उपर्युक्त चार प्रकारो मे से चौथे प्रकार का है। एक कन्या को स्वप्न मे देखकर नायक कन्दर्पकेतु मे अनुरक्ति उत्पन्न होती है। बाद मे शुक द्वारा वासवदत्ता के रूप गुण की चर्चा सुनकर उसके अनुराग में 'स्वप्न-दर्शन के साथ 'गुण श्रवण' भी हेतु हो जाता है। नीली आदि त्रिप्रकारक प्रेम मे वासवदत्ता और कन्दर्पकेतु का प्रेम मंजिष्ठा प्रकार का है क्योकि यह अन्त तक शोभित रहता है।

राजकुमार कन्दर्पकेतु धीरललित नायक है। वह रूप-यौवन सम्पन्न है

---

1. साहित्यदर्पण—3/195
2. साहित्यदर्पण—3/196
3. साहित्यदर्पण—3/196
4. साहित्यदर्पण—3/197

और रतिप्रिय भी।[1] स्वप्न मे एक अतिशय रूपवती कन्या को देखकर उसे पाने के लिए उसका विकल हो जाना अस्वाभाविक नही है। वासवदत्ता के प्रति उसका आकर्षण निश्चय ही उच्च कोटि का है। मकरन्द के समझाने पर भी और मार्ग मे बाधाओं के आने पर भी वह प्रेम-पथ से विचलित नहीं होता है। उसके प्रेम की पराकाष्ठा तब देखने को मिलती है जब वह वासवदत्ता के वियोग मे आत्मघात तक के लिए तैयार हो जाता है। लोक और वेद दोनो की दृष्टि मे यह बात भले ही निन्दनीय हो और आत्मघात के पूर्व विभिन्न उदाहरणो से अपने कृत्य को उचित ठहराने का उसका प्रयत्न भले ही कुतर्क हो लेकिन प्रेम के पथिको के लिए तो यह नितान्त यथार्थ है।

राजकुमारी वासवदत्ता का प्रेम भी इसी कोटि का है। राजकुमार की तरह ही स्वप्न मे कन्दर्पकेतु को देखकर जगने पर उसके लिए विकल हो उठती है। उसकी जो विरह विकलता वर्णित हुई है उससे उसके अनुराग की उत्कटता प्रकट है। उसके प्रेम की पराकाष्ठा भी तब देखने को मिलती है जब वह अपना यह निश्चय प्रकट कर देती है कि यदि तमालिका यथासमय राजकुमार कन्दर्पकेतु को लेकर नही आयी तो वह प्राण त्याग देगी किन्तु किसी दूसरे के साथ विवाह नही करेगी।

वासवदत्ता में अभिव्यक्त शृङ्गार का प्रकार : वासवदत्ता मे शृङ्गार का केवल विप्रलम्भ पक्ष ही आया है। विप्रलम्भ चार प्रकार का माना गया है।[2]

---

1 द्रष्टव्य—वास० चौ० स०, पृ 26

2 साहित्यदर्पण, 3/187

1. पूर्वराग-विप्रलम्भ **3. प्रवास विप्रलम्भ**

2. मान-विप्रलम्भ **4. करुण विप्रलम्भ**

एक और प्रकार का **शाप हेतुक विप्रलम्भ** शास्त्रो मे मिलता है।[1]

वासवदत्ता मे व्यक्त विप्रलम्भ पूर्वराग और शाप हेतुक है। पूर्वराग हेतुक इसलिए कि कन्दर्प केतु और वासवदत्ता दोनो मे स्वप्न दर्शन से परस्पर आकुल अनुराग वर्णित है। अतः उभयनिष्ठ होने के कारण मिलन के अभाव मे पक्षमाण पूर्वराग है। शापहेतुक इसलिए कि दूसरी बार वर्मित विप्रलम्भ वासवदत्ता के शापग्रस्त हो जाने के कारण चित्रित हुआ है।

पूर्वराग का स्वरूप : पूर्वराग का अभिप्राय है रूप-सौन्दर्य आदि के श्रवण अथवा दर्शन से परस्पर अनुरक्त नायक-नायिका की उस दशा का जो कि उनके समागम के पहले की दशा हुआ करती है।[2]

काम दशाएँ : पूर्वराग की अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, संप्रलाप, उन्माद, व्याधि जडता और मृति ये दस काम दशाएँ बतायी गई हैं।[3] विश्वनाथ ने बारह काम दशाओं का उल्लेख किया है।

भारतीय प्रेमाख्यानो मे सामान्यतया पहले नायिका का अनुराग वर्णित होता है। शास्त्रीय निर्देश भी ऐसा है।[4] किन्तु कठोरतापूर्वक इसका व्यवहार

---

1 काव्यप्रकाशस, चतुर्थ उल्लास

2 साहित्यदर्पण, 3/188

3 साहित्यदर्पण, 3/190

4 साहित्यदर्पण, 3/195

नही मिलता। शास्त्र मे भी इस सम्बन्ध मे कठोरता नही रखी गई है।[1] यद्यपि यह ठीक है कि नायिका के अनुरक्त होने के पहले ही, उस पर, नायक अनुरक्त हो जाय, किन्तु यदि नायिका का अनुराग पहले हो जाय तो ऐसे 'पूर्वराग' का अभिव्यञ्जन बहुत ही रमणीय और हृदयस्पर्शी हुआ करता है।

वासवदत्ता में पूर्वराग : वासवदत्ता मे पहले नायक कन्दर्पकेतु का पूर्वराग वर्णित है फिर नायिका वासवदत्ता का। शास्त्रीय समर्थन को देखते हुए यह क्रम अनुचित नही कहा जा सकता।

(क) कन्दर्पकेतु का पूर्वराग हेतुक विप्रलम्भ : एक अप्रतिम रूपवती कन्या वासवदत्ता को स्वप्न मे देखकर उसके प्रति अनुरक्ति के कारण आकुल कन्दर्पकेतु की नायिका-कन्या-वासवदत्ता—से मिलने से पूर्व की उक्त लक्षण लक्षित विरह दशा पूर्वराग है। यह पूर्वराग पहले केवल स्वप्न मे दर्शन से उत्थित है। स्वप्न दर्शन वर्णन से '**चक्षुः प्रीति**' और तन मूलक '**मनः सङ्ग**' प्रकट है।

स्वप्न से जागरण के उपरान्त नायक कन्दर्पकेतु स्वप्न दृष्टा कन्या को न पाकर विकल हो जाता है और—'**निर्लक्ष ही आकाश में आलिंगनार्थ बाहें उठाए**'—

(1) '**एह्येहि प्रियतमे! मा गच्छ, मा गच्छे'ति दिक्षु विदिक्षु च विलिखितामिव, उत्कीर्णामिव चक्षुषि, निखातामिव हृदये प्रियतमामाजुहाव।** यहाँ स्वप्नदृष्टा कन्या

---

1 साहित्यदर्पण, 3/195 (वृत्ति)

आलम्बन विभाव है, स्वप्न शब्द द्वारा अवगमित विजनस्थानादि देश तथा प्रकरण से ज्ञात भोरही रात और स्वप्नदृष्ट सौन्दर्यादि उद्दीपन विभाव हैं, कन्दर्पकेतु के भुजाक्षेपादि अनुभाव है और विंषाद, प्रलापादि व्यभिचारी भाव है। अतः उक्त—विभावो, अनुभावो और संचारियो से संयुक्त कन्दर्पकेतु गत पूर्वराग हेतुक विप्रलम्भ शृङ्गार रस व्यक्त हो रहा है। यहॉ पूर्वराग की प्रलाप नामक कामदशा चित्रित हुई है।[1]

(2) अनन्तर वहाँ शय्या पर ही लेटे हुए, समस्त परिजनो का वहॉ आना निषिद्धकर तथा किवाड बन्द करके पानादि सम्पूर्ण वस्तुओं का परित्याग कर किसी प्रकार राजकुमार ने दिन व्यतीत किया। इसी प्रकार स्वप्न मे (कन्या के) समागम की इच्छा से बडे कष्ट से रात भी व्यतीत की।[2]

यहाँ भी पूर्वोक्त विभावो, कन्दर्पकेतु के दरवाजा बन्द करने, शैयातल पर निलीन होने, परिजनादि को आने से मना करने, प्रभृति अनुभावो तथा विषाद और जड़तादि सचारीभावो से विप्रलम्भ रस की अभिव्यक्ति हो रही है। यहाँ चिन्ता, जडता और अभिलाषादि दशाएँ व्यक्त हुई हैं

कालान्तर में घर-बार छोडकर स्वप्न दृष्ट कन्या की तलाश मे भटकते हुए कन्दर्पकेतु ने विन्ध्य वन मे जब तोता-मैना के संवाद मे राजकुमारी वासवदत्ता के रूप-गुण की चर्चा सुनी तब उसके अनुराग को एक आधार मिल जाता है। अब तक वह बिल्कुल नहीं जानता था कि स्वप्नदृष्ट कन्या कौन है? कहॉ रहती है? क्या नाम है? और उसके प्रति उसका क्या भाव

---

1 वासवदत्ता, चौ० स० पृ० स० 51

2 वासवदत्ता, चौ० स० पृ० स० 51-52

होगा? उक्त शुक-सारिका सवाद मे जब शुक द्वारा सुनाई गई 'बृहत्कथा' मे उसे सारी जानकारी मिल जाती है तब उसके लिए मानो खुशियो का खजाना ही खुल गया। वासवदत्ता का अपने प्रति अनुरागातिशय जानकर उसके प्रति उसका अनुराग, उसको पाने की आकुलता कुछ और प्रगाढ़ हो जाती है। और जब तमालिका द्वारा लायी गई वासवदत्ता की पत्रिका खोलकर मकरन्द बाचता है तो वह हर्ष विभोर ही हो उठता है।

(3) तमालिका द्वारा लाई गई वासवदत्ता की पत्रिका को मकरन्द के मुख से सुनकर, कन्दर्पकेतु ने अपने को अमृत-समुद्र मे डूबा हुआ-सा तथा सब प्रकार के आनन्दो का अनुभव करता हुआ-सा समझा तथा उसने धीरे-धीरे उठकर दोनो भुजाएँ फैलाकर तमालिका का आलिङ्गन किया और उसी के साथ बैठकर 'वह क्या करती है, क्या कहती है, कैसे बैठती है' इत्यादि वासवदत्ता सम्बन्धी बाते पूछता रहा।[1]

यहॉ स्वप्न दृष्टा, श्रुतगुणा कन्या वासवदत्ता आलम्बन है। प्रकरण से अवगत विजनस्थान, रात्रि, चन्द्र तारकादि, देश काल तथा वासवदत्ता की पत्रिकादि उद्दीपन विभाव है। कन्दर्पकेतु की चेष्टाऍ अनुभाव है। हर्ष, उन्माद और जिज्ञासादि संचारी भाव है। इनसे पूर्वराग विप्रलम्भ की अनुभूति सहृदय को सहज ही हो रही है।

कन्दर्पकेतु के पूर्वराग हेतुक विप्रलम्भ की पराकाष्ठा तब होती है जब तमालिका के साथ वासवदत्ता के अन्तःपुर में वह उसके समक्ष पहुँच जाता

---

1 वासवदत्ता, चौ० स० पृ० स० 149

है। चिर विरह के बाद मिले प्रेमियो का चित्र दर्शनीय है।

(4) अनन्तर प्रीति विस्फारित नेत्रो से उसकी रूप माधुरी को पीते हुए कन्दर्पकेतु की चेतना को मूर्छा ने छीन लिया।[1]

सहसा अधिक हर्ष होने पर भी मूर्छा आ जाती है। अपने प्रिय वस्तु को इतने पास आकर वहअपनी खुशी सम्भाल नही सका। यहाँ वासवदत्ता आलम्बन है, प्रकरण से अवगत रात्रि, अन्तःपुर का विलासमय वातावरण तथा वासवदत्ता का सौन्दर्यादि उद्दीपन है। कन्दर्पकेतु की चेष्टाएँ, प्रीति विस्फारित नेत्रादि अनुभाव है। जडता तथा मूर्छादि संचारी भाव हैं। इनसे कन्दर्पकेतु गत वासवदत्ता विषयक पूर्वराग विप्रलम्भ की अभिव्यक्ति सुस्फुट है।

(ख) वासवदत्ता का पूर्वराग विप्रलम्भ : राजकुमार कन्दर्पकेतु की तरह ही राजकुमारी वासवदत्ता ने भी राजकुमार को स्वप्न में देखा था। अष्टादशवर्षदेशीया कन्या वह मुग्धा नायिका है। बहुत दिनो तक तो वह परिणयपराड्मुखी ही रही किन्तु आखिरकार वसन्तकाल ने उसके अन्दर भी प्रिय समागम की कामना जगा ही दी। विदितसुताभिप्राय राजा शृङ्गारशेखर ने एक स्वयंवर का आयोजन किया। किन्तु वहाँ उपस्थित राजकुमारो में से कोई भी वासवदत्ता को नही जॅचा। वह वापस लौट आयी। उसी रात उसने स्वप्न मे त्रिभुवनविलोभनीय आकृति वाले एक राजकुमार को देखा। स्वप्न मे ही उसने उसका नामादिक भी सुना और नींद टूटने पर काफी देर तक

---

1 वासवदत्ता, चौ0 स0 पृ0 स0 210

उसी के बारे मे सोचती रही। फिर अनुरागातिशय के कारण विकल हो गयी। उसकी विरह विकलता का एक लम्बा विवरण वासवदत्ता मे चित्रित है।

(1) 'अनन्तरम्' 'अहो प्रजापते रूप निर्माण कौशलम्' से प्रारम्भ कर विलोकयन्ती व्यतिष्ठत[1] पर्यन्त नाना काम दशाओं की अभिव्यक्ति मिलती है। जैसे—(क) अहो प्रजापते रूपनिर्माणकौशलम्। मन्यै, स्वस्यैव नैपुण्यस्यैकत्र दर्शनोत्सुकमनसा वेधसा जगत्त्रयसमवायिरूपपरमाणूनादाय विरचितोऽयमिति·, अन्यथा कथमिवास्य कान्तिविशेष ईदृशो भवति। से प्रारम्भ कर बहुविधम् चिन्तयन्ती तक **प्रलाप**, (ख) विरहमुर्मुरमध्यमधिरुढेव, मदनदावाग्नि-शिखाकवलितेव, वसन्तकालाग्निगृहीतेव, दक्षिणमारुतरुद्रपावकग्रस्तेव इत्यादि में **संज्वर**, (ग) हृदये विलिखितमिव, उत्कीर्णमिव, प्रत्युप्तमिव, कीलितमिव, निगलितमिव इत्यादि मे **संकल्प** (घ) सख्यनङ्गलेखे! वितर हृदये मे पाणिपद्मम्, दुःसहो विरहसन्तापः। मुग्धे मदनमञ्जरि! सिञ्चाङ्गानि चन्दनवारिणा इत्यादि में **लज्जा त्याग**, (ड) भगवति निद्रे! अनुगृहाण माम् मे **जगार** (च) मलयानिल सुरतमहोत्सवदीक्षागुरो, वह यथेष्टम्, अपगता मम प्राणाः **रति और मरण**, (छ) उन्मत्तेव, अन्धेव, बधिरेव, मूकेव इत्यादि में **उन्माद** (ज) सखीजनेन समं संमुमूर्च्छ मे '**मूर्छा**' आदि काम दशाएं व्यक्त हो रही हैं।

यहाँ कुछ दशाएं स्वशब्दोपात है, अन्य अनुभाव सुखेन निबद्ध है। कन्दर्पकेतु आलम्बन से विभावित, प्रकरण से ज्ञात रात्रि, विजनस्थान, वसन्तकालादि उद्दीपन विभावो से उद्दीपित, वासवदत्ता की चेष्टाओं से अनुभावित और उन्माद विषादादि से व्यभिचारित वासवदत्तागत 'पूर्वराग

---

1 द्रष्टव्य—वासवदत्ता चौ० स०, पृ० स० 137-147

विप्रलम्भ' सहृदय संवेद्य रूप मे अभिव्यक्त हुआ है।

वासवदत्ता द्वारा कन्दर्पकेतु के पास भेजी गई पत्रिका की आर्या[1] पूर्वराग विप्रलम्भ रस की अभिव्यक्ति की दृष्टि से एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

(2) कामिनी का हृदय (अपने प्रेमी के अनुराग व्यञ्जक) भावो को प्रत्यक्ष देखकर भी स्थिर नही होता, फिर जिसने स्वप्न मे ही उस भाव का अनुभव किया है वह युवती उस पर कैसे विश्वास करे।

यहाँ इस आर्या मे नाना भाव प्रतीत हो रहे हैं। जैसे (क) 'स्वप्नानुभूतभावा' से **स्मरण** व्यक्त हो रहा है, (ख) स्वप्नानुभूतभावा युवती में विश्वास नही कर पा रही हूँ, फिर भी मेरा विश्वास है, और उसे तुम्हे दृढ़ करना चाहिए यह प्रार्थना प्रतीत होती है। अतः यहाँ **चपलता** है, (ग) तुम क्यो नही करते हो यह **विषाद** भी व्यक्त हो रहा है, (घ) प्रत्यय दृढ़ीकरण हेतु के परिज्ञान के अभाव मे यहाँ **भय** प्रकट है, (ङ) इस पर पत्रिका क्यों भेजी है—यह **शङ्का** है, (च) कन्दर्पकेतु या वासवदत्ता पद का प्रयोग न होने से—युष्मद् या अस्मद् का ग्रहण न होने से **अवहित्था** है, (छ) 'विश्वास दृढ़ नही कर रहा है', यहाँ विश्वास को दृढ करने के लिए उसने कुछ नही किया है अतः उसका मनोभाव जाने बिना कैसे उसकी प्राप्ति होगी ऐसी चिन्ता भी व्यक्त हो रही है, (ज) युवती 'विश्वास नही कर पाती है' इस कथन से यद्यपि तुमने विश्वास नही जमाया है अतः तुम्हारा मनोभाव ज्ञात नही है किन्तु मेरा हृदय तुम्हारे प्रति साभिलाष है रस प्रतीति के बावजूद इस अर्थ का साक्षात्

---

1 वास्वदत्ता, चौ0 स0 पृ0 148

ग्रहण न होने से **व्रीडा** व्यक्त होती है, (झ) 'युवति·' पद से सारे अनर्थ की जड़ यह यौवन ही है इस प्रतीति से यौवन के प्रति **असूया**, और (ट) 'युवती विश्वास नही कर पाती है' इस वाक्याश· से मेरा हृदय ही तुम्हारे प्रति साभिलाष है, तुम्हारा मनोभाव कैसा है ऐसी जिज्ञासा की प्रतीति से **औत्सुक्य** प्रकट है।

यहॉ कन्दर्पकेतु से विभावित, स्वप्न पदावगमित रात्रि, चन्द्रोदय, विजन स्थानादि तथा प्रकरण से ज्ञात बसन्त कालादि से उद्दीप्त, पत्र प्रेषण तथा उससे उन्नेय निःश्वासादि से अनुभावित विषादादि नाना संचारियो से व्यभिचारित वासवदत्तागत पूर्वराग विप्रलम्भ ध्वनित हो रहा है।[1] यह रसध्वनि का उत्कृष्ट उदाहरण है।

शाप हेतुक विप्रलम्भ : पूर्वराग के अतिरिक्त वासवदत्ता में शाप हेतुक विप्रलम्भ का भी चित्रण हुआ है। वासवदत्ता के साथ कुसुमपुर से भाग निकलने के बाद विन्ध्याटवी मे पहुँचकर राजकुमार कन्दर्पकेतु राजकुमारी वासवदत्ता के साथ ही थकान के कारण एक लतागृह मे सो जाता है। सोकर जब राजकुमार उठा तब लतागृह मे राजकुमारी नही मिली और फिर इस प्रकार मिल कर खो गई वासवदत्ता के विरह में वह विकल हो जाता है। वासवदत्ता मे शापहेतुक विप्रलम्भ का प्रारम्भ यही से होता है। यह विप्रलम्भ शाप हेतुक इसलिए है कि कन्दर्पकेतु का वासवदत्ता से यह विरह एक मुनि के शाप के कारण हुआ था।

---

1 वासवदत्ता, श्रीरगम सस्करण, पृ0 स0 206 टीका भाग

जागे हुए कन्दर्पकेतु ने प्रिया से रहित लतागृह को देखकर और उठकर इधर-उधर देखते हुए क्षण भर वृक्षो पर, क्षण भर लताओं मे, क्षण भर नीचे कुँओं मे, क्षण भर ऊपर वृक्ष-शिखरो पर, क्षण भर सूखे पत्तो के ढेर पर क्षण भर आकाश मे, क्षण भर दिशाओं मे और उपदिशाओं मे भटकता हुआ निरन्तर विरहाग्नि से जलते हुए हृदय वाला रोने लगा। हा प्रिये वासवदत्ता! मुझे दर्शन दो। हँसी मत करो। क्या तुम कही छिप गई हो? तुम्हारे लिए मैंने जो दुःख उठाए हुए हैं उनके लिए तुम्ही साक्षी हो। हा प्यारे मित्र मकरन्द! आकर दुर्भाग्य की करतूत देखो। पूर्व-जन्म मे मैंने कौन से दुष्कर्म किए है? भाग्य-परिणाम कैसा आश्चर्यजनक है। इत्यादि विलाप करते हुए मरने की इच्छा से जङ्गल के दॉये से निकलकर समुद्र को देखा।[2]

इस चित्रण मे प्रलाप तथा मरण नामक काम दशाएं स्पष्ट रूप से प्रतीत हो रही हैं। यहाँ वियुक्त वासवदत्ता आलम्बन विभाव है, प्रकरण से अवगत से भरे वन प्रान्तादि तथा वासवदत्ता की स्मृति उद्दीपन है। कन्दर्पकेतु की विलापादि चेष्टाएं अनुभाव है और उन्मादादि संचारी भाव हैं। वासवदत्ता मे शापहेतुक विप्रलम्भ वासवदत्ता की पुनः प्राप्ति तक चलता है। इसके अन्तर्गत वर्षा और शरद् ऋतुए भी वर्णित हुई है किन्तु अरुचि, अन्यत्राभिनिवेष अथवा अनवधानतया कवि विप्रलम्भ की इनसे उद्दीपित रूप मे चित्रित नही कर सका है।

अङ्ग रूप मे अन्य रसो की अभिव्यक्ति भी वासवदत्ता मे कही-कही

---

1 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 227-228

हुई है।

अन्य रस : (1) वीर रस[1] : वासवदत्ता की कथा मे वीररसानुकूल कोई प्रसङ्ग नही आया है। प्रारम्भ मे ही कन्दर्पकेतु के वर्णन मे उसका यत्किचित् चित्रण हुआ है। **दान, धर्म, युद्ध और दया से सम्बन्धित वीर चार प्रकार** के माने गये है।[2] **वासवदत्ता में केवल युद्धवीर** का चित्रण हुआ है। नायक कन्दर्पकेतु के वर्णन मे वीर-रस की अभिव्यक्ति का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

'यस्य च समरभुवि भुजदण्डेन कोदण्डं, कोदण्डेन शराः, शरैररिशिरः, अरिशिरसा भूमण्डलं, भूमण्डलेनानुभूतपूर्वो नायकः, नायकेन कीर्त्तिः, कीर्त्या च सप्त सागरा·, सागरैः कृतयुगादिराजचरितस्मरणम्, स्मरणेन स्थैर्यम्, स्थैर्येण प्रतिक्षणमाश्चर्यमासादितम्।'[3]

यस्य च प्रतापानलदग्धदयितानां रिपुसुन्दरीणां करतलाऽनभीतैरिव मुक्ताहारैः पयोधरपरिसरो मुक्तः।[4]

यस्य च निशितनाराचजर्ज्जरितमत्तमातङ्गकुम्भस्थलविगलितनिस्तल-मुक्ताफलनिकरदन्तुरितपरिसरे, पतत्पत्ररथे रक्तवारिसमुडुयमान द्विरदपदकच्छपे विलसदुत्पलपुण्डरीके, वाहिनीशतसमाकुले, नृत्यत्कबन्धविधुरे, सुरसुन्दरीसमागमोत्सुकभराहङ्कारभाषणरव भीषणे, सागर इव समरशि-रसि

---

1 नाट्यशास्त्र, 6/51 तथा साहित्यदर्पण, 3/232-34

2 साहित्यदर्पण, 2/234

3 वासवदत्ता, चौ० स०- पृ० स० 28

4 वासवदत्ता, चौ० स०- पृ० 29

भिन्नपदातिकरितुरगरुधिरार्द्र जयलक्ष्मीपादालक्तकरागरञ्जित इव खड्गो रराज।[1]

यहाँ शत्रु आदि आलम्बन है। प्रकरण से अवगमित शत्रुओं की चेष्टाओं से उद्दीपन विभाव ज्ञात होता है। अमर्ष आदि संचारी भाव है। इनसे कन्दर्पकेतु विषयक (युद्धवीर) स्थायीभाव उत्साह वीर रस दशा को प्राप्त हो रहा है।

(2) भयानक रस[2] **:** इस रस की अभिव्यक्ति विन्ध्याटवी वर्णन के अन्तर्गत 'सिह' के चित्रण मे हुई है।

'देखो यह भयङ्कर सिह गजपति पर आक्रमण कर रहा है। इसके शरीर का अग्रभाग उठा हुआ तथा पिछला भाग झुका हुआ है। पूँछ निश्चल और खड़ी हुई है, पूँछ का अगला भाग कुछ मुड़ा हुआ और पीठ पर रक्खा हुआ है। इसका मुख दाँतों की नोको से भयङ्कर और विशाल है। इसने अपने अयाल उठाए और कान खडे किए हुए हैं।[3]

यहाँ सिह आलम्बन है। प्रकरण से अवगत निर्जन वन प्रान्त उद्दीपन है। वर्णन से व्यंजित स्तम्भ रोमांच आदि संचारी हैं। इनसे मकरन्द विषयक भय स्थायीभाव—भयानक रस की अभिव्यक्ति हो रही है।

समुद्र के वर्णन मे भी भयानक की किचित व्यञ्जना हुई है किन्तु यहाँ भय मे विस्मय मिला हुआ है और समुद्र को देखकर मरणोच्छुक कन्दर्पकेतु ~~मे भय के बजाय हर्ष ही अधिक प्रकट है।~~

1 वासवदत्ता, चौ0 स0- पृ0 29-31

2 द्रष्टव्य—साहित्यदर्पण, 3/235-238

3 द्रष्टव्य—वासवदत्ता चौ0 स0, पृ0 स0 79

(3) वीभत्स रस[1] : वासवदत्ता मे जुगुप्सा भाव की व्यञ्जना द्वारा वीभत्स की निष्पत्ति केवल एक स्थान पर श्मशान वर्णन मे हुई है। प्रायः सम्यक् वर्णन से ही रस प्रतीति हो जाती है।

नायिका वासावदत्ता को लेकर नायक कन्दर्पकेतु रातों रात भाग निकलता है। अनन्तर चलते-चलते कोई दो कोस जाकर वह एक श्मशान मे पहुँचता है। वहाँ (श्मशान मे) कही मनुष्य के मांस को खाने की इच्छा से कङ्क-वकविशेष एकत्रित हो निर्भयता के साथ घूम रहे थे। कहीं अधजली चिता मे सिमसिमाती हुई वसा की गन्ध से भीषण मुर्दो को खाने के लिए लपलपाते हुए पिशाचों एवं भीषण वेतालो-भूताविष्ट शवो-के शब्द से वह बड़ा डरावना हो रहा था। कही पर राक्षस हाथ मे शूल-शिखर पर चढ़े हुए चोर के नाक तथा कानो से बहते हुए रुधिर के गिरने से टं टं शब्दयुक्त खप्पर लिए नाच रहे थे। कही मुर्दो पर उड़ती हुई मक्खियो से परिपूर्ण स्थान से वह वीभत्स-घिनौना हो रहा था। कहीं अग्नि मे जलती हुई तथा भीषणता से चट-चट शब्द करती हुई मनुष्य की खोपड़ी के शब्द से वह भयानक हो रहा था। कही सियारियो के खुले हुए मुख में जलती हुई अग्नि-शिखाओं से व्याप्त हो रहा था। कहीं अंतड़ियो मे पिरोए हुए कपालो से बनी हुई कुच की मालाओं से भीषण डाकिनियो का समूह मुर्दों का विभाग करने के लिए कोलाहल कर रहा था। कही गीली, रुधिर से सनी हुई-नाड़ियों द्वारा निर्मित विवाह का माङ्गलिक सूत्र बाँधे हुए पिशाचो के जोड़ों द्वारा प्रदक्षिणीकृतचिताग्नि

---

1 द्रष्टव्य—नाट्यशास्त्र, 7/81 तथा साहित्यदर्पण 3/239-41

वाले. .. श्मशान के मार्ग से निकलकर... .राजकुमार विन्ध्याटवी मे पहुॅचा।[1]

यहॉ केवल विभाग-श्मशान के स्वरूप का चित्रण किया गया है। लेकिन वीभत्स की प्रतीति मे कोई बाधा नही आयी है।

(4) रौद्र रस[2] **:** वासवदत्ता में क्रोध स्थायी भाव वाले रौद्र रस की भी एकत्र शबर सेनापतियो के युद्ध के वर्णन मे अभिव्यक्ति हुई है।

राजकुमार के साथ लतागृह मे सोई वासवदत्ता की नीद जब राजकुमार से पहले ही टूटी तब वह कुछ फलमूलादि लाने के लिए वहॉ से निकलकर कुछ दूर तक चली जाती है। वहॉ उसने एक स्कन्धावार देखा। स्कन्धावार शिकार के लिए आये हुए एक किरात सेनापति का था। समाचार पाकर वह वासवदत्ता की ओर दौड़ा। इसी प्रकार एक दूसरा किरात सेनापति भी दूत से समाचार पाकर उसी समय वहॉ आ पहुँचा और वासवदत्ता के लिए दोनो मे भीषण युद्ध ठन गया।

अनन्तर युद्ध क्षेत्र मे हाथी और घोड़े शोभने लगे। बाणो की वर्षा से सूर्य की किरणे ढॅक गई। कट-कट कर कबन्ध नाचने लगे, धूलि उडने लगी, अनन्तर किसी ने सिर काटा तो किसी के कान-नाकादि काट दिए गये। किसी ने शव मे अपनी देह छिपा ली तो कोई अरु भङ्ग के भय से जल मे जा छिपा। कोई धरती पर गिर पडा तो कोई क्षत विक्षत होकर निःशक्त हो गया। इस प्रकार परस्पर लड़ती हुई दोनो सेनाएं विनष्ट हो गई।[3]

---

1 द्रष्टव्य—वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 213-216 (श्मशान वर्णन)

2 द्रष्टव्य—साहित्यदर्पण, 3/227-230

3 द्रष्टव्य—वासवदत्ता, चौ० स० पृ० स० 253-258

'वासवदत्ता' मे इस आँखो देखे युद्ध का वर्णन वासवदत्ता ने कन्दर्पकेतु से शाप मुक्ति के बाद मिलने से किया है। इसमे दोनो किरात सेनापतियो मे वासवदत्ता के लिए परस्पर मात्सर्यवश उत्पन्न क्रोध स्थायीभाव है। परस्पर शत्रु सेनाएं आलम्बन हैं, उनकी चेष्टाए शस्त्रपातादि अनुभाव है और अमर्षादि संचारीभाव है। वर्णन मे अलंकृति अधिक है इसलिए रसानुभूति गौण हो गई है।

(5) अद्‌भुत रस[1] : अन्य अङ्ग रसो की अपेक्षा वासवदत्ता मे अद्‌भुत रस की अभिव्यक्ति कुछ अधिक हुई है। विस्मय अद्‌भुत रस का स्थायीभाव है और यह विस्मय दीनजनो के दर्शन, अभिलषित मनोरथ की प्राप्ति, उपवन एवं देव मन्दिर मे जाने, सभा, विधान, माया, इन्द्रजालादि की सम्भावनादि विभावो से उत्पन्न होता है।

अद्‌भुत रस का उदाहरण द्रष्टव्य है—

(क) चिन्तामणि नाम का एक अभूतपूर्व राजा था। वह दर्शित हिरण्यकशिपुक्षेत्रदानविस्मय नृसिह की तरह, कृतवसुदेवतर्पण कृष्ण की तरह, सौकर्यसमासादितधरणिमण्डल नारायण की तरह, जनितयशोदानन्दसमृद्धि कंसाराति की तरह,....... आनकदुन्दुभि की तरह,.......वरुण की तरह.....अगस्त्य की तरह,......जलनिधि की तरह,........हर की तरह,.....मेरु की तरह,........विद्याधर होकर भी सुमना, धृतराष्ट्र होकर भी गुणप्रिय,........अतरल होकर भी महानायक, इत्यादि था।[2]

---

1 साहित्यदर्पण, 3/242-244

2 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 7-11

यहाँ चिन्तामणि आलम्बन विभाव है। उसके अशेष विशेषण न्यक्कृतसर्वोर्वीपतिचरित· आदि का कथन उद्दीपन विभाव है। उसकी महिमा का वर्णन अनुभाव है और हर्षादि व्यभिचारी भाव है। इनसे अद्‌भुत रस की अभिव्यक्ति हो रही है।

(ख) राजा श्रृङ्गारशेखर के श्लिष्ट वर्णन मे भी विस्मय की अभिव्यक्ति हुई है। राजा श्रृङ्गार शेखर आलम्बन है, उसके गुण उद्दीपन है, उसकी महिमा का वर्णन अनुभाव है, हर्षादि सञ्चारी है और इनसे शुक का राजा विषयक विस्मय अभिव्यक्त हुआ है।

(ग) मन्दरगिरि श्रृङ्गों की तरह प्रशस्त सुधा धवल, बृहत्कथालम्बो की तरह सालभञ्जिकोपशोभित, वृत्तों की तरह समाणवकक्रीडित, करियूथो की तरह समत्तवारण, ...बलिभवनो की तरह सुतलसन्निवेश भवनो से उद्‌भाषित, नाना विशेषणो वाले निवासीजनो से अनुगत,......वेश्याजनों से अधिष्ठित कुसुमपुर नाम का एक नगर है। जहाँ सुरासुरमौलिमालालाक्षितचरणारविन्दा, ... भगवती कात्यायिनी स्वयं बसती हैं।.........जिसके किनारे भगवती भागीरथी बहती हैं। जो. ..... उपवन पादपो से उपशोभित है। अदिति जठर की तरह अनेक देवाकुलध्यासित है। पाताल की तरह महाबलिशोभित और भुजंगाधिष्ठित है। ससुरालय होकर भी पवित्र है, भोगयुक्त होकर भी अनुपद्रव है।[1]

यहाँ भी शुक का विस्मय स्थायीभाव है जो कुसुमपुर नगर (आलम्बन)

---

1 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 85-89

से विभावित उसकी विशेषताओं से उद्दीपित होकर अद्‌भुत की सृष्टि करता है।

(घ) तमालिका से भेट होने पर नायक कन्दर्पकेतु उसके साथ ही कुसुमपुर जाता है। वहाँ पहुँचकर उसने वासवदत्ता का भवन देखा।

राजधानी के एक किनारे बने हुए गगनचुम्बी शिखरो वाले, सुधा धवल........ .कौतुक के निधान... .....वासवदत्ता के भवन को देखा।[1]

.........प्रमदाओं की प्रणय पेशल बाते सुनता हुआ उस भवन में प्रविष्ट हुआ और उसके मन मे आया कि अहो यहाँ का सौन्दर्य कितना अलौकिक है। यहाँ के लोगो की शृङ्गार कुशलता अद्‌भुत है।[2]

यहाँ वासवदत्ता के भवन को प्रमदाओं की प्रणय निर्भर कथा को सुनकर विरह व्याकुल होने पर भी कन्दर्पकेतु क्षण भर चकित रह जाता है। उसका अन्तर्गताश्चर्य 'अहो' इत्यादि वाक्यो मे प्रकट हुआ है। यहाँ कन्दर्पकेतु का विस्मय स्थायीभाव है, वासवदत्ता का भवन आलम्बन तथा उसकी विशेषताए उद्दीपन विभाव है, हर्षादि संचारी भाव हैं और इससे अद्‌भुत की अनुभूति हो रही है।

भाव

जब निर्वेदादि संचारी भाव रस की अपेक्षा अधिक प्रधानता से प्रतीत होते हैं, जब रति देवादि के विषय मे हो, जब स्थायीभाव विभावादि से पुष्टि

---

1 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 192-197

2 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 207

3 साहित्यदर्पण, 3/260-61

के अभाव मे उद्बुद्ध मात्र हुआ हो, भाव है।[3]

वासवदत्ता के प्रारम्भ मे मगलाचरण मे सरस्वती देवी तथा श्रीकृष्णादि के विषय मे कवि की अभिव्यक्ति रति भाव का उदाहरण है।

(क) जिसकी कृपा से सूक्ष्मबुद्धि कविगण निखिल भुवनतल को हाथ मे स्थित बेर के समान अत्यन्त स्पष्ट देखते हैं, वह सरस्वती देवी विजय को प्राप्त होती है।[1]

(ख) 'तुम थक गये हो,पर्वत को छोड़ दो, हम सम्हाले रहेगे' ऐसा गोपो के कहने पर हरि ने अपनी भुजा को कुछ शिथिल कर लिया, तब गोपो की भुजाएँ बोझ से झुक गई और व्यर्थ हो गई, पर्वत के बोझ को सम्हाल न सकी। इस पर हरि हॅसने लगे। इस प्रकार हँसते हुए हरि विजय को प्राप्त हुए।[2]

(ग) जिसकी त्रिवलियां, अत्यन्त कठोर रस्सी के बॉधने की रेखाओं (चिन्हों) का सन्देह उत्पन्न करती हुई सुशोभित हो रही है, वे दामोदर (कृष्ण) आपकी रक्षा करे।[3]

(घ) जिसके सिर पर चन्द्रलेखा इस प्रकार सुशोभित हो रही है, मानो उत्कण्ठित पार्वती ने नेत्ररूपी दीपक पर काजल उतारने की इच्छा से चॉदी की सीप रखी हो, वे शिव सर्वोत्कृष्ट से विराजित हैं।[4]

उपर्युक्त सभी उदाहरणो मे सरस्वती देवी, श्रीकृष्ण तथा शिवजी के

---

1 1, 2, 3, 4, द्रष्टव्य—वासवदत्ता चौ० स०, श्लोक स० 1, 2, 3, 4, पृ० स० 1-3

के अभाव मे उद्बुद्ध मात्र हुआ हो, भाव है।[3]

वासवदत्ता के प्रारम्भ मे मगलाचरण मे सरस्वती देवी तथा श्रीकृष्णादि के विषय मे कवि की अभिव्यक्ति रति भाव का उदाहरण है।

(क) जिसकी कृपा से सूक्ष्मबुद्धि कविगण निखिल भुवनतल को हाथ मे स्थित बेर के समान अत्यन्त स्पष्ट देखते हैं, वह सरस्वती देवी विजय को प्राप्त होती है।[1]

(ख) 'तुम थक गये हो,पर्वत को छोड़ दो, हम सम्हाले रहेगे' ऐसा गोपो के कहने पर हरि ने अपनी भुजा को कुछ शिथिल कर लिया, तब गोपो की भुजाएँ बोझ से झुक गई और व्यर्थ हो गई, पर्वत के बोझ को सम्हाल न सकी। इस पर हरि हँसने लगे। इस प्रकार हँसते हुए हरि विजय को प्राप्त हुए।[2]

(ग) जिसकी त्रिवलियां, अत्यन्त कठोर रस्सी के बाँधने की रेखाओं (चिन्हों) का सन्देह उत्पन्न करती हुई सुशोभित हो रही हैं, वे दामोदर (कृष्ण) आपकी रक्षा करे।[3]

(घ) जिसके सिर पर चन्द्रलेखा इस प्रकार सुशोभित हो रही है, मानो उत्कण्ठित पार्वती ने नेत्ररूपी दीपक पर काजल उतारने की इच्छा से चॉदी की सीप रखी हो, वे शिव सर्वोत्कृष्ट से विराजित हैं।[4]

उपर्युक्त सभी उदाहरणो मे सरस्वती देवी, श्रीकृष्ण तथा शिवजी के

---

1 1, 2, 3, 4, द्रष्टव्य—वासवदत्ता चौ० स०, श्लोक स० 1, 2, 3, 4, पृ० स० 1-3

प्रति व्यक्त कवि का 'रति' भाव है। एकपक्षीय होने के कारण (अनुभयनिष्ठतवात) देवादि विषयक रति रस दशा को प्राप्त न होकर 'भाव' रह गई है।

वासवदत्ता के प्रारम्भ मे राजा विक्रमादित्य के प्रति व्यक्त रति भी लक्षण लक्षित 'भाव' का ही उदाहरण है।

वासवदत्ता मे अन्य रसाभास, भावाभास तथा भावोदयादि की उल्लेखनीय अभिव्यक्ति नही मिलती है। इसका कारण कवि की अन्यमनस्कता प्रतीत होती है। उपर्युक्त विवेचन से वासवदत्ता के विषय में कुछ लोगों की जो धारणा यह है कि यह एक चित्रकाव्य है या अधमकाव्य है दूर हो जानी चाहिए। वस्तुतः वासवदत्ता में रसोदय अन्तर्गूढ़ है। भारवि की तरह सुबन्धु की भारती भी नारिकेलफलसम्मित है।

रस-समीक्षात्मक विवेचन : वासवदत्ता का अङ्गीरस शृङ्गार है। शृङ्गार के संयोग तथा वियोग—दोनों ही पक्षो का कवि ने पर्याप्त विस्तार किया है। वियोग मे भी पूर्वराग विशेषतया द्रष्टव्य है। अन्य समस्त रस शृङ्गार के अङ्ग बनकर प्रयुक्त हुए हैं।

वासवदत्ता मे रसो का उचित परिपाक कराने मे सुबन्धु समर्थ नहीं हो सके हैं। कवि की पाण्डित्य प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति और प्रसङ्ग का विचार किए बिना श्लेष, यमक, विरोधाभास परिसंख्यादि अलङ्कारों की अनावश्यक भरमार—ये दोनों ही बातें रस प्रतीति में बाधक सिद्ध हुई हैं। यों तो वासवदत्ता की कहानी का वातावरण ही रोमानी है और कवि ने नायक-नायिका की प्रणय गाथा के ऊपर ही विभिन्न वर्णनों का धूपछाँही ताना-बाना

फैलाया है; किन्तु इतने पर भी कवि की चित्तवृत्ति न हमे सयोग शृङ्गार मे रमती हुई दिखाई देती है और न ही विप्रलम्भ शृङ्गार मे। शुक-सारिका की सहायता से नायक कन्दर्पकेतु और नायिका वासवदत्ता का मिलन होता है। इस प्रसग मे कवि नायक-नायिका के भावो, अनुभावो तथा व्यभिचारी भावो का चित्रण न करके उन दोनो को मूर्च्छित दिखाकर छुट्टी पा लेना है। वासवदत्ता की एक सखी नायक को एक सक्षिप्त सन्देश देती है और नायक-नायिका का चिर प्रतीक्षित प्रथम-मिलन समाप्त हो जाता है। प्राप्त की हुई वासवादत्ता से बिछुडे हुए कन्दर्पकेतु का विलाप-वर्णन संक्षिप्त होते हुए भी अपेक्षाकृत अच्छा है। अन्य रसो मे से भयानक और वीभत्स रस का समावेश एक दो स्थलो पर मिलता है। सुबन्धु ने वासवदत्ता मे कुछ असङ्गत उक्तियो की योजना करके वर्णन के अभीष्ट प्रभाव मे बाधा पहुँचायी है। कल्पना के स्थान पर कही-कही कवि पाण्डित्य का प्रदर्शन भी करने लगता है। रूप सौन्दर्य और गुण-वर्णन बहुत अधिक हुआ है। शब्द-चातुर्य के कारण विषयान्तरो की बहुलता भी खटकने वाली है। एक के बाद दूसरी कल्पना करने मे कवि भाव और रस की समीचीनता को भुला देता है। 'रुधिराशय', 'मज्जारस' और कच्चे मास का उल्लेख शृङ्गार की तरलता के अनुकूल न होकर वीभत्स रस की सामग्री बनाने मे अधिक उपयुक्त है। प्रणय की सुकुमार भावनाएँ व्यञ्जित करने के लिए इनका प्रयोग कदापि वाञ्छनीय नही कहा जा सकता है।

चतुर्थ अध्याय

अलङ्कार-विवेचन

अलङ्कार-तत्त्व का विवेचन

अलङ्कारशास्त्र आलोचको की सूक्ष्म आलोचना-पद्धति का पर्याप्त सूचक है। यह शास्त्र तथा वेदो को अलग-अलग शब्द मे लिखी से लेकर लौकिक ग्रन्थो के पूर्ण ज्ञान के लिए अत्यन्त आवश्यक हे। इसी उपकारिता के कारण राजशेखर ने अलङ्कार-शास्त्र को वेद का अङ्ग माना है।[1] उन्होने साहित्य-शिक्षा को स्वतन्त्र विद्या ही नही माना है, उसे प्रसिद्ध चार विद्याओं—तर्क, त्रयी, वार्ता तथा दण्डनीति—का निचोड स्वीकार किया है।[2] अलङ्कारशास्त्र की महत्ता नितान्त व्यक्तहै। काव्य में शब्द तथा अर्थ का सौन्दर्य लाने तथा उसे हृदयङ्गम बनाने मे अलङ्कारो की भूयसी उपयोगिता है।

काव्यपुरुष का स्वरूप

आचार्य राजशेखर ने (10वी शती ई0) ने काव्यमीमांसा के तृतीय अध्याय मे काव्यपुरुष की उत्पत्ति का विवेचन किया है। यद्यपि यह वर्णन पुराण सम्मत देव-शास्त्रीय शैली (Mythological Style) से होने के कारण अत्यन्त काल्पनिक प्रतीत होता है फिर भी, काव्य का स्वरूप समझने की दृष्टि से उसकी उपादेयता को नकारा नही जा सकता।

पुत्रकामा सरस्वती की तपश्चर्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उसे पुत्रवती बनाया। सरस्वती ने 'काव्यपुरुष' को जन्म दिया। नवजात शिशु ने छन्दोमयी वाणी में माँ से निवेदन किया—

---

1 काव्यमीमासा

2 काव्यमीमासा

'यदेतद् वाङ्मयं विश्वमर्थमूर्त्या विवर्तते।
सोऽस्मि काव्यपुमानम्ब पादौ वन्देय तावकौ॥'

काव्यपुरुष की छन्दस्वती वाणी सुनकर (माँ) सरस्वती गद्गद् हो उठी क्योकि अभी तक छन्दस्वती वाणी केवल वेदमन्त्रो मे उपलब्ध थी। सरस्वती ने गोद मे लेकर पुत्र को दुलारा, अपने सौभाग्य को सराहा और कहा—

"त्वत्त· पूर्वे हि विद्वासो गद्यं ददृशुर्न पद्यम्. . .अहो श्लाघनीयोऽसि। शब्दार्थौ ते शरीरम्। सस्कृत मुखम्। प्राकृत बाहुः। जघनम् अपभ्रशः। पैशाचं पादौ। उरो मिश्रम्। समः प्रसन्नो मधुर उदार ओजस्वी चासि। उक्तिचणं ते वचो, रस आत्मा, रोमाणि छन्दांसि, प्रश्नोत्तरप्रवहिलकादिकञ्च वाक्केलिः, अनुप्रासोपमादयश्च त्वामलङ्कुर्वन्ति।"

काव्यपुरुष की उपर्युक्त प्रशसा मे शब्दार्थ-समष्टि को उसका शरीर तथा अनुप्रास-उपमादि को अलङ्कार बताया गया है। इस प्रकार काव्य मे अलङ्कारों का स्थान तथा उनकी उपयोगिता स्पष्ट हो जाती है। आभूषण क्या करता है? शरीर को आभूषित या अलङ्कृत ही तो करता है न। गो कि मनुष्य के शरीर की सार्थकता तो उसकी प्राणवत्ता से है। प्राणवान् शरीर ही (जीवित) मनुष्य है अथवा निष्प्राण होते ही वह शव (मुर्दा) बन जाता है। यदि शरीर आभूषित न भी हो तो प्राणवान् मनुष्य की मनुष्यता में कोई सन्देह नही है, फिर भी आभूषित शरीर का कुछ और ही रूप होता है। अलङ्कार शरीर की शोभा के आधायक तत्त्व है। काव्य मे भी अनुप्रास-उपमादि अलङ्कार रसवान् शब्दार्थ (=काव्य) की शोभा बढ़ाते है।

साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने भी 'काव्यपुरुष' के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है—

'काव्यस्य शब्दार्थौ शरीरम्, रसादिश्चात्मा, गुणाः शौर्यादिवत्, दोषाः काणत्वादिवत्, रीतयोऽवयव-सस्थानविशेषवत्, अलङ्काराः कटककुण्डलादिवत्।'

अलङ्कारों का उद्भव तथा विकास

विश्व का प्राचीनतम वाड्मय ऋग्वेद माना जाता है। इसी ऋग्वेद की ऋचाओं मे अलङ्कारो का सम्यक् प्रयोग प्राप्त होता है। यद्यपि अलङ्कारशास्त्र का शास्त्रीय रूप मे विवेचन, वैदिक वाड्मय मे कही नही है, फिर भी उपमा, अतिशयोक्ति तथा रूपक जैसे रमणीय अलङ्कारो का बहुशः प्रयोग ऋग्वेद के मन्त्रो, ब्राह्मणो तथा उपनिषदो मे हुआ है। ऋग्वेद मे **'अरङ्कृति'** शब्द का प्रयोग भी मिलता है जो निश्चय ही (रलयोरभेदः के कारण) अलङ्कृति शब्द का पर्याय है।

ऋग्वेद के उषस् सूत्र में (1/124/7) उपमालङ्कार का एक प्रयोग इस सन्दर्भ मे द्रष्टव्य है—

अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची, गर्तारुगिव सनये धनानाम्।
जायेव पत्य उशती सुवासा, उषा हस्रेव निरिणीते अप्सु॥

परवर्ती आचार्यो ने उपमा को ही अलङ्कारो की मूल जननी स्वीकार किया है। आचार्य राजशेखर ने लिखा है—

उपमा कविवशंस्य मातैवेति मतिर्मम।

चित्रमीमासा के लेखक आचार्य अप्पय दीक्षित ने भी कहा है—

उपमैका शैलूषी सम्प्राप्ता चित्रभूमिकाभेदान्।

रजयति काव्यरङ्गे नृत्यन्ती तद्विदां चेतः।।

'उपमा' शब्द का प्रयोग भी ऋग्वेद के अनेक सन्दर्भो मे प्राप्त होता है।[1]

परवर्ती युग मे आचार्य यास्क[2] महर्षि पाणिनि[3], आचार्य भरत[4] तथा महाभाष्यकार पतञ्जलि[5] ने भी अलङ्कार-विषयक चर्चाए की—जिससे अलङ्कारो की प्राचीनता का अविच्छिन्न इतिहास सुस्पष्ट हो जाता है। उपर्युक्त आचार्यो का जीवनकाल क्रमशः ईसापूर्व 7वी , 5वी, तीसरी-चौथी एवं 2 शती मे माना जाता है।

दूसरी शताब्दी ई0 मे उट्टङ्कित शक-क्षत्रप रुद्रदामन के गिरनार शिलालेख मे भी '**स्फुटलघुमधुरचित्रकान्तसमयोदारालङ्कृतगद्यपद्य**' की चर्चा मिलती है। इसके अनन्तर ही अलङ्कारशास्त्र के स्वतन्त्र चिन्तन एवं विवेचन का युग

---

1 त्वमग्ने प्रयतदक्षिण नर जीवयाज यजते सोपमा दिव ।। 1, 31, 15, सहस्रसामाग्निवेशि गृणीषे शत्रिमग्न उपमा केतुमर्य ।। 5, 34, 9।

2 उपमा यत् अतत् तत्सदृशमिति गार्ग्य । तदासा कर्म ज्यायसा वा गुणेन प्रख्याततमेन वा कनीयास वा प्रख्यात वोममीयते, अथापि कनीयसा न्यायासम्।। निरुक्त 2-13

3 अष्टाध्यायी—2/3/72, 2/1/55, 2/1/56

4 आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र मे उपमा, रूपक, दीपक तथा यमकालङ्कारो का विधिवत् व्याख्यान किया गया है।

5 मान हि नाम अग्निर्ज्ञातार्थमुपादीयते अनिर्ज्ञातमर्थ ज्ञास्यामीति। तत्समीपे यत् नात्यन्ताय मिकीते तद् उपमान गौरिव गवय इति (महाभाष्य 2,1,55)।

प्रारम्भ हो जाता है जिसमे क्रमश आचार्य मेघाविरुद्र, भामह, दण्डी, उद्भट, वामन, रुद्रट एव मम्मटादि के महनीय ग्रन्थ लिखे गये। इस प्रकार हम देखते हैं कि वेदमन्त्रो से लेकर मम्मट के युग (11वी शती ई0) तक अलङ्कारो का उद्भव एव विकास निरन्तर होता रहा है।

अलङ्कारशास्त्र की प्राचीनता

राजशेखर ने काव्य मीमासा मे इस शास्त्र की उत्पत्ति की रोचक कथा लिखी है। उनके अनुसार भगवान् शङ्कर ने इस शास्त्र की शिक्षा सर्वप्रथम ब्रह्मा जी को दी जिन्होंने इसका उपदेश अनेक देवताओं तथा ऋषियों को किया। अठारह उपदेशको ने अठारह अधिकरणो मे इस शास्त्र की रचना की। भरत ने रूपक का निरूपण किया। नन्दिकेश्वर ने रस का, धिषण ने दोष का, उपमन्यु ने गुण का निरूपण किया। पता नहीं यह वर्णन काल्पनिक है या वास्तविक। **काव्यादर्श** की टीका **हृदयङ्गमा** का कथन है कि **काश्यप** और **वररुचि** ने काव्यदर्श के पहले अलङ्कार ग्रन्थ बनाए। **श्रुतानुपालिनी** टीका ने **काश्यप, ब्रह्मदत्त** तथा **नन्दी स्वामी** का नाम दण्डी से पूर्व आलङ्कारिकों मे गिनाया है। परन्तु इनके ग्रन्थ आजकल उपलब्ध नही होते। **अग्निपुराण** मे अलङ्कारशास्त्र का विषय प्रतिपादित किया गया है, परन्तु इसकी प्राचीनता मे विद्वानो मे पर्याप्त सन्देह है। द्वितीय शतक के शिलालेखो से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस समय अलङ्कारशास्त्र का उदय हो चुका था। रुद्रदामन के शिलालेख की भाषा ही अलङ्कारपूर्ण नही है, बल्कि उसमे अलङ्कारशास्त्र के कतिपय सिद्धान्तो का ही निर्देश है। काव्य के गद्य और पद्य दो भेद थे। गद्य को स्फुट, मधुर, कान्त तथा उदार होना आवश्यक था। यहाँ काव्यादर्श मे वर्णित प्रसाद, माधुर्य, कान्ति और उदारता गुणो का स्पष्ट निर्देश है।

हरिषेण ने समुद्रगुप्त को 'प्रतिष्ठित कवि-राज-शब्द' लिखकर अलङ्कारशास्त्र की सत्ता की ओर सङ्केत किया है। वह शास्त्र इससे भी प्राचीन है। पाणिनि ने कृशाश्व तथा शिलालि के द्वारा निर्मित नटसूत्रो का नाम निर्देश किया है।[1] यास्क के पूर्ववर्ती आचार्य गार्ग्य ने उपमा का बडा ही वैज्ञानिक लक्षण प्रस्तुत किया है (अर्थात् उपमा **यद् अतत् तत् सदृशमिति गार्ग्यः**) निरुक्त ने उपमा के उदाहरण मे ऋग्वेद के अनेकशः मन्त्रो को उद्धृत किया है। भरत के नाट्यशास्त्र के अनन्तर तो इस शास्त्र का अनुशीलन स्वतन्त्र शास्त्र के रूप मे बहुलता से होता रहा। यहॉ इस शास्त्र का संक्षिप्त इतिहास इस प्रकार विवेचित किया गया है।

अलङ्कार शब्द का तात्पर्य :

(क) **अलङ्क्रियते अनेन इति अलङ्कारः** अर्थात् जिसके द्वारा (शब्द तथा अर्थ का) अलङ्कार किया जाय वही अलङ्कार है। प्रस्तुत व्याख्या मे 'अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्' नियम से, करणार्थ मे घञ् प्रत्यय हुआ है (अलम्+कृञ्+घञ्)

(ख) **अलङ्करणम् अलङ्कारः** अथवा **अलङ्कृतिः अलङ्कारः** अर्थात् अलङ्करण ही अलङ्कार है। यहॉ पणिनीय सूत्र 'भावे' (3 3.18) से भावार्थ मे घञ् प्रत्यय हुआ है।

अलङ्कार का लक्षण :

'**अलङ्करोति इति अलङ्कारः**' यह अलङ्कार शब्द की व्युत्पत्ति है। इसके

---

1 पराशर्यशिलालिभ्या भिक्षुनटसूत्रयो (4/3/110)

2 कर्मन्दकशाश्वदिनि (4/3/111)

अनुसार शरीर को विभूषित करने वाले अर्थ या तत्त्व का नाम अलङ्कार है। जिस प्रकार कटक, कुण्डलादि आभूषण शरीर को विभूषित करते है, इसलिए अलङ्कार कहलाते है उसी प्रकार काव्य मे अनुप्रासोपमा आदि काव्य के शरीरभूत शब्दार्थ को अलङ्कृत करते है इसलिए अलङ्कार कहलाते है। अलङ्कार अलङ्कार्य का केवल उत्कर्षाधात्मक तत्व होता है, स्वरूपाधायक या जीवनाधायक तत्व नही। जो स्त्री या पुरुष अलङ्कारविहीन है, वह भी मनुष्य है। पर जो अलङ्कारयुक्त है, वह अधिक उत्कृष्ट समझे जाते है। इस प्रकार काव्य मे अलङ्कारो की स्थिति अपरिहार्य नही है। वे यदि है, तो काव्य के उत्कर्षाधायक होगे, यदि नहीं है, तो भी काव्य की कोई हानि नही है।

अलङ्कार काव्य के स्थिर धर्म हैं या अस्थिर धर्म :

इसलिए अलङ्कारो को काव्य का अस्थिर धर्म माना गया है। यही गुण तथा अलङ्कारो का भेदक तत्व है। गुण काव्य के स्थिर धर्म हैं, काव्य में गुणो की स्थिति अपरिहार्य है। परन्तु अलङ्कार स्थिर या अपरिहार्य धर्म नहीं है, केवल उत्कर्षाधायक हैं। उनके बिना भी काव्य में काम चल सकता है। ध्वनिवादी आलङ्कारिक अलङ्कारो को काव्य के 'अस्थिर धर्म' के रूप मे मानते है। इस मान्यता की मूल भावना ध्वनिकार की यह उक्ति है—

> ''विवक्षा तत्परत्वेन नाङ्गित्वेन कदाचन। काले च ग्रहणत्यागी
> नातिनिर्वहणैषिता।। निर्व्यूढावपि चाङ्गत्वे यत्नेन प्रत्यवेक्षणम्।
> रूपकादेरलङ्कारवर्जस्याङ्गत्वसाधनम्।।''[1]

---

1 ध्वन्यालोक 2 18-19

इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि रसरूप अङ्गी की दृष्टि से ही अलङ्कारो का ग्रहण-परित्याग, निर्वाह-अनिर्वाह आदि सम्भव है और अलङ्कारो का ग्रहण-परित्याग इस बात का प्रमाण है कि अलङ्कार काव्य के अस्थिर धर्म अथवा आगमापायी वैशिष्ट्य है।

काव्य मे अलङ्कारो की उपयोगिता काव्य के वाच्य-वाचकरूप अङ्गो की शोभावर्धकता के ही कारण है जैसा कि लोचनकार ने स्पष्ट कहा है—

> ''वाच्यवाचकलक्षणान्यङ्गानि ये पुनः (अवलम्बन्ते)
>
> तदाश्रितास्तेऽलङ्कराः मन्तव्याः कटकादिवत्।''[1]

इसी दृष्टि से काव्यप्रकाशकार मम्मट ने काव्य के लक्षण मे '**अनलङ्कृती पुनः क्वापि**' लिखकर अलङ्काररहित को भी काव्य माना है। उन्होने अष्टम उल्लास मे अलङ्कारो का लक्षण करते हुए लिखा है—

> ''उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।
>
> हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादयः॥''

'ये वाच्य-वाचकलक्षणाङ्गातिशयमुखेन मुख्यरसं संभविनमुपकुर्वन्ति। ते कण्ठाघङ्गानामुत्कर्षाधानद्वारेण शरीरिणोऽप्युपकारका हारादयइवालङ्काराः। यत्र तु नास्ति रसस्तत्रोक्तिवैचित्र्यमात्रपर्यवसायिनः। क्वचित्तु सन्तमपि नोपकुर्वन्ति।'[1]

साहित्यदर्पणकार ने भी अलङ्कार का लक्षण इसी आशयानुसार निम्नवत् किया है—

---

1 ध्वन्यालोकलोचन 2-6

2 काव्यप्रकाश, 8/87

'शब्दार्थयोरस्थिराः ये धर्माश्शोभातिशायिनः।

रसादीनुपकुर्वन्तोऽलङ्कारास्तेऽङ्गदादिवत्॥'[1]

किन्तु अलङ्कारो को काव्य के अस्थिर धर्म मानने का सिद्धान्त सर्वमान्य नही है। यह केवल ध्वनिवादी सम्प्रदाय का दृष्टिकोण है। अलङ्कारसम्प्रदाय अलङ्कारो को काव्य का अपरिहार्य स्थिर तत्व मानता है। उनके मत मे **अलङ्कार-रहित काव्य की कल्पना उष्णतारहित अग्नि की कल्पना के समान ही उपहासयोग्य है।** इसी भाव को व्यक्त करते हुए जयदेव ने अपने चन्द्रालोक मे लिखा है—

'अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलङ्कृती।

असौ न मन्यते कस्मात् अनुष्ठामनलं कृती॥'

जो पुरुष (मम्मट) अलङ्कारविहीन शब्द और अर्थ को काव्य मानता है, वह उष्णताविहीन अग्नि को क्यो नही मानता है।

अलङ्कारसम्बन्धी विविध व्याख्यायें :

वामन का मत : काव्यालङ्कारसूत्र के लेखक आचार्य **'वामन'** ने 'अलङ्कार' शब्द का प्रयोग दो अर्थो मे किया—सौन्दर्य तथा अलङ्कार। ग्रन्थ के प्रारम्भिक दो सूत्रो मे वे लिखते है—**'काव्यं ग्राह्यमलङ्कारात्'** (1.1.1) **'सौन्दर्यमलङ्कारः'** (1.1.2)। आचार्य वामन का मत है कि काव्य अलङ्कारो के ही कारण उपादेय होता है। अलङ्कार है क्या? सौन्दर्य ही अलङ्कार है।

इन्ही सूत्रो की व्याख्या करते हुए वामन पुनः लिखते हैं—

---

1 साहित्यदर्पण, 10/1

'अलङ्क्रियतेऽनेन, अलंकृतिरलङ्कारः।

करणव्युत्पत्त्या पुनरलङ्कारशब्दोऽयम् उपमादिषु वर्तते।'

वामन के मतानुसार करण व्युत्पत्ति से अलङ्कार शब्द उपमादि के लिए भी प्रयुक्त होता है। इस प्रकार आचार्य वामन अलङ्कार शब्द को अलङ्कार्य-वस्तु तथा अलकारक उपमादि—दोनो ही अर्थो मे ग्रहण करते है।

(2) दण्डी का मत : काव्यादर्श लेखक आचार्य दण्डी का अभिमत इस प्रकार है—

'काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलङ्कारान् प्रचक्षते।'

चूँकि आचार्य वामन सौन्दर्य मात्र को अलङ्कार मानते थे। फलत उन्ही के मन्तव्य का समर्थन करते हुए अलङ्कारवादी आचार्य दण्डी ने अलङ्कार शब्द का प्रयोग अत्यन्त विस्तृत क्षेत्र मे किया। उनका स्पष्ट मत है कि काव्यशोभा के जितने भी निष्पादक धर्म हैं, सब अलङ्कार हैं। दण्डी ने गुणो तथा अलङ्कारो मे कोई भेद नही माना है, यहाँ तक कि उन्होने सन्धि, सन्ध्यङ्ग, वृत्त्यङ्ग तथा लक्षणादि समस्त काव्य तत्त्वो को भी अलङ्कार ही माना।

काव्यादर्श (2/367) मे दण्डी लिखते है—

'यच्च सन्ध्यङ्गवृत्त्यङ्गलक्षणाद्यागमान्तरे।

व्यावर्णितमिदं चेष्टमलङ्कारतयैव नः।।'

(3) भामह का मत : काव्यालङ्कार के लेखक आचार्य भामह भी यद्यपि 'अलङ्कारवादी' माने जाते है परन्तु उन्होने अलङ्कार के बजाय 'वक्रोक्ति

को ही काव्य का अनिवार्य तत्त्व माना है। वक्रोक्ति (Clever Interpretation) के बिना काव्य मे चमत्कार (= अलङ्कार) उत्पन्न ही नही हो सकता। भामह के इसी मन्तव्य का समर्थन आगे चलकर आनन्दवर्धन[1] मम्मट[2] एवं कुन्तक[3] आदि ने किया।

आचार्य भामह वक्रोक्ति (रमणीय अभिव्यक्ति अथवा भङ्गीभणिति) तथा अतिशयोक्ति (लोकोत्तरवर्णना) को प्राय. समानान्तर मानते है। भामह के दृष्टिकोण को स्पष्ट करने वाली कुछ कारिकाये इस प्रकार है—

रूपकादिरलङ्कारस्तस्यन्यैर्बहुधोदित.।
न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिताननम्।।1.14

निमित्ततो वचो यत्तु लोकातिक्रान्तगोचरम्।
मन्यतेऽतिशयोक्तिं तामलङ्कारतया यथा।।2.81

सैषा सर्वैव वक्रोकतिरनयार्थो विभाव्यते।
यत्नोऽस्यां कविना कार्यः कोऽलङ्कारोऽनया विना।।2.8

(घ) आनन्दवर्धन का मत : आचार्य आनन्दवर्धन ने अत्यन्त सरल शब्दो मे, अलङ्कारविषयक अपना मत प्रकट किया है—**अलङ्कारो हि चारुत्वहेतुः प्रसिद्धः** अर्थात् अलङ्कार (काव्य के) चारुत्व का हेतु होता है।

---

1 प्रथम तावदतिशयोक्तिगर्भता सर्वालङ्कारेषु शक्यक्रिया। कृतैव च सा महाकविभि कामपि काव्यच्छाया पुष्यतीति। ध्वन्यालोक।।

2 सर्वत्र एवविधिविषयेऽतिशयोक्तिरेव प्राणत्वेनावतिष्ठते। ता विना प्रायेणालङ्कारत्वायोगात्।। काव्यप्रकाश।।

3 कविप्रतिभोत्थित विच्छित्तिविशेष अलङ्कार ।। वक्रोक्तिजीवित।।

(ङ) कुन्तक का मत : वक्रोक्तिजीवितकार आचार्य कुन्तक भी वैचित्र्य को अलङ्कार मानते है। परन्तु उनके मतानुसार वह वैचित्र्य, कवि की प्रतिभा से उल्लसित होना चाहिए—

वैचित्र्यमलङ्कारः।......कविप्रतिभोस्थितः विच्छित्तिविशेषः अलङ्कारः।

(च) रुय्यक का मत : आचार्य रुय्यक-प्रणीत **अलङ्कारसर्वस्व** के टीकाकार **समुद्रबन्ध** ने गुण को काव्य का नित्यधर्म तथा अलङ्कार को अनित्यधर्म स्वीकार किया है—

"विशिष्टौ शब्दार्थौ काव्यम्। तद्वैशिऽट्य धर्ममुखेन, व्यापारमुखेन, व्यङ्गयखेनेति त्रयः पक्षा इति। धर्मोऽपि द्विविध· नित्योऽनित्यश्च अथानित्यधर्मोऽलङ्क्रियतेऽनेनेति करणव्युत्पत्त्या सिद्धोलङ्कारः नित्यधर्मस्तु गुण एव।"

(छ) विश्वनाथ का मत : साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ (i) शब्दार्थ के शोभावर्धक अस्थिर धर्म तथा (ii) रसादि का उपकार करने वाले धर्म को अलङ्कार मानते है। अलङ्कारो को अनियत धर्म केवल इसलिए कहा गया है कि वे गुणो की तरह नियत धर्म नही है। इसी प्रकार उन्हे रस (अर्थात् काव्य के मुख्यार्थ) का पोषक कहा गया है। आचार्य मम्मट भी इसी रसजन्य चमत्कार के समर्थक है। आचार्य विश्वनाथ की परिभाषा इस प्रकार है—

'शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः।

रसादीनुपकुर्वन्तोऽलङ्कारास्तेऽङ्गदादिवत्॥'

(ज) जगन्नाथ का मत : रसगगाधरकार आचार्य जगन्नाथ वस्तु,

अलङ्कार तथा रस-त्रिविध व्यङ्‌ग्य को ही काव्यात्मा स्वीकार करते है। इसलिए उन्होने आचार्य विश्वनाथ की 'रसग्दीनुपकुर्वन्तो' पदावली की उपेक्षा करके, अपना नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया— 'अथास्य प्रागभिहितलक्षणस्य काव्यात्मनो व्यङ्‌ग्यस्य रमणीयताप्रयोजका अलङ्कारा निरुप्यन्ते।'

(झ) अभिनवगुप्त का मत : अभिनवगुप्त ने कहा है कि जैसे पृथकभूत हारसे रमणी विभूषित होती है वैसे ही पृथकसिद्ध चन्द्रादि उपमान से वर्णनीय वनिता वदनादि सुन्दर बनाये जाते हैं, यही अलङ्कार है—

'यथा हि पृथग्भूतेन हारेण रमणी विभूष्यते तथोपमानेन शशिना तत्सादृश्येन वा कविबुद्धिचंचलतया परिवर्तमानत्वात् पृथक्सिद्धेनैव प्रकृतवर्णनीयवनितावदनादि सुन्दरी क्रियते इति तदेवालङ्कारः।'

(ञ) महिमभट्ट के मत में : महिमभट्ट ने अलङ्कारो की अभिधात्मकता स्वीकार कर उन्हे भणिति की भङ्गिमा कहा है।[1]

अलङ्कारों का महत्व

काव्य मे अलङ्कार का महत्व सौन्दर्यशास्त्र (एस्थेटिक्स) या काव्यशास्त्र के लिए प्रचलित अलङ्कार शब्द से सुव्यक्त है। यदि यह सौन्दर्य का— काव्यशोभा या चारुत्व का अपरपर्याय है तो वामनादि की तरह कहना होगा

---

1 अलङ्काराणा च अभिधात्मत्वमुपगतम्, तेषा भगिभणितिरुपत्वात्, भगिभणितिमेवानामेव अलकारत्योपगमात्, व्यक्तिविवेक, 1 पृ0 3, 2 पृ0 87

कि रसादि भी अलङ्कार के अन्तर्गत है। यदि कहे कि नही यहाँ भी अलङ्कार शब्द उपमा रूपकादि के लिए आया है तो **'प्राधान्येन हि व्यपदेशाः भवन्ति'** न्याय से काव्य के चारुत्व हेतु तत्वो मे अलङ्कार का प्राधान्य स्वीकार करना होगा। उभयथा—अपने व्यापकार्थ मे भी और सीमितार्थ मे भी—अलङ्कारो का महत्व स्थिर है। भामह, दण्डी और वामनादि पूर्ववर्ती आचार्यो ने काव्य मे अलङ्कार का सर्वोपरि महत्व स्वीकार किया था।[1] 'कान्त होने पर भी अलङ्कार रहित वनितानन शोभित नही होता' कहते हुए भामह[2] ने अलङ्कारो के कारण ही काव्य को ग्राह्य मानते हुए वामन ने, और काव्य के शोभाकारक तत्वो के रूप मे परिभाषित करते हुए दण्डी ने यही प्रतिपादित किया था। किन्तु अवधेय है कि ऐसा कहते हुए उक्त आचार्यो की दृष्टि में अलङ्कार अपने व्यापकार्थ मे ही था। सौन्दर्य को ही अलङ्कार कहकर वामन ने यह बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है।

अलङ्कार का उपमादिपरक सीमितार्थ मे प्रयोग का भी वामन को ध्यान था। इसलिए उन्होने भाव और करण दोनो मे अर्थो को स्पष्ट लिख दिया है।[3] वक्रोक्ति को काव्यात्मा मानने वाले कुन्तक ने भी सालङ्कार की ही काव्यता मानी है। अलङ्कारवादियो मे जयदेवादि कुछ आचार्यो ने वामनादि के व्यापकार्थ वाले अलङ्कार से हटकर रसात्मवादियो के विरोध केकारण उपमादि अलङ्कारो का ही काव्य मे सर्वोपरि महत्व स्वीकार किया और घोषित किया है कि "बिना अलङ्कार के भी शब्दार्थो को जो कृती काव्य

---

1 अलङ्कारा एव काव्ये प्रधानमिति प्राच्चानाम् मतम्। अलङ्कारसर्वस्व

2 न कान्तमपि निर्भूष विभाति वनिताननम्।—भामह, काव्यालङ्कार

3 काव्यालङ्कारसूत्र, वामन, 3/1/1 तथा 3/1/2

मानता है वह यह क्यो नही मानता है कि अग्नि उष्णता के बिना भी हो सकती है।''

उत्तरवर्ती ध्वनिकार, अभिनवगुप्त तथा मम्मटादि ने अलङ्कार को एक समर्थ विवेचन के आधार पर काव्य मे रस को आत्मा-अलङ्कार्य-मानकर उसका उपकारक मात्र बना दिया। जैसे समुचित रूप मे धारण किये गये कटकादि आभूषणो से शरीर की शोभा बढती है वैसे ही यदि समुचित रूप मे सन्निवेश हुआ हो तो उपमादि से रस का उपकार होता है। जहॉ रस न हो वहॉ अलङ्कार वैचित्र्य मात्र पर्यवसायी होगा।[1]

भामह ने वक्रता के उपपादक शब्द विन्यास और अर्थ गुम्फन को अलङ्कार कहा है।[2] दण्डी ने काव्य के शोभाकारक धर्म के रूप मे अलङ्कार को परिभाषित किया है। वामन ने दण्डी की परिभाषा से किचित् विरोध रखते हुए काव्य के शोभाकारक तत्वो को गुण और काव्य शोभा के अतिशय के हेतु के रूप मे अलङ्कार को माना है।[3] अलङ्कार को उसके व्यापक रूप मे देखते हुए वामन ने अलङ्कार को सौन्दर्य के अपरपर्याय के रूप मे भी परिभाषित किया है। कुन्तक ने कत्थ्य की विशेष शैली को ही अलङ्कार कहा है बशर्ते उसमे बॉकपन हो।[4]

अलङ्कारों का वर्गीकरण : आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र मे वर्णित

---

1 काव्यप्रकाश-मम्मट, पृ0 स0 386

2 भामह, काव्यालङ्कार—1/36

3 काव्यालङ्कारसूत्र, वामन, 3/1/1 तथा 3/1/2

4 द्रष्टव्य – सुशील कुमार डे, वक्रोक्ति जीवित, प्रस्तावना 1/7

चार अलङ्कार ही क्रमशः विकसितहोते हुए 17वी शती ई० मे 125 संख्या तक पहुँच गये। भरत के अनन्तर मेधावी 5 (उपमा-रूपक-दीपक-यमक-अनुप्रास) भामह 38, दण्डी 35, भट्टोद्भट 41, महाराज भोज 72, हेमचन्द्र 35, वाग्भट्ट 39, वाग्भट्ट द्वितीय 69, मम्मट 67, विश्वनाथ 78, पं० जगन्नाथ 70 (अपूर्ण) तथा अप्पय दीक्षित 125 (कुवलयानन्द) अलङ्कार स्वीकार करते है।

स्पष्ट है कि अलङ्कारो की सख्या के विषय मे बडा मतभेद है। शब्दालङ्कारो की सख्या मे तथा अर्थालङ्कारो की सख्या मे भी। प्रतिभा के आनन्त्य से जैसा कि अभिनवगुप्तपाद ने कहा है कि शब्द और अर्थ के वैचित्र्य के अनन्त प्रकार है।[1]

भामह तथा दण्डी ने अलङ्कारो के वर्गीकरण मे कोई रुचि प्रदर्शित नही की। अलङ्कारो का द्विधा वर्गीकरण सर्वप्रथम आचार्य रुद्रट करते है—शब्दालङ्कार तथा अर्थालङ्कार। अर्थालङ्कार का अवान्तर विभाजन—वास्तव, औपम्य, अतिशय तथा श्लेष मे करते हुए आचार्य रुद्रट अन्य समस्तालङ्कारो को इन्ही चारो का भेद बताते है।[2]

यद्यपि अन्यान्य आचार्यो ने भी इसी प्रकार के स्वाभिमत प्रयास किये है, किन्तु अलङ्कारो का सर्वसम्मत वर्गीकरण—शब्दासङ्कार एव अर्थालङ्कार—के ही रूप मे मान्य हो सका। प्रायः समस्त अलङ्कारसाखियों ने इसी परम्परा

---

1 द्रष्टव्य—दण्डी, काव्यादर्श

2 द्रष्टव्य—रुद्रट-काव्यालङ्कार, 2 13 तथा 7 9

को स्वीकार करते हुए, अलङ्कारो का विवेचन प्रस्तुत किया है। **राजा भोज** ने अवश्य ही '**उभयालङ्कार**' की भी स्थापना की, जो मुख्यत उन्ही तक सीमित रही।

प्राय. सभी आचार्यो ने शब्द और अर्थ को काव्य का शरीर माना है। अलङ्कार शरीर के शोभादायक होते है। इसलिए काव्य मे शब्द और अर्थ के उत्कर्षाधायक तत्व का नाम ही अलङ्कार है। अर्थात् अलङ्कार का आधार शब्दार्थ है। इसी आधार पर शब्दालङ्कार, अर्थालङ्कार और उन दोनो के मिश्रण से बने हुए उभयालङ्कार इन तीन प्रकार के अलङ्कारो की कल्पना की गई है।

शब्दालङ्कार का एकमात्र लक्षण है—'**शब्दपरिवृत्यसहत्व**' अर्थात् शब्द की परिवृत्ति (परिवर्तन) को न सह सकने का भाव। जो अलङ्कार शब्दविशेष की उपस्थिति मे ही रहते है, उस शब्द का पर्याय रखते ही विनष्ट हो जाते है, शब्दालङ्कार कहे जाते है। उदाहरण 'नवपलाशपलाशवनं पुरः' में यमक अलङ्कार है—भिन्नार्थक 'पलाश' शब्द की आवृत्ति के कारण। परन्तु यदि इसी पदावली को 'नक्लपत्रपलाशवनं पुर·' कर दिया जाय तो यमकत्व समापत हो जायेगा।

इसके विपरीत अर्थालङ्कार वह है जो शब्द-विशेष को परिवर्तित कर देने पर भी, अर्थगत सौन्दर्य की अक्षुण्णता के कारण, बना रहता है। उदाहरण 'मधुरः सुधावदधरः पल्लवतुल्योऽतिपेलवः पाणि·' (शाकुन्तल) मे उपमा है। परन्तु यदि इस पक्ति को 'मधुरः सुधावदधरः किसलयसदृशोऽतिकोमलो हस्त·' के रूप मे परिवर्तित कर दिया जाय, तब भी औपम्य मे कोई बाधा

नही आयेगी।

अलङ्कार सन्निवेश विषयक औचित्य : अलङ्कारो के सन्निवेश के सम्बन्ध मे यह अवधेय है कि वे '**अपृथक् निर्वत्य**' हो। **व्यक्तिविवेककार** का यह कथन[1] कि काव्य रचना एक सर्वातिशायी सौन्दर्य की निष्पत्ति के लिए होती है, अलङ्कारो की निष्पत्ति के लिए नही' सर्वथा उचित है और इस औचित्य का निर्वाह ही अलङ्कारो के प्रयोग का परमार्थ है।

कवि सुबन्धु और अलङ्कार : कलापक्ष की ओर कवि सुबन्धु के अतिशय आकर्षण का विवेचन पूर्वोक्त किया जा चुका है। कवि के अनुसार काव्य रचना का अलङ्कार प्रसाधित होना आवश्यक है।[2] अपने ग्रन्थ की श्लेषालङ्कृति का उन्होने वासवदत्ता के प्रारम्भ मे ही बड़े गर्व से उल्लेख किया है अतः उनके काव्य के मूल्याकन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानदण्ड वासवदत्ता का कलापक्ष है। इस प्रकरण मे इसी की समीक्षा प्रस्तुत है।

यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि इस प्रकरण के अन्तर्गत अलङ्कार का प्रयोग उपमादि के लिए ही किया गया है। पुनश्च तत्तद् अलङ्कारो के लक्षणो के सम्बन्ध मे आलङ्कारिको मे एकमत न होने के कारण यहाँ आचार्य मम्मट और विश्वनाथ कृत लक्षणो के अनुसार ही अलङ्कारो का निरूपण किया गया है।

---

1 द्रष्टव्य, व्यक्तिविवेक, 2

2 द्रष्टव्य, वासवदत्ता चौ० स० तथा श्रीर० स० पृट 158

शब्दालङ्कार

(1) अनुप्रास : वर्णों की समानता अनुप्रास है।[1] स्वरो का भेद होने पर भी व्यञ्जनो की समानता वर्णों की समानता है। व्यञ्जनो के साथ स्वरो की समानता भी यदि सम्भव हो (यमक मे अतिव्याप्ति न होती हो) तो प्रकर्षक है। इसलिए लक्षण मे व्यञ्जन साम्य न कहकर वर्णों के साम्य को अनुप्रास कहा है।[2] यदि सवर सादृश्य न हो तो भी केवल व्यञ्जनो का साम्य अनुप्रास है। अनुप्रास वर्ण गतत्व और पद-गतत्व भेद से दो प्रकार का होता है।[3] वर्णगत भी 'छेक' और 'वृत्ति' भेद से दो प्रकार का कहा गया है।[4] पदगत अनुप्रास जिसे लाटजनप्रियत्वात लाटानुप्रास कहा जाता है, पाँच प्रकार का होता है।[5]

शब्दालङ्कारो मे श्लेष और यमक के बाद अनुप्रास ही सुबन्धु का सर्वाधिक प्रिय अलङ्कार है। वामन ने अनुप्रास में अनुल्वण वर्णों की रचना ही श्रेयान कही है।[6] किन्तु जैसा अधोलिखित उदाहरणो से स्पष्ट है सुबन्धु ने अति उल्वण वर्णों की रचना मे भी कम आदर नही दिखाया है। अतः अनुल्वण वर्णों के प्रयोग के स्थलो—वसन्तकालादि वर्णनो—में कही-कही यह चिन्त्य है। तथापि वासवदत्ता मे अनुप्रास का विन्यास प्राय. रमणीय है।

---

1 काव्यप्रकाश, 9-103 सूत्र

2 काव्यप्रकाश, 9-103 सूत्र-वृत्ति भाग

3 काव्यप्रकाश, 9-105 सूत्र

4 काव्यप्रकाश, 9-106-107 सूत्र

5 काव्यप्रकाश, 9-116 सूत्र

6 का0 सू0 वृ0, 4/1/9

अवधेय है कि अनुप्रास तथा यमकादि मे ब-व, र-ल और श-स आदि मे भेद नही माना जाता है।[1]

वर्णगतानुप्रास[2] के अन्तर्गत छेकानुप्रास के कुछ उदाहरण अधोलिखित है—

(क) 'मधुच्छत्रच्छायमण्डलोदरे।'[3]

(ख) 'उपवनपवनादोलिततरतरतरङ्गया, नलिनीनिकुञ्जपुञ्जनिविष्टदुष्टबकोटककुटुम्बिनीनिरीक्ष्यमाणवृद्धशफरया।'[4]

(ग) 'हरिरवरनखरविदारितकुम्भस्थलविकलवारणध्वानैः।
अद्यापि कुम्भसम्भवमाह्वयतीवोञ्चतालभुज.।।'[5]

(घ) 'उत्कण्ठोऽयमकाण्डचण्डिमपटुः स्फारस्फुरत्केसरः,
फीटकुर्वद्विरिकुञ्जकुञ्जरबृहत्कुम्भस्थलस्थो हरिः।।'[6]

(च) 'सुरासुरमौलिमालालाक्षितचरणारविन्दा... .
प्रणयकलहप्रणतगगाधरजटाजूटकोटि-स्खलितजाह्नवीजलधारा-
धौतपादपद्मा.....निवसति। यस्य च परिसरे.. ..
कुसुममुकुटरजोराजिपरिमलवाहिनी,..... सुरसुन्दरी

---

1 साहित्यदर्पण, 10/8- वृत्ति भाग

2 साहित्यदर्पण, 10/3

3 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 32

4 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 76

5 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 78

6 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 79-80

नितम्बबिम्बाहतितरलिततरङ्गा . .. एणतिलकमुकुट

विकटजटाजूटकुहरभ्रान्तिजनितसस्कार . .

गन्धपरिभ्रमद्भमरमाला . ।'[1]

सञ्चरन्मत्स्यपुत्रिकापत्रिपटलमधुरध्वनिविहितमुदि, कदथितकदम्बे, कम्बुद्विषि, प्रसृतबिसप्रसूते, विरलवारिदे, मूकमण्डूकमण्डले..... सौगन्धिकगन्ध-हारिहरिणाश्वे, दरदलितकुमुदामोदिनि . निर्बहबर्हिणि. .. सुखितमृगयूथे, कथीकृतयूथिके...... बन्धूकबान्ध्वे विसूत्रितसौत्रामधनुषि, स्मेरकश्मीररजः पिञ्जिरितदशदिशि.... प्रियानुकारिणीति करेण पस्पर्श।'[2]

उपर्युक्त उदाहरणो मे 'छेक' की छठा पठनीय है।

वृत्यनुप्रास[3] **:** वृत्यनुप्रास के उदाहरणो से वासवदत्ता भरी है। ग्रन्थ मे प्रायः सर्वत्र यत्र-तत्र प्रयोग के साथ रेवा, बसन्तकाल, सन्ध्याकाल, रात्रिकाल, श्मशान, सागर तथा सागर तट के वर्णनो मे वृत्यनुप्रास की विच्छिति निश्चय ही सातिशय है। वासवदत्ता के प्रारम्भिक बारहवें श्लोक मे प् त् और म वर्णो की असकृदावृत्ति मे इसका हल्का रङ्ग देखे—

(क) 'अविदितगुणाऽपि सत्कविभणितिः कर्णेषु वमति मधुधाराम्।

अनधिगतपरिमलाऽपि हि हरति दृशं मालतीमाला।।'

(ख) 'गुणिनामपि निजरूपप्रतिप्रत्ति· परत एव सम्भवति।

स्वमहिमदर्शनमक्ष्णोर्मुकुरतले जायते यस्मात्।।'[4]

---

1 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 93-96

2 द्रष्टव्य, वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 249-252

3 साहित्यदर्पण, 10/4

4 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 6

अन्य उदाहरण

(ग) 'सर्वोर्वीपतिचक्रचारुचूडामणिश्रेणीशाणकोणकषणनिर्मलीकृत-चरणनखमणिनृसिह .'।[1] यहाँ 'च', 'ण' और 'क' की असकृदावृत्ति हुई है।

(घ) 'करतलताऽनभीतै '।[2]

(ड) 'रोमराजिलतालवालवलयेन।'[3]

(छ) 'कोमलमलयमारुतोद्धूतचूतप्रसवरसास्वादकषायकण्ठकलकण्ठ-कुहूरुतभारितसकलदिङमुख.।'[4]

(ज) '.... ..वसतिसाकाङ्क्षेषु ध्वाङ्क्षेषु,.......वह्यमानकालागुरु-धूपपरिमलोद्गारेषु वासागारेषु . ..... कलरवनिवारणक्रुद्धेषु वृद्धेषु, . . . शिशयिषमाणे शिशुजने, विरचितकन्दर्पमुद्रासु क्षुद्रासु,.... सन्ध्यावन्दनोपविष्टेषु, शिष्टेषु, रोमन्थमन्थरकुरङ्ग कुटुम्बक .. . . निद्राविद्राणकाककुल.. .।'[5]

(स) 'गृहगमनत्वरेषु चत्वरेषु समासादितकुक्कुटेषु किरातगृहनिष्कुटेषु कृतयष्टिसमारोहणेषु बर्हिणेषु, विहितसन्ध्यासमय व्यवस्थेषु गृहस्थेषु.. .. .।'[6]

---

1 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 7

2 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 29

3 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 40

4 द्रष्टव्य, वासवदत्ता चौ0 स0, पृ0 स0 111

5 द्रष्टव्य, वासवदत्ता चौ0 स0, पृ0 स0 154-155

6 द्रष्टव्य, वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 157

(ट) '. . .यदि नभ पत्रायते, सागरो मेलान्दायते, ब्रह्मा लिपिकरायते, भुजगपतिर्वाकिथकायते तदा किमपि कथमप्यनेकैर्युग सहस्त्रैरभिलिख्यते कथ्यते वा।'[1]

(ठ) 'विविधोटजकुटजरुद्धोपकण्ठेन, सोत्कण्ठभृङ्गराजरसित-सुन्दरीवनेन . अप्रव्यूहदात्यूहकुहरितभरितन-दीतटनिकुञ्जपुञ्जेन '[2]

(ड) 'अथ सानुग्रहेषु ग्राहेषु, निर्मत्सरेषु मत्स्येषु, अनिच्छेषु कच्छपेषु अक्रूरेषु नक्रेषु अभयङ्करेषु मकरेषु, अमारेषु शिशुमारेषु आकाशसरस्वती समुदचरत् .. ।'[3]

(ढ) 'अनन्तरमखञ्जखञ्जरीटे, अकुञ्चितक्रौञ्चसंचारे, निर्भरभरद्वाजद्विज वाचाटविटपिविटपे, पटुतरप्रभप्रभाते......प्रवेशितवेशराजहंसे, कासारातिदेह द्युतिद्युतले, हंसतूलतुलितजरज्जलमुचि, सान्द्रीकृतेन्दुमहसि..... कशेरुकन्दलुब्ध-पोत्रिपोत्रोत्खातसरस्तटभागे, .

(च) 'पश्योदञ्चदवाञ्चदञ्चितवपुः पूर्वार्धपश्चार्धभाक्,

दंष्ट्राकोटिविशङ्कटास्यकुहरः कुर्वन् सटामुत्कटामुत्कर्णः कुरुते क्रम करिपतौ क्रूराकृतिः केसरी।।'[4]

(छ) 'वृन्तविनिर्गतविकचविचिकिलकलिकाविवरे मञ्जु गुञ्जन्मधुकरो।'[5]

---

1 द्रष्टव्य, वासवदत्ता चौ0स0, पृ0 स0 211

2 द्रष्टव्य, वासवदत्ता चौ0 स0, पृ0 स0 230-231

3 द्रष्टव्य, वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 244-45

4 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 79

5 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 118

(ज) 'अलिकुलशबला कलितेन्द्रनीला मुक्तावलीव मधुश्रियो रुरुवे।'[1]

(स) 'कन्दर्पकेलिसम्पल्लम्पटलाटीललाटतटलुलितालकधम्मिल्लभाग-वकुलकुसुमपरिमलमेलनसमृद्धमधुरिमगु ण., कामकलाकलापकुशलचारुकर्णाट-सुन्दरीस्तनकलशघुसृणधूलिपटलपरिमलामोदवाही, रणरणकरम्मितापरान्त-कान्तकुन्तलोल्ललनसंक्रान्तपरिमलमिलितालिमालामधुरत झङ्कारखमुखरितनभ.-स्थस्थल·, नवयौवनरागतरलकेरलीकपोलपालिपद्मावनीपरिचयचतुर., चतु.षष्टिकलाकलापविदग्धमुग्धमालवनितम्बिनीनितम्बबिम्बसंवाहनकुशल·, सुरतश्रमपरवशान्ध्रपुरन्ध्रीनीरन्ध्रपीनपयोधरभारनिदाघजलकणनिकरशिशिरितो मलयमरुतो ववौ।'[2]

आनुप्रासिक पदबन्ध तथा माधुर्य गुण युक्त वर्णो की असकृदावृत्ति का यह एक अच्छा उदाहरण है।

(ज) 'अथ वासरताम्रचूडचूडाचक्राकारः........ . मन्दारस्तबकसुन्दरः, सिन्दूरराजिरञ्जितसुरराजकुम्भिकुम्भविभ्रमं बिभ्राणः,. ...ततः क्रमेण च रजोविलुठितोत्थितकुलायार्थिपरस्परकलहविकलकलविङ्ककुलकलवाचालशिखरेषु शिखरिषु, निद्राविद्राणकाककुलकलितकुलायेषु,.... . कापेयविकलकपिकुलक-लिलेष्वारामतरुषु.....निर्जिग मिषति जस्तरुकोटरकुटीरकुटुम्बिनि कौशिककुले, .. सुरतारम्भाकल्पशोभिनि शम्भलीभाषितभाजि भजति भूषा भुजिष्याजने, . . सरकोटिसङ्कर कुशेशयोदरकोटरकुटीरकुटिलशायिनि षड्चरणचक्रे. ...।'[3]

---

1 वासवदत्ता चौ0 स0 पृ0 स0 120

2 वासवदत्ता चौ0 स0, पृ0 स0 120-22

3 वासवदत्ता, चौ0 स0 पृ0 स0 150-158

यहाँ नाना वर्णो की असकृदावृत्ति अवधेय है।

(झ) उल्वण वर्णो की असकृदावृत्ति का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

'स्फुटपाटवोत्कटविशङ्कटानेकविटपिविटपोत्कटस्फुटकुसुमपुटपिहितपदषट्पदावलिषु, घनतरघोरदन्तिघस्मरविषधरभोगभासुरम्, मदभरमत्तदन्तिदन्तद्युतिर्जनजर्जरितम्..... ।'[1]

श्मशान वर्णन मे भी उल्वण वर्णो की रसानुकूल योजना का एक और उदाहरण द्रष्टव्य है—

(ञ) 'नरजाङ्गलकवलनाभिलाषमिलितनिःशङ्ककङ्ककुलसङ्कुलेन अर्धदग्धचिताचक्रसिमसिमायमानवसाविस्त्रविकटकटतृष्णाचटुलकप्पूतनोत्तालवेतालरवभीषणेन, शूलशिखरारोपितशङ्कितवर्णकर्णनासिकच्छेदरुधिरपटलपतितझाङ्कारिकरकोटिकर्पूरकरालकौणपनृत्ततुमुलेन, भम्भरालीकेलिसम्भारभरितभूमिभागबीभत्सेन, कटाग्निदह्यमानपटुचटचटन्नृकरोटिटङ्कारभैरवरवेण, विवृतोल्कामुखीमुखज्वलज्ज्वलनज्वालाजटिलेन, आन्त्रतन्तुप्रोतकपालकलितकुचप्रालम्बड़ामरडाकिनीगणकृतकुणपविभागकोलाहलेन,..... ।'[2]

रेखांकित वाक्याशो मे समानश्रुति वाले वर्णो की असकृदावृत्ति अत्यन्त सुन्दर रूप मे दर्शनीय है।

(ट) 'नव्यनऽनलदनलिनीनिचुलपिचुलवञ्जुलसरलविदलवकुलचिरबिल्वबिल्वबहुलेन,....विततवेत्रव्रततिव्रातावरणतरुणवरुणस्कन्धसन्नद्धभृङ्गरोलेन,

---

1 द्रष्टव्य, वासवदत्ता चौ0 स0, पृ0 स0 165, 66

2 द्रष्टव्य, वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 213-214

. . . .कतिपयदिवसप्रसूतकुक्कुटीकुटीकृतकुटजकोटरेण, चटकसञ्चार्य-माणचटुलवाचाटचाटकैरक्रियमाणचाटुना, सहचरीसहचरणचञ्चुरचकोरचुञ्चुना, शैलेयसुगन्धितशिलातलसुखशयितशशशिशुराशिना,. . निराकुलनकुलकुलकेलिना,

गुञ्जाकुञ्जपुञ्जितजाहकजातेन, दशदशनकुपितकपिपोतप-टेकनखकोटिपारितपाटलीपुटकीटसङ्कटेन, कुलिशशिखरखरनखप्रचयप्रचण्डचपेटा-पाटितमत्तमातङ्गकुम्भस्थलरुधिरच्छटाच्छुरितचारुकेसर भारभासुरकेसरिकदम्बेन,. ताण्डवोद्दण्डोर्दण्डषण्डखण्डपरशुविडम्बनापण्डितम् . ।'[1]

यहाँ 'न्', 'ल', 'व', 'कट', 'चट्', 'श' तथा 'पड्' वर्णो की असकृदावत्ति अत्यन्त मनोहारिणी है।

समुद्र तट के वर्णन मे केवल ह्रसवान्त वर्णो की असकृदावृत्ति की वृत्ति अलङ्कृति की पराकाष्ठा है और कवि की एतद् विषयक असीम शक्ति की परिचायिका भी। यहाँ वृत्त्यनुप्रास की विच्छित्ति सराहते ही बनती है—

(ठ) 'अतितरलजलरयलुलितचटुलशफरकुलकबवनकृतमतिनिभृ-तबकशकुनिवध्धवलितपरिसरम् अतिचपलजलकपिकुलविहरणलुलितसलिलक-णनिकरपरिमिलनशिशिरिततमालतलम्, अनुदिननिपतदतितरुणवनमहि-षगवलशिखरविलिखितविषमतटम्, ...अहिमकरकरनिकररु-चिरजलमनुजगणशयनमृदिततटधरणीतलम्, अतिबहलमदजलशबलकरटतट-करिशतनिपतितमधुकरनिकरविरुतिरतिकरम्, अतिजवनपवनविधुतजलधिजल-विघटननिपतितमणिगणपरिगतपरिसरम् . .पुलिनतलमाससाद।'[2]

---

1 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 229-236

2 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 242-244

वर्णगतानुप्रास के अन्तर्गत विश्वनाथ ने श्रुति और अन्त्य की भी चर्चा की है। ताल्वादि समान उच्चारण स्थान वाले वर्णो की आवृत्ति श्रुत्यअनुप्रास है।[1] और पद या पाद के अन्त मे आयी समान वर्णावृत्ति अन्त्यानुप्रास है।[2] श्रेति अनुप्रास के उदाहरण उपर्युक्त उदाहरणो के अन्तर्गत समान उच्चारण वाले वर्णो की आवृत्ति मे अनेकत्र देखे जा सकते है। पदान्त और पादाश मे स्थिति के अनुसार अन्त्यानुप्रास दो प्रकार का होता है। पदांतगत अन्त्यानुप्रास यद्यपि गद्यबन्ध मे भी हो सकता है तथापि इसकी विशेष विच्छिति पद्य मे ही होती है। पदांतगत अनुप्रास गद्य रचना मे सम्भव नही है। पदान्तक अन्त्यानुप्रास का एक उदाहरण वासवदत्ता मे देखे—

'विध्वस्तपरगुणानां भवति खलानामतीव मलिनत्वम्।
अन्तरितशशिरुचामपि सलिलमुचां मलिनिमाऽभ्यधिकः।।'[3]

पाद रहित पद संतान गद्य[4] मे भी जैसे वृत्वान्धि प्रकार का बन्ध मिलता है वैसे पादान्तक अन्त्यानुप्रास गन्धि का विन्यास भी हो सकता है। वासवदत्ता के गद्य भाग मे पदान्त और पादान्त अन्त्यानुप्रास गन्धि के कुछ उदाहरण निम्नवत् है—

(क) अपगता मम प्राणा·, इति बहुविध भाषमाणा।'[5]

---

1 साहित्यदर्पण, 10/5

2 साहित्यदर्पण, 10/6

3 वासवदत्ता, चौ0 स0 पृ0 स0 4

4 काव्यादर्श, 2/23

5 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 144

(ख) 'दग्धस्नेहतया मन्दिमानमुपगतेषु, अतिवृद्धेष्विव दशान्तमुपगतेषु। विपन्नसदीश्वरेष्विव पात्रमात्रावशेषेषु . प्रियविरहशोकाद्धाष्पबिन्दूनिवोत्सृजतीषु, प्रियतमगमननिषेधमिव कुर्वतीषु'[1]

(ग) 'सकलावयवनिमितिशेषलावण्यपुञ्जाभ्यामिव, हृदयतटाक-कमलमुकुलाभ्यामिव, हृच्छयविलासचातुरकविभ्रमाभ्याम्, रोमावलीलताफलभूताभ्याम् कन्दर्यदर्पवर्धनचूर्णकनककलशाभ्यामिव, अशेषजनहृदयपतनादिव सञ्जातगौरवाभ्याम्, संसारतरुमहाफलाभ्याम्, हारलतामृणाललोभनीयचक्रवाकाभ्याम्. ....पयोधराभ्या समुद्धासमानाम् इत्यादि।'[2]

(2) यमक अलङ्कार : लक्षण : अर्थ होने पर भिन्नार्थक वर्णो की उसी क्रम से पुनरावृत्ति यमक नामक शब्दालङ्कार कहलाता है।[3]

समान आनुपूर्वी वाली स्वर व्यञ्जन सहति यदि सार्थक है तो उसका भिन्नार्थक होना आवश्यक है। आशय यह है कि जिस वर्ण सहति की आवृत्ति हो उसका एक अश या सर्वाश यदि अनर्थक हो तो कोई आपत्ति नही है किन्तु उसके किसी एक अश या सर्वाश के सार्थक होने पर आवृत्त वर्ण समुदाय की यथापूर्व श्रुति का भिन्नार्थक होना आवश्यक है। यहाँ कही दोनो पद सार्थक होते है (ऐसी स्थिति मे दोनो को भिन्नार्थक होना चाहिए)

---

1 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 34, 35

2 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 42, 43

3 भामह काव्यादर्श, 2/17

कही दोनो निरर्थक होते है, कही एक सार्थक तो दूसरा निरर्थक होता है। लक्षण मे 'अर्थेसति' को इसलिए रखा गया है।

भेद : काव्यशास्त्रो मे प्रायः पद्य मे यमक की स्थिति कहाँ है इसी आधार पर यमको के भेद वर्णित है।[1] गद्यकाव्यो मे उनके प्रयोग को लेकर कोई वर्गीकरण नही मिलता है। प्रकृत गद्य काव्य के सन्दर्भ मे इसलिए इन भेदो की चर्चा आवश्यक है। यमक प्रभेद के सम्बन्ध में, सस्कृत काव्यशास्त्रियो मे, कदाचित दण्डी ने ही सर्वाधिक विस्तार से विवेचन किया है। उन्होने और मम्मटादि ने भी यमक के भेदो का आनन्त्य स्वीकार किया है।[2]

गद्यकाव्य में यमक का वर्गीकरण : गद्यकाव्य मे भी यमक के वर्गीकरण का एक आधार दण्डी के विवेचन मे ही मिलता है। उन्होने समानुपूर्विक वर्णसंहति-यमक के व्यपेत-व्यवधान युक्त-अव्यपेत-व्यवधान रहित तथा व्ययेताव्ययेत प्रयोगानुसार तीन प्रभेद किये है। इस वर्गीकरण के आधार पर गद्य काव्यो मे भी यमक के तीन प्रकार निरूपित किये जा सकते है।

वासवदत्ता मे अव्यपेत यमक का एक अक्लिष्ट और सुन्दर उदाहरण द्रष्टव्य है—

(क) 'आन्दोलितकुसुमकेसरे केसरेणुमुषि रणितनूपुरमणीनां रमणीनाम्, विकचकुमुदाकरे मुदाकरे सङ्गभाजि, प्रियविरहितासु रहितासु सुखेन मुर्मुरचूर्णमिव समन्तादर्पके दर्पकेषु दहनस्य दूरप्रसारितकोकप्रियमारुते मारुते वहति... .।'[3]

---

1 द्रष्टव्य, दण्डी काव्यादर्श, तृतीय परिच्छेद

2 काव्यप्रकाश, 9/118, दण्डी काव्यादर्श 3/3

3 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 38, 39

यहाँ भोरही रात की वायु के प्रकान्त वर्णन मे केसर-केसर मे पहला सार्थक है किन्तु दूसरा 'केसरेणुमुषि' पद का अवयव होने से निरर्थक है। 'रमणीनाम् रमणीनाम्' मे पहला 'नूपुरमणीना' पद का अवयव होने से निरर्थक है किन्तु दूसरा सार्थक है। 'मुदाकरे मुदाकरे' तथा 'रहितासु रहितासु' पहली श्रुतियाँ क्रमश कुमुदाकरे और विरहितासु पदो का अवयव होने केकारण निरर्थक है किन्तु इनकी आवृत्तियाँ सार्थक है। 'दर्पके दर्पके' मे पहला सार्थक है किन्तु दूसरा 'दर्पकेषु' का अवयव होने से निरर्थक है। 'मारुते मारुते' मे पहला 'प्रियतमारुते' का अवयव होने से निरर्थक है किन्तु दूसरा सार्थक है।

अभिसारिकाओं द्वारा प्रेषिता दूतियो के द्ध्वर्थक सप्रपंच शृङ्गारिक संवादो मे अव्यपेत यमक का एक क्लिष्टार्थक उदाहरण भी देखे—

(ख) "राजसेन राजसे नरहितो रहितो ध्रुवम्।

विशारदा शारदाभुविशदा विशदात्मना नमहिमानमहिमानरक्षणक्षमा क्षमातिलक धीरता धीरता मनसि भूतता भूतता च वचसि।। साहसेन सा हसेन कमला कमलालया यया जिता, सा त्वदर्पणा दर्पणाकारविमलाशया शयाब्जनिजितकिसलया सलयाङ्गुलिरिव विभ्रमेण विभ्रमेण गवाक्षशलाकाविवर लोकयन्ती लोकयन्त्रितविनाशा विना शापमनुभवति दुखानि।

जीवनायक जीवनाय कमिव नाश्रयति सुभगम्।

अन्यास्तावदासतामहमेवदासता पुरतो भजामि, मैत्र्यतो मैत्र्यतोऽस्तु। अञ्जसारत. सारतः किमपि कन्दर्पक दर्पक न चेत्तनोषि, विशेषतोऽविशेषतः

स्थिरमेव मरणम्।

शढधिया शोधन यशोधन प्रेमहार्यामहार्या समासोत्कटाक्षै कटाक्षैराविर्भूतदास्यास्तदास्याः पारेजना ।

कमलाकृतिनारीणा कमलाकृति नारीणा भवतां मुख च मलिनितम्। विश्वस्य विश्वस्य समासाद्य समासाद्याने ककाल सङ्गीतसङ्गी तनुषे तनुषे कमनङ्गस्य पुष्पेषु पुष्पेषु, रुजा तरसा जातरसा मन्दाक्षमन्दा क्षण भ्रमन्ती मुह्यति।

कामधुराधरेण का मधुराधरेण युक्ता रजोराजविशेषकेण विशेषकेण मुखेन्दुना तव हृदि लग्ना प्रदिमाकरेण करेण स्वेदबिन्दुपयोधरेण पयोधरेण वक्षःफलकाञ्चनेन जितानाविलकाञ्चनेन कामदारुणमदारुणनेत्रा स्मरमयं रमयन्त भवन्तमदय मदयन्ती परमकमितार परमकमितार वाञ्छति हारिणा हारिणा स्तनकुम्भे न हारिणाक्षिरुचिहारिणा चक्षुषा च।''[1]

अपेक्षाकृत कम क्लिष्ट, कुछ प्रसङ्ग अव्यपेत यमक का ही एक और उदाहरण वासवदत्ता मे प्रमदाओं की प्रणयपेशल आलाप कथाओं मे देखे।

(ग) 'भद्रे द्रवसि द्रवसिद्धेरगदिता। चपला च पलायते किमेषा। स्तबकस्तव कर्णतः पतितोऽयम्। सुरेखे सुकपोलरेरवे सुरया सुरयाचिताश्रीस्त्वमसि। मत्ते कलहे! कलहेमकाञ्चीदामकणितैः स्मरमिवाह्वयसि। मलये मलयेप्सित कुरु हशैवाधिगतासि। कलिके! कलिकेतुमिमां मुखरां मुञ्च मेखलाम्; श्रृणुमः

---

1 वासवदत्ता, चौ0 स0 पृ0 स0 183-189

कलवल्लकीविरुतम्। मेखला मेखला न भवति, त्वमेव मुखरतया खरतया, च त्रपतेऽत्र पतेयमिति नागकुसुमोपहारेषु स्खलन्तीयम्। नव कैतवकैरलम् . ..। वहतीव हतीरनङ्गलेखे .. । नव च हारलता पिहिताऽपि हि तायते। उत्कलिके तवोत्कलिका बहुले वदने वद नेत्रपयोजकान्ते किमुपमानमिन्दुरप्यायाति। वसतीव सतीव्रते! तव हृरि कोऽपि। शतधा शतधारसारा वाचस्तवानुभूता .केरलिके पुरगोपुरगोचरा· श्रूयन्ते सङ्गीतध्वन्य किमिव कल्पयसि। क्षणमीक्षणमीलनादपि चटुल चटुलम्पट सखीजन मायासयसि। सुरते सुरते स्तनताऽनेषु यत्सौख्य लब्ध तत्स्मरता स्मरतापनोदन दयितेन दयितेन विमुक्तासि। कि मुह्यसि महतो महतो दयित. स्मरति स्मरतिप्रियं तव कौशलम् नवनिशानखराणां नखराणां स्मरजन्यां स्म रजन्या कुरुते कुरुतेन रुजम्। तव लोचनाभ्यां लोचनाभ्या प्रीणिताखिलजनेक्षणदेशः क्षणदेशः कि न पीयते। प्रियसखि! मदनमालिनी! बिम्बाधरसङ्गत्या सङ्गत्यागेच्छया विराग कुरु मधुमदारुणमालवीकपोलतलसमानो लसमानो रक्तमण्डलतया लतया त्वया को विशेष?''[1]

भामह ने यमक प्रयोग के सम्बन्ध मे एक सयम, आदर्श औचिती का निर्देश किया था। उन्होने कहा था कि जिसके शब्द प्रसिद्ध हो, पद सन्धियॉ सुश्लिष्ट हो, जो ओजस्वी प्रसादयुक्त और सुखोचार्य हो, वही विद्वानो का अभिमत यमक है।[2] उपर्युक्त उदाहरणो मे से यमक का पहला उदाहरण भामह के आदर्शानुरूप है। किन्तु दूसरा अत्यन्त क्लिष्ट है। सम्यक्

---

1 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 197-204

2 भामह, काव्यालङ्कार 2/20

अविदितभावक, कथचिद्योजनवान्वय और कृच्छ्रेण कल्प्यमानार्थक है।[1] किन्तु यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अभीष्ट द्व्यर्थकना के कारण ही यहाँ यमक योजना क्लिष्ट हो गई है और इसके लिए कवि की शक्ति को यदि न भी सराहा जाय तो उसे दोषी नही ठहराना चाहिए।

(3) श्लेष अलङ्कार : शब्दालङ्कारो मे श्लेष सुबन्धु का सर्वाधिक प्रिय अलङ्कार है। यही नही श्लेष के सुन्दर प्रयोग मे ही वह सत्कवित्व मानते है।[2] यदि यह कहे कि श्लेष के प्रयोग मे अपनी शक्ति को प्रदर्शित करने के लिए ही उन्होने वासवदत्ता की रचना की थी तो असमीचीन नही होगा। अपनी कृति के प्रारम्भिक तेरहवे श्लोक मे सुबन्धु ने स्वयं कहा है कि उन्होने एक ऐसे प्रबन्ध-काव्य की रचना की है जिसके प्रत्येक अक्षर मे श्लेष है—'**प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्ध।**'[3]

दण्डी प्रभृति प्राचीन आचार्यो ने अर्थद्वयोपस्थापकत्व रूप समान वैचित्र्य के कारण शब्द और अर्थगत दोनो शब्द प्रकारो का अर्थालङ्कारो के अन्तर्गत ही वर्णन किया है। किन्तु बाद मे आचार्यो ने शब्दपरिवृत्तिसहत्व, असहत्व के आधार पर श्लेष को (1) शब्दगत (2) अर्थगत भेद करके दो वर्गो मे बॉट दिया।

लक्षण : भेद प्रभेद : शब्द श्लेष भी दो प्रकार का होता है। एक भिन्न पद या सभग दूसरा अभिन्न पद या अभङ्ग कहा गया है।[4] साहित्यदर्पण मे

---

1 वासवदत्ता, श्रीरङ्गम सस्करण, भूमिका, पृ0 स0 19

2 वासवदत्ता, श्रीरङ्गम सस्करण, पृ0 स0 238

3 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 6

4 काव्यादर्श, 2/310

एक उभयात्मक भेद भी मिलता है।[1] अर्थ का भेद होने से भिन्न-भिन्न शब्द एक साथ उच्चारण के कारण जब मिल जाते है, तब वह श्लेष होता है। यह सभङ्ग श्लेष का लक्षण है। वर्ण, पद, लिङ्ग, भाषा, प्रकृति, प्रत्यय, विभक्ति तथा वचनो के भेद से यह अष्टधा होता है।[2] जहाँ एक ही वाक्य मे अनेक अर्थ हो वह 'अर्थश्लेष' होता है।[3] भेदो के अभाव मे यह एक ही प्रकारका होता है।

कविराज ने सुबन्धु को वक्रोक्ति मार्ग मे निपुण माना है।[4] और इस निपुणता के लिए उसने जिन चार लोगो का नाम उल्लिखित किया है उनमे सुबन्धु का नाम प्रथम स्थान पर है। निश्चय ही यहाँ वक्रोक्ति काकु और श्लेष पर आधारित वक्रोक्ति अलङ्कार न होकर 'भङ्गीभणिति' का अपरपर्याय है। 'श्लेष प्रायः सभी वक्रोक्तियो मे चारुत्व को पुष्टि देता है।[5] दण्डी ने जब यह प्रतिपादित किया था तब उनकी दृष्टि मे निश्चय ही वासवदत्ता रही होगी। सुबन्धु ने अपनी कृति मे उपमा, उत्प्रेक्षा, परिसख्या तथा विरोधाभासादि प्रायः सभी अर्थालङ्कारों की विच्छित्तियो के मूल मे श्लेष का प्रयोग किया है। स्वतन्त्र रूप से श्लेषालङ्कार का प्रयोग पूरी वासवदत्ता मे कुछ ही स्थानो पर हुआ है। अस्तु **'स्थाली पुलाकन्यायेन'** वासवदत्ता में अभङ्ग श्लेष के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है।

---

1 साहित्यदर्पण, 10/12

2 काव्यप्रकाश, 9/119

3 काव्यप्रकाश, 10/146

4 राघव पाण्डवीय, 1/41

5 काव्यादर्श, 2/363

राजा चिन्तामणि का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं—चिन्तामणि नाम का एक राजा हुआ था, जो नारायण की तरह **सौकर्यसमासादितधरणिमण्डल**, (नारायण पक्ष मे—वाराहवतार मे सूकर बनकर धरती तल का समुद्धार करने वाला, राजापक्ष मे—शौकर्य—आसानी से—धरणिमण्डल को प्राप्त करने वाला) था, अगस्त्य की तरह **दक्षिणाशप्रसाधक** (अगस्त्य पक्ष मे—दक्षिण आज्ञा-दिशा-के प्रसाधक—अलङ्कर्ता, राजा पक्ष मे—दक्षिण—कुशल जनो की-आशा-आकाक्षा-का प्रसाधक-पूरयिता) था, हर की तरह **महासेनानुगत** (हरपक्ष मे—महासेन-कार्तिकेय-से अनुगत, राजा पक्ष मे-महासेना-विशाल सेना-से अनुगत) था; कुसुमकेतु की तरह **जनितानिरुद्धसम्पत्** (कुसुमकेतु पक्ष मे-अनिरुद्ध रूपी सम्पत्ति को उत्पन्न करने वाला, राजा पक्ष मे—अनिवारित सम्पत्ति उत्पन्न करने वाला) और **रतिसुखप्रद** (कुसुमकेतु पक्ष मे—रति नामक अपनी पत्नी को सुख प्रदान करने वाला, राजा पक्ष मे—रति-रामकेलि-मे सुख प्रदान करने वाला) था।'[1]

यहाँ उदाहण मे रेखाङ्कित समस्त पद क्लिष्ट हैं। उपमेय राजा तथा राजा के तत्तद् उपमान नारायणादि के प्रसङ्ग मे इनके अलग-अलग अर्थ हैं। वाच्य भेद से भिन्न होकर भी युगपत् उच्चारण के कारण ये अपने पृथक् स्वरूप को छिपाए हुए हैं अतः यह श्लेष अलङ्कार है। उपमेय राजा तथा तत्तद् उपमानो के पक्ष मे पृथक्-पृथक् अर्थावबोध पदो को बिना तोडे ही हो जाता है अतः यह अभङ्ग श्लेष है।

---

1 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 7-8

अभङ्ग पद श्लेष का एक और उदाहरण 'परिसख्या' के अन्दर दर्शनीय है—

'पृथ्वी मण्डल मे जिसके शासनकाल मे, **छलजातिनिग्रह** (न्यायशास्त्र मे प्रसिद्ध छलजात्यादि वाद विधियो) का प्रयोग वादो मे (न्यायशाम्त्रीयशास्त्रार्थो मे) था। (अन्यत्र छलजातिनिग्रह-छल से किसी को फॅसाना, यद्वा छल से उत्पन्न शूद्रादि जातियो का निग्रह नही था)। **नास्तिकता** (परलोक मे अविश्वास) चार्वाको मे था (अन्यत्र नास्तिकता-निष्किंचनता नही थी)। **कण्टकयोग** (रोमाच) नियोगो मे था, (अन्यत्र कण्टक-क्षुद्र शत्रु-का योग नही था) **परीवाद** (वादन या बिना दण्ड) वीणाओं मे था (अन्यत्र परीवाद-निन्दा नही थी)। **खलसंयोग** (खल-खलिहान का संयोग-सम्बन्ध) शालियो-धान्यो मे था, (अन्यत्र खल-दुर्जन का सयोग-सम्बन्ध नही था)। **द्विजिह्वसङ्गृहीति** (द्विजिह्व-सर्प की सगृहीति संग्रह) आहितुण्डिको-सपेरों मे थी, (अन्यत्र द्विजिह्वसंगृहीति चुगलखोरो का संग्रह नही था)। **करच्छेद** (कर-राजदेय भाग का छेद-न्यूनीकरण) क्लृप्तकरग्रहणो-निश्चित करो को वसूलने में-था, (अन्यत्र करच्छेद-हाथ काटने का दण्ड ऐसे अपराध के अभाव मे नही था)। **नेत्रोत्पादन** (नेत्रो वलकलो या मूलादि – का उत्पाटन – उखाडना) मुनियो मे था, (अन्यत्र नेत्रोत्पाटन – ऑख निकाल लेने का दण्ड ऐसे अपराध के अभाव मे नहीं था)। **सार्वभौमयोग** (सार्वभौम नामक दिग्गज का सम्बन्ध) दिग्गजो मे था (अन्यत्र किसी राजा मे सार्वभौम योग चक्रवर्तीत्व का योग नही था)। **अग्नितुलाशुद्धि** (आग और तराजू की परीक्षा) सुवर्णो मे थी, (अन्यत्र अग्नितुलाशुद्धि-आग और तराजू पर अपनी निर्दोषता का दिव्य प्रमाण देना—ऐसे अपराध के अभाव मे नहीं

था)।.... इत्यादि।[1]

यहाँ तत्तद् छलजातिनिग्रह आदि का तत्तद् वादादि मे सद्भाव तथा अन्यत्र अभाव युगपदभाषण स्पृक शब्दो द्वारा वर्णित है। इनका वादादि के प्रसङ्ग मे एक अर्थ है और अन्यत्र अन्य। अत यहाँ श्लेष है। पृथक् पृथक् वाच्यार्थों का ग्रहण पदो को तोड़े बिना होता है अत अभङ्ग या अभिन्न पद है।

वासवदत्ता का कवि सुबन्धु अपने सभङ्ग श्लेषो के लिए कवि जगत मे प्रसिद्ध है। किसी लक्षण की 'सूक्तावली' मे एक श्लोक मे कवि सुबन्धु के सभङ्ग श्लेष की प्रशंसा इस प्रकार मिलती है कि—'गद्य सुधाधुनी के प्रभवाचल सुबन्धु की जय हो जिसके सभंगश्लेष के आगे कविगण पराजित हो गये।[2]

किन्तु जैसा कि नलचम्पूकार ने कहा है[3] भङ्गश्लेष के कारण सुबन्धु की वाणी भी कठिन हो गई है। राजा चिन्तामणि के वर्णन मे सभङ्गश्लेष के एक उदाहरण मे कवि की शक्ति और अलङ्कार का चमत्कार देखे—

(क) 'स हि मालयो नावश्यायोच्छलितो नो मायाजन्मने हितश्च।[4]

---

1 द्रष्टव्य, वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 11-13

2 जीयाद्गद्यसुधाधुन्या सुबन्धु प्रभवाचल ।
यद्भङ्गश्लेषमाश्रित्य भग· कविभिराश्रित ।।
लक्ष्मण सूक्तावली, पीटर्सन, आप० सिट० अपेडिक्स, पेज 55

3 विशेषत नलचम्पू

4 वासवदत्ता चौ० स०, पृ० स० 15

'स—वह राजा चिन्तामणि, **हिमालय** (पर्वत पक्ष मे) हिम का आलय या (किन्तु) **अवश्यायोच्छलित**—अवश्याय-बर्फ से—उच्छलित—वृद्धि को प्राप्त, न—नही था, च—और, नोमायाजन्मने—(नो और मायाजन्मने को पृथक् पद मानकर) माया—पार्वती—के जन्मने—जन्म के लिए, हित·—उपयुक्त नही था। 'यदेवा न उभाया जन्मने' इस प्रकार पदच्छेद करके उभाया -- पार्वती के, जन्मने—जन्म के लिए, हित·—उपयुक्त, न—नही था। यद्वा 'राजा पक्ष मे—सः—वह राजा चिन्तामणि, हि मालयः (हि को पृथक् अव्यय पद तथा मालयः को पृथक् समस्त पद मात्रकर) हि—निश्चयेन, मालय·—मायाः—लक्ष्मी का, आलय·—निवास स्थान—था, (किन्तु) **नावश्यायोच्छलितो**—अवश्याय—गर्व से उच्छलित—उद्रिक्त—न—नही था, यद्वा अवश्य—आवश्यक, अय—सुभावह विधि—से छलित—वचित—न—नहीं था। च—और, माया जन्मने—कपटाचार्यों के लिए, हितः—हितकर, नो—नही था। यद्वा मालयः—लक्ष्मी का निवास स्थान होने पर भी, अवश्य—आवश्यक, आय—धनागम से, उच्छलित—प्रभ्रष्ट, नो—नहीं था।'

यहाँ वाच्यभेदेन भिन्न होने पर भी उपर्युक्त पदो में राजा और हिमालय के सम्बन्ध मे पृथक्-पृथक् अर्थ ग्रहण हो रहा है। और इस अर्थ ग्रहण के लिए पदो को भिन्न नही करना पडा है इसलिए यहॉ सभङ्ग श्लेष है।

चिन्तामणि के वर्णन मे ही सभङ्ग श्लेष के कुछ उदाहरण देखे—

(ख) चिन्तामणि नामक एक राजा हुआ था जो कृष्ण की तरह **कृतवसुदेवतर्पण** (कृष्ण के पक्ष मे—वसुदेव नामक पिता को तृप्त करने

वाला, राजा पक्ष मे—वसु—धन से—देवतर्पण—यागादि कर चुका, यद्वा कृतवसु—अग्नि देव का तर्पण करने वाला इत्यादि) था, .. .आनक दुन्दुभि की तरह **कृतकाव्यादर** (आनकदुन्दुभि—वसुदेव—के पक्ष मे पूतना से भय करने वाले, राजा पक्ष मे—काव्यो का आदर करने वाला, यद्वा कृतकाव्यो—बुद्धिमानो या कवियो का आदर करने वाला),.. . जो विद्याधर (राजा पक्ष मे—नाना विधाओं को धारण करने वाला, अन्यत्र देव योनि विशेष वाला) होकर भी सुमना (राजा पक्ष मे शोभन मन वाला, अन्यत्र देव) था।'[1]

यहाँ कृतवसुदेवतर्पण, कृतकाव्यादर तथा विद्याधरो के सुमना पद राजा और कृष्णादि के सम्बन्ध मे युगपदभाषणस्पृक होने पर भी—भिन्न-भिन्न अर्थ दे रहे हैं किन्तु अपना पृथक स्वरूप छिपाये हैं अत· यहाँ श्लेष है। पृथक् पृथक् अर्थो का ग्रहण पदो को भिन्न करके ही हो रहा है अतः सभङ्ग है।

सभङ्गाभङ्ग उभयात्मक श्लेष के भी कुछ उदाहरण देखें—

(क) जिसके **प्रसाद** (देवी के पक्ष मे—प्रसन्नता या कृपा, नदी पक्ष मे निर्मलता) से, सूक्ष्म मतियो वाले (देवी पक्ष मे सूक्ष्म—बारीक—बुद्धियो वाले, नदी पक्ष मे—सूक्ष्म—अल्प बुद्धियो वाले) कविगण (देवी पक्ष में—कवयः—काव्य रचने वाले, नदी पक्ष मे—के—जले विद्यमानाः वयः पक्षीणः अर्थात् जलचर पक्षीगण) सम्पूर्ण भुवनतल (देवी पक्ष मे—भुवनतल—पृथ्वी तल, नदी पक्ष मे—भुवन—जल, तल—अधःस्थल) को, करबदरसदृश (देवी पक्ष मे—करतलामलकवत, नदी पक्ष में—करवतरसदृशम् इस विग्रह

---

1 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 7, 8

से और ब, व मे अभेद मानकर, क—जल, र—देने वाले के वत्—समान अर्थात् आकाशवत, अरसदृशम्—रसस्य जलस्य प्रतिमानम् यस्मिन् सः रसदृक् स न भवति इति अरसदृक् तम्—अर्थात् जल प्रतिमान वर्जित) देखते है, वह सरस्वती (पक्ष मे—वाग्देवता, नदी पक्ष मे—सरस्वती नाम की नदी) देवी सर्वोत्कृष्टतया वर्तमान हो।[1]

कुछ लोगो ने 'करवदरसदृशम्' का कम् जलम् लवः विन्दु , परम् ईषत् सदृशम् तुल्यम्, 'जललवस्यईषत्सदृशम्' ऐसा अर्थ किया है।

यहाँ सरस्वती देवी—कवियो की अधिष्ठात्री देवी का वर्णन प्रकृत है। किन्तु 'प्रसादतः', 'सूक्ष्म मलय कवयः 'भुवनतलम्' और 'करवदरसदृशम्' विशेषण पदों के श्लिष्ट होने तथा सरस्वती विशेष्य के भी श्लिष्ट होने से प्रकृताप्रकृत विषयक श्लेष है। 'प्रसादतः' 'भुवनतलम्' तथा 'सूक्ष्ममतयः' मे अभङ्ग पद तथा 'करवदरसदृशम्' 'कवयः' तथा 'सरस्वती' पदों मे सभङ्ग पद श्लेष होने के कारण उभयात्मक श्लेष हैं।

सभङ्गाअभङ्ग उभयात्मक श्लेष का एक और उदाहरण वासवदत्ता के प्रसिद्ध दशम् श्लोक मे देखे—

(ख) 'सा रसवत्ता विहता नवका विलसन्ति चरति नो कङ्कः।
सरसीव कीर्त्तिशेषं गतवति भुवि विक्रमादित्ये।।'[2]

---

1 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 1

2 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 5

यहाँ उपमान सूखे सरोवर और उपमेय दिवगत राजा विक्रमादित्य का साधर्म्य श्लेष के जल पर वर्णित है।

(सरोवर पक्ष मे—श्लोक का अर्थ भुवि—पृथ्वी पर, सरसि—सरोवर के कीर्ति-कीचड-शेष हो जाने पर, सारसक्ता—सारस पक्षियो मे युक्तता, विहता—नष्ट हो गई। न—न तो, वका.—बगुले, विलसन्ति—शोभित हो रहे है, नो—न ही, कङ्कः—कङ्क नामक पक्षी, चरति—डोल रहा है।

(विक्रमादित्य के पक्ष मे) भुवि—भूतल पर, विक्रमादित्ये—विक्रमादित्य के कीर्ति शेष—यशः शेष—दिवङ्गत, गतवति—हो जाने पर, सारसवत्ता—(सा और रसवत्ता को पृथक् पद मानकर) सा—वह लोक प्रसिद्ध रसिकता या गुणवत्ता, विहता—नष्ट हो गई। नवकाः (यहॉ न और वका·, दो पद न मानकर) कालिदासादि नवरत्न, विलसन्ति नो—शोभा नही पा रहे हैं। कः—कौन, कम्—किसको, चरति—खा रहा है अर्थात् कोई देखने वाला नही रहा। यद्वा नव मे कन् प्रत्यय मानकर नवकाः—नये लोग, विलसन्ति—शोभा पा रहे है और कः—कौन,—कम्—किसे, नो—नही, चरति—खाये जा रहे हैं।

यहॉ सारसवत्ता, नवगाः, कङ्कः और कीर्तिशेष पद श्लिष्ट है। इनमे सारसवत्ता, नवकाः और कङ्कः से उपर्युक्त अर्थ ग्रहण भङ्ग करने पर होता है। अतः इनमे श्लेष सभङ्ग रूप मे वर्तमान है। किन्तु कीर्तिशेष मे कीर्ति पद की अखण्ड रूप मे द्व्यर्थकता के कारण इसमें अभङ्ग प्रकार का श्लेष है। दोनो के एकत्र प्रयोग के कारण यहाँ उभयात्मक श्लेष है।

दूतियो के द्व्यर्थक विकार संवादो में उभयात्मक श्लेष का एक

श्लिष्टतम उदाहरण भी देखे—

(ग)1 अवस्त्रीकृतमात्मान नाकलयसि तत्त्वत कान्त ।

कोई दूती किसी जार से कह रही है—**(क)** हे कान्त—हे कमनीय। (तुम) तत्तवत —सही रूप मे (मेरी सखी को) न नही आकलयसि—समझ रहे हो। (उसके बारे मे तुम्हे गलतफहमी है इसलिए उसकी उपेक्षा कर रहे हो। अरे उसे तो तुम) स्त्रीकृतम्—आत्मानं—(बस) स्त्री रूप मे अपने को ही, अब-समझो। आशय यह है कि वह सर्वथा तुम्हारे अनुरूप है तुम उसे अवश्य स्वीकार करो गलतफहमी मे मत पड़ो। यद्वा **(ख)** कोई दूती किसी जार को सावधान करते हुए कह रही है—हे कान्त कमनीय। (तुम) स्त्रीकृतम्—(स्त्रीणां कृतम् कार्मणादिकर्म) कार्मणादिकर्म, तत्त्क्तः—वस्तुत , न आकलयसि—नही समझते हो। अर्थात् भोले हो। (इसलिए) आत्मानम्—अपने को, अब—बचाओ। रूप के बाजार मे कहीं ठगे न जाओ यद्वा उक्त प्रसङ्ग मे ही 'तत्त्वतः' मे तत्, तु और अतः को पृथक् पद मानकर—हे कान्त-कमनीय। (तुम) तत्—उस, स्त्रीकृतम्-स्त्रियो के कार्मणादि को, तु—तो, न आकलयसि—नही जानते हो, अतः—इसलिए आत्मानम् अव। यद्वा **(ग)** स्त्री वेश मे अपने को छिपाये किसी प्रच्छन्न कामुक को प्रोत्साहित करती हुई कोई दूती कहती है—हे कान्त। आत्मानम्—अपने को, तत्त्वतः—हूबहू, स्त्रीकृतम्—स्त्री बना हुआ, अब—समझो। (तुम न आकलयसि—(वेष परिवर्तन के बाद पुरुष रूप में) जाहिर नही हो रहे हो। अतः निश्चित होकर अपने प्रियतमा के पास जाओ कोई पहचान नहीं पायेगा। यद्वा (घ) कोई दूती किसी जार को स्त्री वेष मे परिवर्तित देखकर उसकी प्रशंसा करती हुई कह

रही है—हे कान्त! आत्मानम् अपने को, अ[1] —विष्णु, के, व[2] —समान, स्वीकृतम्—स्त्री बना हुआ, अब-समझो। अपने को बिल्कुल विष्णु की तरह मोहिनी रूप धारी समझो। (वेष परिवर्तन के बाद तुम तो) ततवत·—वस्तुत , न आकलयसि—अपने यथार्थ रूप मे प्रतीत ही नही हो रहे हो। यद्वा (ड) कोई दूती किसी कामुक को रूप के बाजार से न होने का वहाना करके भागते देखकर कह रही है—हे कान्त! आत्मानम्—अपने को अ-विष्णु, के व[3] वक्षस्थल मे (निवास करने वाली) स्त्री—लक्ष्मी (धन सम्पत्ति) से कृतम्—पर्याप्त, भरा-पूरा, अब—समझो। (तुम) तत्वतः—वस्तुत (दीन) न आकलयसि—नही लग रहे हो। तुम्हारे पास पैसा है जाओ रंगरेलियां करो। यद्वा (च) कोई दूती किसी मालदार को किसी दूसरी पण्यदारा के पास जाते देखकर ईर्ष्यावश उसे जाने से रोकती हुई सावधान कर रही है—हे कान्त। (किम्—क्या यहॉ काकु है) अवस्त्रीकृतम्—लक्ष्मी से भरा-पूरा, न आकलयसि—नही देख रहे हो। आशय यह है कि तुम्हारे पास इतना धन है क्या तुम नही देख रहे हो। यह रूप का बाजार है, गाँठ खाली हो जायेगी, चले जाओ। यद्वा हे कान्त। अ—वासुदेव, के व—समान, स्त्रीकृतम्—स्त्रियो के लिए पर्याप्त, आत्मानम्—अपने को, तत्वतः—वस्तुतः, न आकलयसि—नही समझ रहे हो। अर्थात् यदि औरो के साथ क्रीड़ा कर रहे हो तो करो किन्तु मेरी सखी के साथ भी प्रेम रखो।

---

1 अकारोवासुदेवः स्यात्। एकाक्षर कोष, वासवदत्ता व्याख्या मे जीवानन्द द्वारा उद्धृत।

2 वासवदत्ता—जीवानन्द व्याख्या, पृ० स० 93

3 वक्षस्थले च व प्रोक्त । वही

(निन्दा पक्ष मे) हे कान्त—(कम् सुखम् तस्य अन्त· विनाशकः)—हे सुखनाशक (तुम) आत्मानम्—अपने को, स्त्रीकृतम्—स्त्री हो, अब समझो। तुममे कुछ भी पुरुषार्थ नही है और तुम तत्त्वत·, न आकलयसि—अपनी वास्तविकता को नही समझ रहे हो। यद्वा (तुमको अन्य कुलटाओं ने) अवस्त्रीकृतम्—निर्वस्त्रबना दिया है। परन्तु तुम अपनी दशा को तत्त्वत न आकलयसि—नही समझ रहे हो। यद्वा हे सुखनाशक, स्त्रीकृतम्—स्त्री बने हुए, आत्मानम् अपने को, अब-बचाओ, तुम तत्त्वत —वस्तुतः (स्त्री जैसा) नही लग रहे हो। तुम्हारा पुरुष रूप जाहिर हो रहा है। इसलिए अपने को ठीक से बचाओ अन्यथा मुश्किल मे पड़ जाओगे। इत्यादि।[1]

(ग)2 'प्रस्तर इव क्रूरोऽसि, न चाकर्षकचुम्बकद्रावकेष्वेकोऽसि, भ्रामकोऽसि परं कितव।'[2]

हे कितव-विदग्ध, प्रस्तर इव—पत्थर की तरह, क्रूरोसि—कठोर हो। तथापि (निष्ठुरता मे पत्थर के समान होने पर भी) आकर्षक चुम्बक, द्रावक और भ्रामक कुछ नही हो) (पत्थर तो निष्ठुर होने के बाद भी आकर्षक (यत् सम्बन्धात् प्रत्युप्तमपि लोहम् निःसरति) चुम्बक (अयस्कान्तमणि) यत् सम्बन्धात् चन्द्रकान्तो वा) और भ्रामक (यत्सम्बन्धात् लोहम् भ्रमति) होता है। किन्तु तुम कामकला कौशल से जो नारियो को आकर्षित करता है वह आकर्षक भी नही हो, रति कौशल से जो चुम्बन करता है वह भी नही हो, औषधि विशेष के योग से नखदन्तक्षत मर्दनादि द्वारा जो द्रवित करता है वह भी नही

---

1 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 179

2 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 179

हो, केवल भ्रामको-प्रतारक हो (प्रशसा पक्ष मे) हे कितव-विदग्ध, (तुम) न प्रस्तर इव क्रूरोसि—पत्थर की तरह क्रूर नही हो, प्रार्थना करने पर अपराधो को क्षमा भी करते हो। आकर्षक चुम्बक द्रावकेषु—आकर्षक, चुम्बक और द्रावक (शक्ति सम्पन्न) इषु बाणो वाले कामदेव (और) भ्रामक मनोहर (तथा) एक·—अद्वितीय, असि—हो। इत्यादि।

कुछ अन्य उदाहरण भी देखे—

(घ) 'खिन्नोऽसि मुञ्च शैल बिभृमो वयमिति वदत्सु शिथिलभुज·।
भरभुग्नविततबाहुषु गोपेषु हसन् हरिर्जयति।।'[1]

(ङ) 'विषधरतोऽप्यतिविषमः खल इति न मृषा वदन्ति विद्वासः।
यदयं नकुलद्वेषी सकुलद्वेषी पुनः पिशुनः।।[2]

पूरे ग्रन्थ मे सुबन्धु ने उपमा, उत्प्रेक्षा, परिसंख्या, विरोधाभासादि नाना अलङ्कारों मे सहस्राधिक बार श्लेष का प्रयोग किया होगा। किन्तु इतने श्लेष प्रयोग मे उसके सहायक कुछ ही शब्द हैं। यही नही अनेकत्र उसमे श्लिष्ट पदो और वाक्यो के प्रयोग मे पुनरुक्तियाँ भी की है।[3] इससे कवि की अशक्ति प्रकट हुई है और प्रतिभा की दरिद्रता भी प्रकाश मे आयी है। सुबन्धु के श्लेष प्रयोगो मे श्रोत्रिदुःश्रवत्व, क्लिष्टतादि का तो आरोप है ही एक और दोष भी है कि कुछ अलङ्कारो की शोभा उनसे दब गई है। इसका विवेचन तत्तद् अलङ्कारो के सन्दर्भ मे ही आगे किया गया है।

---

1 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 2

2 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 3

3 वासवदत्ता, श्रीरङ्गम सस्करण, भूमिका, पृ० स० 25

वासवदत्ता के प्रत्यक्षरमयत्व के दावे पर भी कुछ विचार कर लेना आवश्यक है। वस्तुत यहाँ मयट् प्राचुर्याथ मे ही प्रयुक्त हुआ है। लगभग सारे वर्णनो मे श्लेष के प्रचुर प्रयोग को ही ध्यान में रखकर कवि ने अतिशयोक्तिपूर्वक उक्त दावा किया है अन्यथा प्रत्यक्षर मे श्लेष का अनुसन्धान बालू से तेल निकालने के प्रयास की तरह ही व्यर्थ है। यद्यपि दूतियो के सप्रपच विकारसवादो की व्याख्या के अवसर पर वासवदत्ता के शिवराम प्रभृति कुछ टीकाकारो ने प्रत्यक्षरश्लेषमयत्व के दावे को चरितार्थ करने का प्रयास किया है। तथापि कथमपि खीच तान कर निकाले गये अधिकतर अर्थो का चारुत्व शून्य होने के कारण काव्य कोटि मे स्वीकार कर पाना ही कठिन लगता है। कुछ स्थलो पर निश्चय ही कुछ अक्षरो मे भी श्लेष प्रयुक्त है जिनमे से 'करवदरसदृशम्' तथा 'अवस्त्रीकृतम्' आदि कुछ की चर्चा ऊपर की जा चुकी है। **शिवराम पंडित** की व्याख्या मे इस पर विस्तारपूर्वक व्याख्यान मिलता है।

अर्थालङ्कार

जो अलङ्कार शब्दपरिवृत्तिसह होते है अर्थात् यदि उन शब्दो का परिवर्तन करके उनके समानार्थक दूसरे शब्द प्रयुक्त कर दिये जाएँ तो भी अलङ्कारों की कोई हानि नही होती है वे अलङ्कार शब्दाश्रित न होकर अर्थाश्रित होते हैं। इसलिए अर्थालङ्कार कहलाते है। रुद्रट ने सम्पूर्ण अर्थालङ्कारो को वास्तव, औपम्य, अतिशय और श्लेष मूलकता के आधार पर चतुर्धा विभक्त किया है।[1] रुद्रट की इस स्थापना मे पर्याप्त बल है किन्तु बाद मे

---

1 रुद्रट, काव्यालङ्कार, 7/9

कुवलयानन्दकार प्रभृति आलकारिको ने अर्थालङ्कारो के मूल मे उपमा को ही स्थापित करने का कुछ अशो मे सफल प्रयास किया।[1] यही नही **राजशेखर** ने उपमा को अलङ्कार शिरोरत्न, काव्य सम्पदा का सर्वस्व तथा कविवंश की माता तक कहा था।[2] यद्यपि उपमा को ही सभी अर्थालङ्कारो के मूल मे मानना निश्चय ही अति युक्त या अर्थवाद है तथापि तत्तद् नाना अर्थालङ्कारो मे उपमा शैलूषी का नाना भूमिकाओं मे नाना रूप धारण निर्विवाद है।

(1) उपमा : उपमेय और उपमान मे भेदज्ञान रहने पर भी गुणक्रियादि रूप समान धर्म के आधार पर साम्य का वर्णन ही उपमा है।[3] **विश्वनाथ** ने लक्षण को कुछ अधिक स्पष्ट करते हुए 'एक वाक्य मे दो पदार्थो के वैधर्म्य रहित वाच्य सादृश्य' को उपमा कहा है।[4] रूपकादि मे भी साम्य वर्णित होता है किन्तु वाच्य न होकर गम्य होता है, व्यतिरेक मे वैधर्म्य की भी उक्ति होती है उपमेयोपमा मे दो वाक्य होते हैं और अन्वय मे तो एक मात्र उपमान ही साम्य कहा जाता है। यही उपमा का अन्य अलङ्कारो से भेद है।[5]

उपमा के उपमान, उपमेय, साधारण धर्म और साधारण धर्म वाचक पद रूप चार अवयव होते हैं। पूर्णा और लुप्ता इसके दो प्रधान भेद है।

---

1 चित्रमीमासा

2 राजशेखर, साहित्य मीमासा

3 काव्यप्रकाश, 10/125 सूत्र

4 साहित्यदर्पण, 10/14 तथा वृत्ति भाग

5 साहित्यदर्पण, 10/15-18

उपर्युक्त सब अवयवो के पूर्ण होने पर पूर्णोपमा और सर्वाङ्ग पूर्णता के अभाव मे लुप्तोपमा कही गई है।[1]

इनके अन्य अनेक अवान्तर भेदो का भी शास्त्र ग्रन्थो मे विवरण मिलता है।

वासवदत्ता मे श्लेष के बाद कदाचित् सर्वाधिक (अनेक शताधिक) बार प्रयुक्त होने पर भी उपमा की विच्छिति नही बन पायी है। प्राय सर्वत्र राजा चिन्तामणि राजकुमार कन्दर्पकेतु, स्वप्नदृष्ट कन्या, विन्ध्याटवी तथा कुसुमपुर आदि के वर्णनो मे श्लेष उपमा पर छाया हुआ है। अप्रस्तुत विधान भी कोई सौन्दर्यात्मक बिम्ब उपस्थित कर सकने मे असमर्थ है। इतना ही नही पद तथा दशादि के भेद से, कभी-कभी किसी विशेषण की योजना के द्वारा भी भेद की परिकल्पना करके एक ही उपमान वस्तु की एक ही स्थान पर बहुधा उपमाये घटित हुई हैं। कि बहुना वासवदत्ता मे अनेक हीनोपमाएँ और अधिकोपमाए भी कवि की औचित्य प्रवृत्ति के अभाव मे सहृदयो को उद्विग्न करने वाली है।[2]

वासवदत्ता मे प्रयुक्त उपमाओं की एक बानगी कन्दर्पकेतु के वर्णन मे देखे।

(क) 'तस्य च पारिजात इवाश्रितनन्दनः, हिमालय इव जनितशिवः, मन्दरइव भोगिभोगाङ्कितः, कैलास इव महेश्वरोपभुक्तकोटिः, मधुरिव

---

1 काव्यप्रकाश, 10/125 सूत्र

2 वासवदत्ता श्रीरङ्गम् सस्करण, भूमिका, पृ0 स0 20

नानारामानन्दकरः, क्षीरोदमथनोद्यतमन्दर इव मुखरितभुवन, रागरज्जुरिवोल्लासितरतिः, ईशानभूतिसञ्चय इव सन्ध्योच्छलित, शरन्मेघ इवावदातहृदयो विष्णुपदावलम्बी च, पार्थ इव समरसासहसोचित, कंस इव कुवलयापीडभूषित, ताक्ष्र्य इव विनताऽऽनन्दकर सुमुखनन्दनश्च, विष्णुरिव क्रोडीकृतसुतनु, शान्तनव इव स्ववशस्थापितकालधर्म, कौरवव्यूह इव सुशर्माधिष्ठित, जलधरसमय इव विमलतरवारिधारात्रासितराजमण्डल, सुबाहुरपि रामानन्दी, समदृष्टिरपि महेश्वरः, मुक्तामयोऽप्यतरलमध्यः, वशप्रदीपोऽप्यक्षत-दशस्तनयोऽभूत्कन्दर्पकेतुर्नाम'।[1]

(ख) वसन्त वर्णन मे श्लेष बोझिल एक और उदाहरण देखे—

'दुर्जन की तरह सतामरस, दुष्कुल की तरह जातिहीन, रावण की तरह आपीतलोहितपलाशशतसेवित, महाशृङ्गारिक की तरह सुगन्धवह, सुराजा की तरह समृद्ध कुवलय, वास्तुक की तरह विवर्धित सुखाश.....कैवर्त्त की तरह बद्धराजीवोत्पलसाल,.....महावीर की तरह अधरीकृतदमनक, षिङ्ग की तरह अम्लानसुभग बसन्त काल आ गया।'[2]

अपेक्षाकृत कुछ सुन्दर उपमाओं के भी उदाहरण देखे—

(ग) 'यस्मै चानुगतदक्षिणसदागतये, नेत्रश्रुतिसुखदाय, कोमलकोकिलरवाय, विकासितपल्लवाय, कृतकान्तारतरङ्गाय, सुरभिसुमनोऽभिरामाय, सर्वजनसुलभपद्माय, विस्तृतकनकसम्पदे अतिक्रान्तदमनकाय वसन्तायेव,

---

1 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 21-24

2 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 113-116

उपवनलता इवोत्कलिकासहस्रसङ्कुल भ्रमरसङ्गताः, प्रबालहारिण्य विलसद्वयसस्तरुण्य स्पृहयाञ्चक्रु ।'[1]

ऐतिहासिक पौराणिक व्यक्तियो को उपमान बनाने से अपेक्षित सौन्दर्य की सृष्टि मे असमर्थ उपमाओं का भी उदाहरण देखे—

(घ) 'सुयोधनधृतिमिव कर्णविश्रान्तलोचनाम्, वामनलीलामिव दर्शितवलिविभङ्गाम्, वृश्चिकराशिरविस्थितिमिव अतिक्रान्तकन्यातुलाम्, उषामिव अनिरुद्धदशनसुखाम्, शचीमिव नन्दनेक्षणरुचिम्, पशुपति-ताण्डवलीलामिव उल्लसञ्चक्षुःश्रवसम्, विन्ध्याटवीमिव उत्तुङ्गश्यामलकुचाम् वानरसेनामिव सुग्रीवाङ्गदशोभिताम्,... ..कन्यामपश्यत्स्वप्नो।'[2]

(2) उत्प्रेक्षा : प्रकृत (अर्थात् वर्ण्य उपमेय) की सम (अर्थात् उपमान) के साथ सम्भावना (अर्थात् उत्कटैककोटिक सन्देह) उत्प्रेक्षा कहलाती है।[3] **विश्वनाथ** ने किसी प्रस्तुत वस्तु की अप्रस्तुत के रूप मे सम्भावना करने को उत्प्रेक्षा कहा है।[4] जिसमे एक कोटि उत्कृष्ट हो, उस संशयज्ञान को सम्भावना कहते है।[5] उत्प्रेक्षा मे उपमान की कोटि प्रबल रहती है। अतः जैसा कि काव्यप्रकाश के टीकाकार वामन झलकीकर ने लिखा है—**'उत्कटोपमानकोटिकम्' प्रकृतविषकम् संशयज्ञानम् उत्प्रेक्षा'**। इसके भी वाच्य और प्रतीयमान। आदि भेद शास्त्रो मे वर्णित है।

---

1 वासवदत्ता, चौ0 स0,पृ0 स0 26-28

2 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 47-48

3 काव्यप्रकाश, 10/136 सूत्र तथा वामन झलकीकर टीका

4. साहित्यदर्पण, 10/40

5 नागरेश्वरटीका

वासवदत्ता मे प्रयुक्त अर्थालङ्कारो मे कुछ त्रुटियो के बावजूद उत्प्रेक्षा ही कदाचित् सौन्दर्य बोध की दृष्टि से, कवि की प्रतिभा के निदर्शन के रूप मे भी श्रेष्ठ है।

वासवदत्ता मे भोरही रात के वर्णन मे आख्यमान चन्द्रमा के सम्बन्ध मे कुछ सुन्दर वाच्योत्प्रेक्षाओं का उदाहरण देखे—

(क) अनन्तर उसने कभी जब रात समाप्त हो रही थी, . अथ च कदाचिदवसन्नाया यामवत्या दधिधवलकालक्षपणकग्रासपिण्डइव, निशायमुनाफेनपुञ्ज इव मेनकानखमार्जनधवलशिलाशकल इव, मधुच्छत्रच्छायमण्डलोदरे, पश्चिमाचलोपधानसुखनिष्णशिरसो राजतताटङ्कचक्र इव श्यामश्यामायाः, शेषमधुभाजि चषक इव विभावरीवध्वाः, अपरजलधिपयसि शङ्खकान्तिकामुक इव मज्जति कुमुदिनीनायके।'[1]

यहाँ डूबता हुआ चन्द्रमण्डल उपमेय है। फेन, पुंज, धवल शिला शकल, मधु का छत्ता, राजत ताटङ्क चक्र तथा शेषमधुभाजिचषक उपमान है। उक्त उपमेय की उक्त उपमानो के रूप मे सम्भावना की गई है अतः उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। भोरही रात के ही वर्णन मे भोर के टिमटिमाते दीपकों के वर्णन मे कुछ सुन्दर हेतूत्प्रेक्षाओं को देखें—

(ख) 'सकलनिपीतनैशतिमिरसघातमतनीयस्तया वोढुमसमर्थेष्विव, कज्जलव्याजादुद्वमत्सु, कामिमिथुननिधुवनलीलादर्शनार्थ मिवोद्ग्रीविकाशतदा-शतदानखिन्नेषु... ..शरणागतमिवाधोनिलीनतिमिरमवत्सु.....इत्यादि।'[2]

---

1 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 31-32

2 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 33-34

यहाँ दीपको से निकलते हुए काजल के हेतु के रूप मे अन्धकारसमूह का अत्यधिक पान तथा कामियो की लीलाओं को देखने के कारण उनकी खिन्नता आदि सम्भावित हुई है इसलिए यहाँ हेतूत्प्रेक्षा है।

वसन्तकाल के वर्णन मे भ्रमर को लेकर कवि की कुछ सुन्दर उत्प्रेक्षाये भी देखे—

(ग) 'कुसुमशरस्य नवचूतप्रसवशरमूले निलीयमाना मधुकरावलिर्नामाक्षरपक्तिरिव रेजे।[1]

यहाँ आम्रमजरियो के मूल मे निलीन भ्रमरपक्ति उपमेय है। उसमे कामदेव के नामाक्षरपक्तित्व की उत्कट सम्भावना की गई है इसलिए यहाँ उत्प्रेक्षा है।

उगते हुए चन्द्रमा के वर्णन मे भी कवि के सौन्दर्यबोध का, जिसे उसने श्लेष विन्यास के लोभ मे ही अन्ततः अपदस्थ कर दिया है, एक उन्मेष भी देखे—

'अथ क्षणेन क्षणदाराजकन्याकन्दुक इव, कन्दर्पकनकदर्पण इव, उदयगिरिबालमन्दारपुष्पस्तबक इव, प्राचीललनाललाटतटघटितबन्धूककुसुमलितकचक्राकारः, कनककुण्डलमिव नभःश्रिय , दिग्वधूप्रसाधिकाहस्तस्रस्तालक्तकपिण्ड इव। शातकुम्भकुम्भ इव गगनसौधतलस्य, प्रस्थानमङ्गलकलश इव त्रिभुवनविजयविनिर्गतस्य मकरकेतोः, ...प्राच्यशैलशिखरा-

1 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 117-118

ग्रप्ररूढजपाकुसुमच्छविः, स्वच्छकुङ्कमपिण्डपूर्णपात्रमिव निशाविलासिन्या· कुङ्क मारुणैकस्तनकलश इव आखण्डलाशाङ्गनाया ।[1]

वर्षावर्णन मे सुन्दर उत्प्रेक्षा का प्रयोग देखिए—

(ङ) 'जलददारुणि लोलतडिल्लताकरपत्रदारिते पवनवेगनिर्धूताश्चूर्णनिकराइव जलकणा बभु । विच्छिन्नदिग्वधूहारमुक्तानिकरा इव, खरपवनवेगभ्रमितघन-घरट्टघट्टनसचूर्णिततारानिकरा इव, त्रिभुवनविजिगीषोर्मकरध्वजस्य प्रस्थानलाजा-ञ्जलय इव करका व्यराजन्त। नवशाद्वल सेन्द्रगोप महीमहिलाया· शुकागश्यामल लाक्षारसाकित स्तनोत्तरीयामिवालक्ष्यत।'[2]

वासवदत्ता के प्रारम्भ मे ही एक सर्वथा अनूठी उत्प्रेक्षा भी देखे। अनूठी इस अर्थ मे कि और उत्प्रेक्षाओं का तो बराबर नाना कवियो मे कही न कहीं प्रयोग देखने को मिल जाता है लेकिन वक्ष्यमाण उत्प्रेक्षा सम्पूर्ण सस्कृत साहित्य मे कदाचित् पुन· प्रयुक्त नही हुई है। ऐसी उत्प्रेक्षा का पुन एकत्र प्रयोग आधुनिक युग मे भोजपुरी के एक कवि ने **'कुँवर सिंह महाकाव्य'** मे किया है। शिव की स्तुति मे यह ललित उत्प्रेक्षा देखे—

(च) 'स जयति हिमकरलेखा चकास्ति यस्योमयोत्सुकान्निहिता। नयनप्रदीपकज्जलजिघृक्षया रजतशुक्तिरिव।।'[3]

यहाँ चन्द्रमा उपमेय है। रजत शुक्ति उपमान है। उपमेय मे उपमान की

---

1 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 173-74

2 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 248-249

3 वासवदत्ता, चौ0 स0, श्लोक सख्या 4

उत्कट सम्भावना के कारण उत्प्रेक्षा अलङ्कार है और हेतु तथा फल उत्प्रेक्षित होने के कारण हेतु तथा फलोत्प्रेक्षा है।

(3) विरोधाभास : वास्तव मे विरोध न होने पर भी विरुद्धरूप मे जो वर्णन करना यह विरोधाभास अलङ्कार है।[1] जाति का जाति आदि चार के साथ विरोध हो सकता है, गुण का गुणादि तीन के साथ, क्रिया का क्रिया तथा द्रव्य के साथ और द्रव्य का द्रव्य के साथ विरोध होने पर यह दस प्रकार का विरोधाभास अलङ्कार होता है।[2]

विरोधाभास भी सुबन्धु का अत्यन्त प्रिय अलङ्कार है। वासवदत्ता मे इसका प्रयोग, राजा चिन्तामणि, राजकुमार कन्दर्पकेतु, स्वप्नदृष्ट कन्या, विन्ध्य गिरि, कुसुमपुरादि प्रायः सभी वर्णनो मे अधिकतर अन्त मे, कही बीच मे भी हुआ है।

चिन्तामणि के वर्णन मे विरोधाभास का एक उदाहरण देखे—

(क) 'चिन्तामणि नाम का एक राजा हुआ था, जो विद्याधर (देवयोनिविशेष) होते हुए भी सुमना (देव) था। देवयोनिविशेष का देव होना विरुद्ध वर्णन है जिसका परिहार विद्याधर का अर्थ चारो विद्याओं को धारण करने वाला तथा सुमना का अर्थ शोभन मन वाला करने से हो जाता है। धृतराष्ट्र (दुर्योधनादि का पिता) होते हुए भी गुण प्रिय (भीमसेन से प्रेम करने वाला) या धृतराष्ट्र का पुत्र घातक भीम से प्रेम वर्णन विरुद्ध है किन्तु वस्तुतः राज्य प्रशासन

---

1 काव्यप्रकाश, 10/165 सूत्र

2 काव्यप्रकाश, 10/166 सूत्र

करने वाला (धृतराष्ट्र) और गुणों से प्रेम करने वाला (गुणप्रिय) अर्थ मे पूर्व आभासित अर्थ परिहृत हो जाता है। पृथ्वी पर रहने पर भी (क्ष्मानुगतोपि) जो सुधर्माश्रित (देव सभा मे स्थित) था। पृथ्वी पर स्थित व्यक्ति का देव सभा मे उपस्थित होना विरुद्ध वर्णन है किन्तु वस्तुत क्षमानुगत का अर्थ क्षमाशील और सुधर्माश्रित का अर्थ उत्तम धर्म परायण ज्ञात होने पर विरोध परिहृत हो जाता है।' ... इत्यादि।[1]

इसी वर्णन के अन्त मे एक और श्लेषमूलक विरोधाभास का उदाहरण देखे—

(ख) 'शङ्करोऽपि न विषादो, पावकोऽपि न कृष्णवर्त्मा, आश्रयाशोपि न दहनः . ।[2]

यहां शङ्कर होते हुए भी राजा का विषादी (कालकूट विषपायी न होना विरुद्ध है किन्तु वस्तुतः शङ्कर का कल्याण करने वाला और न विषादी का विषाद न करने वाला अर्थ ज्ञात होने पर विरोधाभास का परिहार हो जाता है।

इसी प्रकार पावक का कृष्णवर्त्मा न होना विरुद्ध वर्णन है किन्तु वस्तुतः यहॉ पावक का अर्थ पवित्र करने वाला और नकृष्णवर्त्मा का अर्थ अकुत्सित मार्ग वाला ज्ञात होने पर विरोध का परिहार हो जाता है। आश्रयाश होने पर भी राजा का दहन (अग्नि) न होना विरुद्ध है किन्तु

---

1 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 सं0 10

2 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 19

वस्तुत· आश्रयाश का अर्थ आश्रयो की आशा और दहन· का अर्थ सन्तप्ति न करने वाला ज्ञात होने पर दोष का परिहार हो जाता है। इस प्रकार यहाँ विरोधाभास अलङ्कार है।

सुबन्धु श्लेष पर आधृत विरोध का प्रयोग करने मे भी पटु है। इसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

(ग) 'यस्य च रिपुवर्ग सदा पार्थोऽपि न महाभारतरणयोग्य , भीष्मोऽप्यशान्तनवेहित , सानुचरोऽपि न गोत्रभूषित ।[1]

एक अन्य उदाहरण भी दर्शनीय है—

(घ) 'धनदेनापि प्रचेतसा, गोपालेनापि रामेण, प्रियंवदेनापि पुष्पकेतुना, भरतेनापि लक्ष्मणेन, तिथिपरेणाप्यतिथिगोपालेनापि रामेण, प्रियवदेनापि पुष्पकेतुना, भरतेनापि लक्ष्मणेन, तिथिपरेणाप्यतिथिसत्कारप्रवणेन, असंख्येनापि सख्यावता अमर्मभेदिनाऽपि वीरतरेण . निवासिजनेनानुगतम्।[2]

(4) परिसंख्या : कोई पूछी गई या बिना पूछी हुई कही गई बात जो उसी प्रकार की अन्य वस्तु के निषेध मे पर्यवसित होती है वह परिसंख्या कहलाती है।[3] परिसख्या श्लेषमूलक और श्लेषरहित दो प्रकारकी होती हैं किन्तु श्लेष के साथ इसका रङ्ग कुछ और ही हो जाता है। वासवदत्ता मे सर्वत्र परिसख्या के मूल मे श्लेष ही है। यहाँ राजा चिन्तामणि और कुसुमपुर

---

1 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 18

2 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 87

3 काव्यप्रकाश, 10/184 सूत्र

नरेश शृङ्गारशेखर के वर्णनो मे दो स्थलो पर इसका प्रयोग हुआ है। शृङ्गारशेखर के वर्णन मे इस अलङ्कार के चमत्कार का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

(क) ''राजनीति मे चतुर राजा शृङ्गारशेखर के चतुरब्धिमेखला वाली वसुमति पर शासनकाल मे जहाँ वृषोत्सर्ग (वृष—बैल का उत्सर्ग—मोचन, स्वतन्त्र विचरण के लिए छोड दिया जाना) पितृ कार्यो (मृतक श्राद्धो) मे ही था अन्यत्र प्रजाओं मे वृष-धर्म का, उत्सर्ग—त्याग नही था। कन्यातुलारोहण (कन्या और तुला राशियो मे सक्रान्ति) शशि (चन्द्रमा) मे था, प्रजाओं मे कन्यातुलारोहण (कन्याओं का परीक्षार्थ तुला पर आरोहण) नही था। यद्वा कन्याओं के विषय मे तुला रोहण नही था। शूल और व्याघात (ज्योतिषशास्त्रादि प्रसिद्ध विष्कम्भ आदि योग विशेष) की चिन्ता योगो (विष्कम्भादि योगो के प्रसङ्ग) मे ही थी, प्रजाओं मे शूल व्याघात—शूली पर चढ़ा कर मारे जाने की चिन्ता नही थी। दक्षिणवामकरण (वह इससे दक्षिण है यह वाम इस प्रकार का व्यवहार) दिशाओं के निश्चय मे ही था प्रजाओं मे दक्षिणवामकरण अर्थात् दाये बाये करना—टाल-मटोल की वृत्ति—नही थी। दान (मदजल) का च्छेद (समाप्त होना) हाथियो के गण्डस्थलो मे मिलता था प्रजाओं मे दान-दानक्रिया का च्छेद—विच्छेद नही था। शर (दध्यग्र भाग साढी) का भेद—मन्थम—खधियो मे था प्रजाओं मे शर-बाण द्वारा किसी का भेद—विदारण नही होता था। श्रृंखलाबन्ध (रचना मे एक बन्ध विशेष) वर्ण ग्रथनाओं मे (वर्णो की रचनाओं मे) ही था, प्रजाओं मे श्रृंखला-हथकड़ी, बेड़ी का बन्ध-बन्धन ऐसे किसी अपराध के अभाव में नहीं था। उत्प्रेक्षा और

आक्षेप (इस नाम के प्रसिद्ध अलङ्कार) काव्यालङ्कारो मे थे, प्रजाओं मे उत्प्रेक्षा-अनवधानता-वश आक्षेप-निन्दा नही थी। सर्वविनाश (सर्वनाश अर्थात् इत् सञ्ज्ञा लोपादि द्वारा सबका लोप) क्विपो (क्विप् प्रत्यय) का होता था प्रजाओं मे किसी का सर्वनाश नही होता था।[1] यहाँ वृषोत्सर्गादि का एकत्र होना और अन्यत्र प्रजाओं मे न होना अर्थात् कही वस्तु मे अन्य की शब्द द्वारा व्यावृत्ति हुई है अत परिसख्या अलङ्कार है।

(5) मालादीपक : यह वह अलङ्कार है जो 'धर्मी' रूप मे वर्णित अनेक वस्तुओं का, उत्तरोत्तर, एकधर्माभिसम्बन्ध (एक धर्म से सम्बन्ध होना) कहा जाया करता है।[2] **मम्मट** ने इसी को **'पूर्वेण पूर्वेण वस्तुना उत्तरमुत्तरं चेदुपक्रियते तन्मालादीपकम्'** इस प्रकार कहा है।[3]

वासवदत्ता मे मालादीपक का भी एकत्र राजकुमार कन्दर्पकेतु के वर्णन मे सुन्दर प्रयोग है—

''युद्धभूमि मे जिसके भुजदण्ड ने कोदण्ड को, कोदण्ड ने बाणो को, बाणो ने शत्रु के सिरो को, सिरो ने भूतल को, भूतल ने अभूतपूर्व नायक को, नायक ने कीर्ति को, कीर्ति ने सात समुद्रो को, समुद्रो ने सतयुगादि अतीत पराक्रमी राजाओं के चरितो के स्मरण को, स्मरण ने स्थिरता को और स्थिरता ने प्रति क्षण आश्चर्य को प्राप्त किया।''[4]

---

1 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 103-104

2 साहित्यदर्पण, 10/77

3 काव्यप्रकाश, 10/156 सूत्र, वृत्ति

4 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 28

यहाँ पूर्व पूर्व वस्तु ने उत्तरोत्तर का उपकार किया है अथवा भुजदण्ड, कोदण्ड आदि अनेक धर्मियो का समासादितम् क्रियारूप एक धर्म से यथोत्तर सम्बन्ध है। अतः मालादीपक अलङ्कार है।

(6) **रूपक** : रूपक वह अलङ्कार है जिसे (विषयी अथवा उपमान द्वारा) अनपह्नुत त (न छिपाए गये) विषय (आरोप विषय-उपमेय) पर विषयी (उपमान) का अभेदारोप कहा जाया करता है।[1] परम्परित, साङ्ग तथा निरङ्ग रूप इसके तीन भेद कहे गये है।[2] इनमे भी अनेक अवान्तर भेद शास्त्रो मे वर्णित है।[3]

वासवदत्ता मे रूपक की विच्छिति बहुत उल्लेखनीय नही है। यह सर्वत्र उत्प्रेक्षादि का भङ्ग या साधक बनकर ही आया है। स्वप्नदृष्ट कन्या के वर्णन मे मेखलादाम् के सम्बन्ध मे इस अलङ्कार की यत्किंचित विच्छित्ति अधोलिखित उदाहरण मे द्रष्टव्य है—

' जघनरूपी काम नगर की वन्दनमालिका रूप, कामदेव रूपी महानिधि के जघनरूपी कोषागार के सोने के परकोटे रूप, रोमराजि रूपी लता के आलवाल वलय रूप, . ..सारे हृदय रूपी बन्दी जनो के निवास स्थान के परिवावलय रूप, समस्त संसार ने नेत्र रूपी पक्षियो के निवास के लिए निर्मित पिजड़े की स्वर्णमय शलाकाओं के बन्धन गुण रूप मेखला से

---

1 साहित्यदर्पण, 10/28

2 साहित्यदर्पण, 10/28

3 साहित्यदर्पण, रूपक प्रकरण

परिकलित जघनस्थल वाली... कन्या को देखा।[1]

यहाँ निरपह्नव विषय (उपमेय) जघन पर भेद रहित भवन-नगर का आरोप हुआ है अत रूपक है। जघन पर मदन नगर के आरोप के कारण ही मेखला माला पर तोरण बन्दनमालिका का आरोप हुआ है अत यह परम्परित रूपक है। आरोप है अश्लिष्ट शब्द निबन्धन होने के कारण परम्परित रूपक भी यहाँ अश्लिष्ट निबन्धन तथा जघन पर काम नगर का एक आरोप ही दूसरे आरोप का कारण है अत शास्त्रीय विवेचनानुसार अश्लिष्ट शब्दनिबन्धन केवल परम्परित रूपक है। इसी प्रकार मन्मथ महानिधि इत्यादि मे निरपह्नव उपमेय पर कामदेव पर उपमान महानिधित्व का भेद रहित आरोप होने से रूपक है। क्योकि कामदेव पर महानिधित्व के आरोप के कारण ही जघन पर कोष मन्दिर का और जघन या कोष मन्दिरत्य के आरोप के कारण ही मेखलादाम् पर कनकप्राकारत्व का आरोप हुआ है और इन आरोपो मे कही भी श्लेष का लेश नही है अत यहाँ अश्लिष्ट शब्दनिबन्धन-माला-परम्परितरूपक है। इसी प्रकार अन्यत्र भी विचार्य है।

यहाँ उपर्युक्त उदाहरण मे कुछ लोगो ने इवादि पद के अभाव मे गम्योत्प्रेक्षा मानी है और यही प्रधान अलङ्कार है। रूपक यहाँ इसका साधकभर है किन्तु यहाँ उक्त स्थल पर रूपक मानकर ही उदाहरण दिया गया है। गम्योत्प्रेक्षा होने पर भी अङ्ग रूप मे रूपक रहेगा ही और तदनुसार व्याख्या करनी होगी।

---

1 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० सं० 39-40

(7) रत्नावली : प्रकृतार्थ के क्रमिक न्यास को रत्नावली कहते हैं अर्थात् जहाँ प्रकृत अर्थों को प्रसिद्ध क्रम से रखा जाय वहाँ रत्नावली नामक अलङ्कार होता है।[1]

वासवदत्ता मे केवल एक स्थल पर, स्वप्नदृष्ट कन्या के वर्णन मे इस अलङ्कार की सुन्दर विच्छिति मिलती है। स्वप्नदृष्ट कन्या अपने चमकते अलङ्कारादि के कारण मानो ग्रहमयी हो, इसका चित्र रत्नावली मे देखिए—

'दीप्तिमान अलङ्कारो (सूर्य) शुभ्रकान्ति युक्त स्मित (चन्द्र), रक्तवर्ण अधर (मगल), सौम्य दर्शन (बुध), विशाल नितम्ब मण्डल (बृहस्पति), श्वेत हार (शुक्र) मन्दगामी चरणो (शनिचर) काले बालो (राहु) और प्रफुल्ल नेत्रकमलो (केतु) के कारण ग्रहमयी सी .. कन्या को स्वप्न मे देखा।[2]

यहाँ प्रकृतार्थ-ग्रहो के क्रमिक न्यास के कारण रत्नावली अलङ्कार है।

(8) विभावना : विभावना वह अलङ्कार है जिसे कारण के अभाव मे भी कार्य की उत्पत्ति का वर्णन कहा करते है। विभावना के दो प्रकार है (1) वह जिसमे कारणाभाव मे कार्योत्पत्ति का निमित्त प्रतिपादित हो अर्थात् 'उक्तनिमित्ता' विभावना और (2) वह जिसमे कारणाभाव मे कार्योत्पत्ति के निमित्त का प्रतिपादन न किया जाय अर्थात् 'अनुक्तनिमित्ता' विभावना।[3]

---

1 कुवलयानन्द कारिका, 140

2 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 48-49

3 साहित्यदर्पण, 10/66-67

वासवदत्ता मे एकत्र मकरन्द के मित्रवत उपदेश मे खलो के वर्णन मे इसकी एक विच्छित्ति मिलती है। मकरन्द कहता है, 'दुर्जनो मे उत्पादित दु ख रूपी अङ्कुर बिना बीज (अकारण) के ही पेदा होते है ओर बिना काण्ड (डाल पात) के ही बढते है।[1]

यहाँ बिना बीज और काण्ड के खलव्यसन अङ्कुर और प्ररोहण वर्णित है और इसका कोई निमित्त भी नही बताया गया ह। अत यहाँ 'अनुक्तनिमित्ता' 'विभावना अलङ्कुर है।

(9) मीलित : मीलित वह अलङ्कार है जिसे किसी समान लक्षण वाली वस्तु से किसी दूसरी वस्तु के गोपन (छिपाने) के वैचित्र्य मे देखा जाया करता है।[2] वासवदत्ता मे कन्दर्पकेतु के प्रति मकरन्द के मित्रवत उपदेश के सन्दर्भ मे ही मीलित अलङ्कार की भी विच्छित्ति मिलती है। मकरन्द कहता है—माधुर्य, शैत्य, शुचित्व, सन्तापादि के कारण और पय शब्द साम्य के कारण मित्रता को प्राप्त, उसके मिलने से बढे हुए क्षीर का मेरे सामने ही विनाश ठीक नही है ऐसा सोचकर ही मानो जल जाता है।[3]

यहाँ तुल्य लक्षण वस्तु दूध से अन्य वस्तु जल के छिप जाने के कारण मीलित अलङ्कार है।

(10) अर्थान्तरन्यास : साधर्म्य अथवा वैधर्म्य के द्वारा 'सामान्य' का विशेष से, 'विशेष' का सामान्य से, 'कार्य' का कारण से और 'कारण' का

---

1 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 59-60

2 साहित्यदर्पण, 10/89

3 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 62

कार्य से समर्थन होने पर अर्थान्तरन्यास अलङ्कारहोता है। इस प्रकार अर्थान्तरन्यास अलङ्कार के आठ भेद सिद्ध होते है।[1] वासवदत्ता मे अनेक बार अर्थान्तरन्यास की विच्छिति मिलती है। इसके चमत्कार के दो उदाहरण यहॉ प्रस्तुत है—

(क) 'दूसरे के गुणो को प्रकट करने वाले सज्जन और भी अधिक मनोहर प्रतीत होते है, कुमुदो को खिलाने वाली चॉदनी पहले से अधिक रमणीक मालूम होती है।'[2]

यहॉ विशेष 'वहति विकाशितकुमुदः' आदि द्वारा उपर्युक्त सामान्य 'भवति सुभगत्वमधिक विस्तारितपरगुणस्य सुजनस्य' का समर्थक है अतः अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

(ख) 'दुर्जनो की दृष्टि निन्दित कार्यो मे अत्यन्त निपुण होती है। जैसे उलूको की दृष्टि अन्धकार मे भी रूप देखती है।'[3]

यहॉ भी पूर्ववत् विशेष द्वारा सामान्य का समर्थन हुआ है अतः अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है। एक और उदाहरण गद्य भाग मे देखे—

(ग) 'अतिदूरप्रवृद्धेन मधुना जगति को वा न विक्रियते, यदतिमुक्तको मुनिरपि विचकास।[4]

यहॉ दूर तक फैले हुए या खूब चढे हुए मधु (वसन्त ऋतु और मदिरा)

---

1 साहित्यदर्पण, 10/61

2 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 3

3 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 4

4 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 117

से कौन विकृत नही हो जाता, इस सामान्य का समर्थन, अनि मुक्तक मुनि के विकसित होने रूप विशेष से, हो रहा है। अत यहाँ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

(11) दृष्टान्त : समान धर्म से युक्त उपमान और उपमेय रूप वाक्यार्थो (अथवा प्रकृत और अप्रकृतरूप धर्मिद्वय मे) बिम्ब-प्रतिबिम्बभाव की झलक मिलने पर दृष्टान्त अलङ्कार होता है। यह भी साधर्म्य और वैधर्म्य के भेद से दो प्रकार का होता है।[1]

वासवदत्ता के प्रारम्भिक श्लोक मे दृष्टान्त की विच्छिति का अत्यन्त रमणीय विन्यास मिलता है। विश्वनाथ कविराज ने साहित्यदर्पण मे दृष्टान्त के उदाहरण के रूप मे भी इस श्लोक को उद्धृत किया है। श्लोक इस प्रकार है—

'महाकवियो की सूक्तियाँ प्रसाद-माधुर्यादिगुणो के अनुभव के बिना भी केवल सुनने मात्र से, कानो मे मधु की वर्षा करतीहै। जैसे, मालतीपुष्पो की माला सुगन्ध ग्रहण किये बिना भी दर्शनमात्र से दृष्टि को आकर्षित करती है।'[2]

यहाँ अविदित गुणापि इत्यादि तथा अनधिगत परिमलापि इत्यादि दो वाक्यो मे धर्म सहित वस्तु-उपमेय सत्कवि-भणिति और उपमान मालतीमाला मे प्रतिबिम्बित हो रहा है अतः दृष्टान्त अलङ्कार है।

---

1 साहित्यदर्पण, 10/50

2 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 6

(12) निदर्शना : सम्भव अथवा असम्भव (उपपन्न अथवा अनुपपन्न) 'वस्तुसम्बन्ध' अर्थात् दो वाक्यार्थो के परस्परान्वय मे बिम्बप्रतिबिम्बभाव (सादृश्य) की झलक मिलने पर निदर्शना अलङ्कार होता है।[1]

वासवदत्ता मे एक प्रारम्भिक श्लोक मे सभवद्-वस्तुसम्बन्ध निदर्शना की विच्छित का उदाहरण देखे— 'गुणवान् पुरुषो को भी अपने स्वरूप का ज्ञान दूसरो के द्वारा ही होता है क्योकि ऑखे अपने बडप्पन का दर्शन दर्पण मे ही कर सकती है।'[2]

यहाँ गुणियो को निजरूप की प्रतिपत्ति तथा ऑखो को अपनी महिमा का दर्शन ये दो वस्तुएं है। दोनो को स्वरूप का ज्ञान परत होता है। अतः दोनो मे परस्पर सम्बन्ध सम्भव है। परत प्रतिपत्ति दोनो मे समान्य होने के कारण इनमे बिमबप्रतिबिम्बभाव भी प्रतीत होता है। अत यहाँ सम्भवद्-वस्तुसम्बन्ध निदर्शना है।

(13) काव्यलिङ्ग : जिसे किसी अर्थ के उपपादन के लिए 'वाक्यार्थ' अथवा 'पदार्थ' के हेतुरूप से उपनिबधन मे देखा जाया करता है उसे काव्यलिङ्ग अलङ्कार कहते है।[3]

वासवदतता मे इस अलङ्कार की भी विच्छित्ति एकाधिक बार मिलती है। इसका एक उदाहरण राजकुमार कन्दर्पकेतु के प्रति मकरन्द के उपदेश मे देखे—

'फिर दुष्ट लोग तुम्हारी योग्यता के प्रतिकूल, हमारे लिए अवाञ्छनीय

---

1 साहित्यदर्पण, 10/51-52

2 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 6

3 साहित्यदर्पण, 10/62

तुम्हारी निन्दा करते है, क्योकि दुष्टो का हृदय, (दूसरो की) निन्दा के प्रचार मे तृप्ति का अनुभव किया करता हैं।'[1]

यहॉ दूसरे वाक्य 'अनिष्टोद्भावनरसोत्तर' इत्यादि का अर्थ पूर्व वाक्य 'खलापुन ' इत्यादि के अर्थ के लिए हेतुरूप मे वर्णित है। अत वाक्यार्थगत हेतुक काव्यलिङ्ग है।

काव्यलिङ्ग का एक और उदाहरण राजा शृङ्गारशेखर के वर्णन मे अधोलिखित श्लोक मे मिलता है—

'सुराणा पाताऽसौ स पुनरतिपुण्यैकहृदयो
ग्रहस्तस्यास्थाने गुरुरुचितमार्गे स निरतः।
करस्तस्यात्यर्थ वहति शतकोटिप्रणयिता
स सर्वस्वं दाता तृणमिव सुरेन्द्र विजयते।।'[2]

यहॉ 'सुरेन्द्र विजयते' इस वाक्यार्थ के प्रति पूर्व वाक्यार्थो का हेतुत्वेन उपन्यास किया गया है अतः काव्यलिङ्ग अलङ्कार है।

(14) असङ्गति : असङ्गति वह अलङ्कार है जिसे कार्य और कारण के भिन्न-भिन्न आश्रय मे अवस्थान का वर्णन कहा जाता है (जिसका निमित्त कारण-वैचित्र्य हुआ करता है)।[3] वासवदत्ता मे असङ्गति का एक सुन्दर उदाहरण राजा शृङ्गारशेखर के वर्णन मे देखे—

---

1 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 52

2 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 101

3 साहित्यदर्पण, 10/68

'युद्धभूमि मे इधर तो शृङ्गारशेखर ने धनुष की प्रत्यञ्चा का आकर्षण किया उधर (उसी समय) शत्रु निष्प्राण हो गये। इधर, शत्रु सेना मे (शृङ्गारशेखरके) बाणो ने लक्ष्यभेदन किया उधर शत्रुओं का यश शृङ्गारशेखर ने प्राप्त कर लिया। इधर, उसने क्षमा का परित्याग किया तो उधर शत्रु-सेना के मस्तको ने स्थिति छोडदी—वे कटकर पृथक जा पडे। शत्रु सेना मे पञ्चतत्त्व (पाच सख्या)—मृत्यु उपस्थित हुई परन्तु शृङ्गारशेखर को अन्यसख्या, अन्य युद्ध प्राप्त न हुआ। क्योकि एक ही युद्ध मे समस्त शत्रुओं के विनष्ट हो जाने से कोई युद्ध करने वाला ही न रहा।'[1]

(15) स्वभावोक्ति : बालकादि की अपनी (स्वाभाविक) क्रिया अथवा रूप (अर्थात् वर्ण एव अवयव संस्थान) का वर्णन स्वाभावोक्ति अलङ्कार कहलाता है।[2] कुछ आलङ्कारिको ने स्वभावोक्ति को अलङ्कार की कोटि से ही बाहर कर दिया था।[3] किन्तु वचन कीसादगी मे भी वस्तु के यथावत् वर्णन मे भी सौन्दर्य होता है। विशेष कर काव्य मार्ग मे जहॉ भङ्गीभणिति का साम्राज्य है ऐसी सादगी तो मन ही मोह लेती है। इन्ही कारणो से मम्मटादि ने स्वाभावोक्ति का भी अर्थालङ्कारो मे सादर निरूपण किया है।

वासवदत्ता मे विन्ध्यगिरि के वर्णन के अन्तर्गत सिह के वर्णन मे दो श्लोक स्वाभावोक्ति अलङ्कार के अच्छे उदाहरण है। राजकुमार कन्दर्पकेतु को सामने की ओर दिखाता हुआ मकरन्द कहता है—

---

1 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 102-103

2 काव्यप्रकाश, 10/167 सूत्र

3 वक्रोक्तिजीवित तथा भामहालङ्कार 2/93

(क) 'देखो, यह भयङ्कर सिह गजपति पर आक्रमण कर रहा है। इसके शरीर का अग्रभाग उठा हुआ तथा पिछला भाग झुका हुआ है। पूँछ निश्चल ओर खडी हुई है, उसका (पूँछ का) अगला भाग कुछ मुडा हुआ और पीठ पर रखा हुआ है। इसका मुख दाँतो की नोक से भयङ्कर और विशाल है। इसने अपने अयाल उठाए हुए और कान खडे किये हुए है।[1]

(ख) वेदना से घोर शब्द करते हुए पर्वत कन्दरा मे हाथी के विशाल मस्तक पर स्थित इस सिह का चित्र भी नही खींचा जा सकता है। इसके अयाल उठे हुए है, यह अपनी स्वाभाविक उग्रता मे (शत्रुओं को नष्ट करने मे) समर्थ है। इसके केसर (अयाल) अत्यधिक चमकीले है, मुख भयङ्कर और विशाल है, पूंछ निश्चल और उठी हुई है, इसके सब ही अङ्ग सङ्कुचित हो रहे है—सिकुडे हुए है।[2]

यहाँ सिह केस्वभाव की उक्ति का वर्णन होने से स्वाभावोक्ति अलङ्कार है।

(16) अतिशयोक्ति : जहाँ उपमान उपमेय को आत्मसात कर लेता है वहाँ अतिशयोक्ति होती है।[3] दण्डी ने लोक सीमा से बढकर जहाँ वर्णन किया जाय वहाँ अतिशयोक्ति मानी है।[4] अग्निपुराण ने वस्तु धर्म के लोकातिक्रान्त वर्णन को भी अतिशयोक्ति कहा है।[5] इस अतिशयोक्ति के

---

1 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 79

2 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 79-80

3 रस गङ्गाधर

4 दण्डी, कावयादर्श, 2/114

5 अग्निपुराण, 34/25

अनेक भेद शास्त्रो मे वर्णित हैं।[1]

वासवदत्ता मे अतिशयोक्ति के कुछ भेदो के भी उदाहरण मिलते है। अक्रमातिशयोक्ति[2] का एक उदाहरण किरात सेनाओं के युद्ध वर्णन मे देखे—

(क) 'सम द्विषता धनुषाञ्च जीवाकर्षण योधाश्चक्रु ।'[3]

यहॉ धनुष और शत्रुओं की जीवाकृष्टि (धनुष पक्ष मे प्रत्यचा, खीचना, शत्रु पक्ष मे प्राण हरण) का एक साथ ही वर्णन किया गया हैं इस वर्णन मे धनुष की डोरी खीचने, बाण छूटने और तब शत्रुओ के प्राणो को हरने का क्रमश वर्णन नही हुआ है। अत इसमे अक्रमातिशयोक्ति अलङ्कार हैं।

'ग्रे' ने स्वसम्पादित वासवदत्ता की भूमिका मे भेदकातिशयोक्ति और रूपकातिशयोक्ति के भी उदाहरण दिए हैं। किन्तु लक्षणानुसार उनमे उदाहरणता बन नही पाती है अतः चिन्त्य है।

(17) व्यतिरेक : उपमान की अपेक्षा उपमेय के आधिक्य वर्णन अथवा न्यूनत्व वर्णन होने पर व्यतिरेकालङ्कार होता है।[4]

राजा चिन्तामणि के वर्णन मे श्लेषमूलक व्यतिरेक का एक उदाहरण देखे—

---

1 जयदेव, चन्द्रालोक, पचम मयूख

2 कुवलयानन्द कारिका, 1/39

3 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 254

4 साहित्यदर्पण, 10/52

'वह अन्तक (यमराज) की तरह अकस्मात् अपहृत-जीवन (यम पक्ष मे अकस्मात् प्राण हरण करने वाला, राजा पक्ष मे जीविका हरण करने वाला) नही था। रुद्र की तरह मित्र मडल (रुद्र पक्ष मे सूर्य मण्डल, राजा पक्ष मे सुहुज्जनकादेश ग्रहण करने वाला नही था। नल की तरह कलिविघटित (नल पक्षमे कलि द्वारा पराजित, राजा पक्ष मे कलि से निर्मित-पापमय) नही था और न विष्णु की तरह शृगाल (विष्णु पक्ष मे शृगाल नामक दैत्य राजा पक्ष मे क्षुद्र शत्रु) के वध के कारण प्रशसा से इतराया हुआ था।[1]

यहॉ उपमान से उपमेय की अधिकता के वर्णन के कारण व्यतिरेकालङ्कार है।

(18) सम्भावना : जहॉ किसी अर्थ की सिद्धि के लिए यदि ऐसा होता तो ऐसा हो सकता है इस प्रकार की कल्पना की जाय वहॉ सम्भावना नामक अलङ्कार होता है।[2]

वासवदत्ता मे इस सम्भावना का प्रयोग वासवदत्ता की सखी द्वारा उसकी विरह वेदना के निवेदन मे मिलता है। राजकुमार कन्दर्पकेतु से सखी कहती है—आपके लिए उसने जो कष्ट झेले है उसे यदि आकाश कागज बन जाय, सागर स्याही हो जाए, ब्रह्मा लिखने वाले बन जॉय, शेषनाग वक्ता बन जाय तो कदाचित् अनेक सहस्त्रयुगो में उसका कुछ भाग लिखा वा कहा जा सके।[3]

---

1 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 19-20

2 चन्द्रालोक, पचम मयूख 48

3 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 211

(19) विषम : जहाँ अनुरूप पदार्थो का वर्णन किया जाय वहाँ विषमालङ्कार होता है।[1] कुवलयानन्दकार ने इसके अनेक भेद बताये है। वासवदत्ता के प्रारम्भिक द्वितीय श्लोक को उन्होंने केवल इष्ट की अनवाप्ति रूप विषमालङ्कार का उदाहरण बताया है। श्लोक अधोलिखित है—

'खिन्नोऽसि मुञ्च शैल बिभृमो वयमिति वदत्सु शिथिलभुज ।
भरभुग्नविततबाहुषु गोपेषु हसन् हरिर्जयति।।'[2]

यहाँ कुवलयानन्दकार के शब्दो मे ही—

'यद्यपि शैलस्योपरिपतनरूपानिष्टावाप्तिः प्रसक्ता, तथापि भगवत्करामबुज-ससर्गमहिन्ना सा न जातेति शैलधारणरूपेष्टानवाप्तिमात्रम्'—है अत विषमालङ्कार है।

(20) लोकोक्ति : लोकप्रवाद की अनुकृति लोकोक्ति है।[3] शिवराम पण्डित ने वासवदत्ता की अपनी टीका मे एकत्र इसका ध्यान दिया है। वासवदत्ता मे इसकी विच्छिति देखिए—

'यदि त्व सहपासुक्रीडासमदुःखसुखोऽसि तन्मया सममागम्यताम्' ।[4]

यहाँ सहपासुक्रीडासमदुःखसुखोसि का प्रयोग लोक प्रवाद की अनुकृति है अतः लोकोक्ति अलङ्कार है।

---

1 साहित्यदर्पण, 10/70 तथा रस गङ्गाधर

2 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 2

3 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 118-119

4 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 63

जहाँ नाना शब्दार्थालङ्कार आपस मे मिलते हो वहाँ सङ्कर और ससृष्टि नामक दो पृथक्-पृथक् अलङ्कार माने गये है।[1] इनमे परस्पर मिश्रण से भी निश्चय ही चारुत्व की वृद्धि होती है और एक विशिष्ट उज्ज्वलता प्रकट हो जाती है।

(21) सङ्कर : एक तो जहाँ कई अलङ्कारो मे अङ्गाङ्गिभाव हो, दूसरे जहाँ एक ही आश्रय (शब्द या अर्थ) मे अनेक अलङ्कारो की स्थिति हो, तीसरे जहाँ अलङ्कारो का सन्देह होता हो वहाँ सङ्कर नामक अलङ्कार होता है।[2]

वासवदत्ता मे इस प्रकार का सङ्कर अनेकत्र मिलता है। वसन्तकाल के वर्णन मे इसका एक उदाहरण देखें—

'अशोक के नवीन लाल पत्ते ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो उनके द्वारा वह नवीन लाक्षारस से रङ्गे हुए तथा नूपुरयुक्त तरुणी अङ्गनाओं के चरणप्रहार से संलग्न लालिमा को धारण किए हुए हो। मुख मे मधुर मद्य भरकर कामिनियो के कुल्ले करने से बकुल वृक्ष फूला करता है।'[3]

यहाँ सापह्नवोत्प्रेक्षा है। तरुणीचरणो के पल्लवितत्व विशेषण के अशोक मे पल्लवोत्पादनतारुरूप साभिप्रायत्व के कारण परिकरालङ्कार भी[4] है। कारण के साथ कार्य के सारुप्य के वर्णन के कारण यहाँ सम[5] नामक

---

1 साहित्यदर्पण, 10/97

2 साहित्यदर्पण, 10/98

3 साहित्यदर्पण, 10/98

4 चन्द्रालोक, 5/39

5 साहित्यदर्पण, 10/71

अलङ्कार भी है और स्वगुणत्यागात् तथा अन्यदीय गुण ग्रहणात तदगुण[1] अलङ्कार भी है। अपि च सर्वत्र श्लेष अलङ्कार मूल मे है। अत यहाँ कई अलङ्कारो का सन्देह तथा कुछ अलङ्कारो मे अङ्गाङ्गिभाव के कारण सङ्कर अलङ्कार है।[2]

अर्थान्तरन्यास और परिकर के सङ्कर का एक और उदाहरण देखे—

'विध्वस्तपरगुणाना भवति खलानामतीव मलिनत्वम्।

अन्तरितशशिरुचामपि सलिलमुचा मलिनिमाऽभ्यधिक.।।'[3]

(22) संसृष्टि : ससृष्टि वह अलङ्कार-प्रकार है जिसे परस्पर निरपेक्ष अलङ्कारो की 'तिलतण्डुलवत्' एकत्र अवस्थिति कहा करते है।[4] वासवदत्ता मे विन्ध्यगिरि के वर्णन मे सिह के वर्णन[5] मे अनुप्रास और स्वभावोक्ति का एक ही स्थान पर तिल-तण्डुन्यायेन विन्यास संसृष्टि का उदाहरण है। वासवदत्ता मे ऐसे अनेक स्थल है। विन्ध्यगिरि के वर्णन मे ही एक और उदाहरण भी देखे—

'हरिरवरनखरविदारितकुम्भस्थलविकलवारणध्वानैः।

अद्यापि कुम्भसम्भवमाह्वयतीवोञ्चतालभुजः।।'[6]

---

1 साहित्यदर्पण, 10/90

2 साहित्यदर्पण, 10/98

3 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 4

4 साहित्यदर्पण, 10/97

5 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 79-80

6 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 78

'यहाँ विन्ध्यगिरि पर्वत आज भी अपनी ऊँची ताल रूपी भुजाए उठाकर सिह के तीक्ष्ण नखो से अपने गण्डस्थलो के विदीर्ण होने के कारण विह्वल हाथियो के शब्दो द्वारा मानो अगस्त्य को बुला रहा हो।' इस प्रकार का वर्णन नाना अलकृतियो का स्थल है। इसमे प्रकट उत्प्रेक्षा के अलावा हरिरवरनरवर आदि मे अनुप्रास भी है। दोनो निरपेक्षरहकर विच्छित्तियाँ उत्पन्न कर रहे है अत. अनुप्रास और उत्प्रेक्षा नामक शब्दार्थालङ्कारो की ससृष्टि है।

वासवदत्ता में अलङ्कार—समीक्षात्मक दृष्टिकोण :

सुबन्धु नाना विद्याओं तथा मीमासा, न्याय, बौद्धादि नाना दर्शनो मे नितान्त प्रवीण थे। इन्होने श्लेष और उपमा के प्रसङ्ग मे रामायण, महाभारत तथा हरिवश की अनेक प्रसिद्ध तथा अल्प-प्रसिद्ध घटनाओं और पात्रो का प्रचुर निर्देश कर अपनी विद्वता का पूर्ण परिचय दिया है। उनकी दृष्टि मे सत्काव्य वही हो सकता है जिसमे अलङ्कारो का चमत्कार, श्लेष का प्राचुर्य तथा वक्रोक्ति का सन्निवेश विशेष रूप से रहता है—

'सुश्लेषवक्रघटनापटु सत्काव्यविरचनमिव।'

इसी भावना से प्रेरित होकर सुबन्धु की लेखनी श्लेष की रचना मे ही विशेष पटु है। उन्होने स्वयं अपने प्रबन्ध को **'प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रपञ्च-विन्यासवैदग्धनिधि'** बनाने की प्रतिज्ञा की थी और इस प्रतिज्ञा का पूर्ण निर्वाह उन्होने इस गद्यकाव्य में किया है। सुबन्धु वस्तुतः श्लेषकवि हैं। इन्होने सभंग और अभंग उभय प्रकार के श्लेषों का विन्यास कर अपने काव्य को विचित्रमार्ग का एक उत्कृष्ट उदाहरण बनाया है। उनके श्लिष्ट प्रयोगों में

पाठक खोया-सा जाता है और शृङ्गार-रसास्वादन से वञ्चित रह जाता है। साथ ही प्रस्तुत काव्य पाण्डित्य के प्रदर्शन, शब्दों के अभिनव विन्यास, पुराणो के सङ्केत एवं विभिन्न अलङ्कारो के सन्निवेश से अत्यन्त बोझिल एव दुरूह बन गया है। उसमे आई दूतियो के प्रणयि-जनो के साथ सवाद तो निश्चय ही सस्कृत साहित्य का खासा कठिन और दुरूह अश है। उनके श्लेष कही-कही इतने अप्रसिद्ध, अप्रयुक्त तथा कठिन हो गये है कि उन्हे समझने के लिए विद्वानो के भी दिमाग चक्कर काटने लगते है। कही-कही तो बिना कोश की सहायता के पाठक एक पग भी आगे नही बढता और उसके ऊपर '**कोशं पश्यन् पदे-पदे**' की उक्ति सर्वथा चरितार्थ होती हे।

सुबन्धु ने विरोध, उत्प्रेक्षा, उपमादि नाना अलङ्कारों से अपने काव्य को सजायाहै, परन्तु इन सब मे भी श्लेष के कारण ही चमत्कार उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया है। अनेक उपमाएं केवल शब्दसाम्य के ऊपर ही प्रतिष्ठित हैं। '**रक्त-पाद**' होने के कारण कवि ने वासवदत्ता के अरुणिम चरणो की उपमा प्रारब्ध पादसमन्वित व्याकरणशास्त्र से दी है। अष्टाध्यायी का एक पाद (4/2) '**तेन रक्तं रागात्**' सूत्र से समन्वित है। उधर नायिका के भी पैर रक्त वर्ण के है। इस शब्द साम्य के कारण ही यहॉ उपमा का चमत्कार है। नायिका का स्वरूप अत्यन्त प्रकाशमान है और इसी कारण वह उस न्यायविद्या के समान बतलाई गई है जिसके स्वरूप का निष्पादन तथा ख्याति **उद्योतकर** नामक आचार्य के द्वारा सम्पन्न है।[1] इस प्रकार के कौतूहलजनक उपमाओं के द्वारा पाठको का मस्तिष्क अवश्य पुष्ट होता है

---

1 न्याय विद्यामिव उद्योतकरस्वरूपाम्

तथा कवि की विलक्षण चातुरी का भी पूर्ण परिचय मिलता है, परन्तु यह केवल शाब्दी क्रीडा है, जो पाठकों के हृदय को तनिक भी स्पर्श नहीं करती। इस खेलवाड के कौतुक का ही विशेष स्थान है। शब्दो का यह तमाशा तमाशबीनो के लिए ही आनन्दवर्धक हो सकता है, रसिकों के लिए नही।

परन्तु जहॉ सुबन्धु ने अपने श्लेष-प्रेम को छोडकर काव्य का प्रणयन किया है वहॉ की शैली रोचक है तथा सहृदयो का पर्याप्त मनोरञ्जन करती है। साधारणतया गद्यकवि पद्यो के लेखन मे कृतकार्य नहीं होता, परन्तु सुबन्धु का दृष्टान्त इसके विपरीत है। वे कोमल पद्यो की रचना मे सर्वथा समर्थ हैं। सत्कविता की स्तुति उन्होंने बहुत ही कोमल शब्दो मे विन्यस्त की है।[1]

वासवदत्ता की कल्पनाओं का प्रभाव पिछले कवियो पर भी पड़ा था। विरहदुःखो की अवर्णनीयता की यह अभिव्यञ्जना **महिम्नः स्तोत्र** की एक सुप्रसिद्ध पद्य की जननी है। सुबन्धु के शब्दो में ''त्वत्कृते याऽनया यातनाऽनुभूता सा यदि नभः पत्रायते, सागरो मेलानन्दायते, ब्रह्मा लिपिकरायते भुजगपतिर्वा कथकायते तदा किमपि कथमप्यनेकैर्युगसहस्रैरभिलिख्यते कथ्यते वा।''[2] महिम्नः स्तोत्र का '**असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे**' वाला प्रख्यात पद्य इसी की छाया पर निर्मित बहुत रुचिर तथा रोचक है।

---

1 वासवदत्ता, गै० स०, पृ० स० 6

2 वासवदत्ता, चौ० सं०, पृ० सं० 306-307

सुबन्धु चमत्कारवादी कवि हैं। उनके अलङ्कारो का प्रयोग केवल अलङ्कारो के लिए ही होता है, वह अलङ्कार्य या रस का उपस्कारक बनकर नही आता। ऐसा प्रतीत होता है कि सुबन्धु के मत से कोई कवि आर्थी क्रीडा या शाब्दी क्रीडा का आश्रय लिए बिना उच्च कोटि का कवि नही बन सकता। सुबन्धु की सरल स्वाभाविक शैली प्रस्तावना भाग की आर्याओं मे यत्र तत्र मिल जाती है तथा यह नही कहा जा सकता कि वे सुन्दर नही बन पडी है।[1]

सुबन्धु की वासवदत्ता श्लेष तथा विरोधाभास का ऐसा दुर्गम महाकान्तार है कि उसमे वास्तविक काव्य सौन्दर्य को ढूढ़ निकालना कठिन हो जाता है। अलङ्कारो, दीर्घकाय समासो और पौराणिक सकेतो के प्रयोग मे वे औचित्य की सीमा का अतिक्रमण कर बैठते हैं तथा इस कारण रस का आस्वादन दुर्लभ हो जाता है। दण्डी मे वीरता, विचित्रता और शृङ्गारिकता का स्निग्ध एव रमणीय चित्रण है, किन्तु सुबन्धु चित्रकाव्य लिखने के फेर मे पडकर इन रम्य भावो का सफलाङ्कन नहीं कर सके है। स्थान-स्थान पर नये रङ्गो को भरकर उन्होने प्रत्येक चित्र को अतीव विचित्र बना डाला है। उनमे न तो दण्डी का हास, ओज और वैचित्र्य है और न बाण की सी कल्पना शक्ति और वर्णनप्रतिभा ही। उनकी समास प्रचुर भाषा मे सौष्ठव, प्रसाद और माधुर्य कम है, आडम्बर, कृत्रिमता और असगति अधिक है।

सुबन्धु के गद्य मे अलङ्कारों का प्रचुर प्रयोग मिलता है। लेकिन सुबन्धु

---

1 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 2

अपनी अलङ्कार योजना मे अनौचित्य के दोष से मुक्त नही रह पाये हैं। सुबन्धु रस अथवा भाव का उत्कर्ष प्रदर्शित करने के लिए अपने काव्य मे अलङ्कारो का समावेश करते नही दिखाई देते। वे चमत्कार प्रदर्शन के लिए उनका प्रयोग करते प्रतीत होते है। किसी भी स्थल पर प्रसङ्ग तथा परिमिति का विशेष ध्यान रखे बिना सुबन्धु एक के बाद दूसरे अलङ्कार की माला गूँथते जाते है, वे इस बात का विशेष विचार नही करते कि यह अलङ्कारो की भारी भरकम बेमेल माला कविता-कामिनी के सुकुमार अङ्गो के अकृत्रिम सौन्दर्य मे वृद्धि करने के स्थान पर कही उन्हे कुरूप तो नही बना डालेगी? सुबन्धु ने अन्य गद्य कवियो की भाति अनुप्रास की योजना करके वर्णनो को प्रभावपूर्ण बनाने की चेष्टा की है किन्तु उसमे उन्हे उतनी सफलता नही मिली है। वर्णसाम्य के लोभ से कवि दीर्घकाय समस्त पदो का प्रयोग करता है जो अधिकाशतः कृत्रिम और दुरूह बन जाते है। अभिसारिकाओं द्वारा भेजी गई दूतियो के, नायकों के सवादो मे यमक के प्रयोग से चित्रकाव्य जैसी कृत्रिमता का समावेश होजाता है। शब्द-क्रीड़ा का प्रेमी कवि यमक का भी प्रचुरता से प्रयोग करता है। कवि कही दूर तक यमक की झड़ी लगा देता है। जैसे प्रातःकाल के वर्णन मे।[1]

परन्तु सुबन्धु प्राय. शब्द-जाल मे फंसकर भाव की गहराई की ओर से भी ऑखे मूँद लेते है। इसका कारण उनकी अलङ्कारप्रियता हैं। **कई बार तो सवा सौ पंक्तियों तक एक ही वाक्य बन गया है।** इन चमत्कारिक उक्तियों के मोह

---

1 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 38-39

अपनी अलङ्कार योजना मे अनौचित्य के दोष से मुक्त नहीं रह पाये है। सुबन्धु रस अथवा भाव का उत्कर्ष प्रदर्शित करने के लिए अपने काव्य मे अलङ्कारो का समावेश करते नहीं दिखाई देते। वे चमत्कार प्रदर्शन के लिए उनका प्रयोग करते प्रतीत होते हैं। किसी भी स्थल पर प्रसङ्ग तथा परिमित का विशेष ध्यान रखे बिना सुबन्धु एक के बाद दूसरे अलङ्कार की माला गूँथते जाते हैं, वे इस बात का विशेष विचार नही करते कि यह अलङ्कारो की भारी भरकम बेमेल माला कविता-कामिनी के सुकुमार अङ्गों के अकृत्रिम सौन्दर्य मे वृद्धि करने के स्थान पर कही उन्हे कुरूप तो नही बना डालेगी? सुबन्धु ने अन्य गद्य कवियो की भांति अनुप्रास की योजना करके वर्णनों को प्रभावपूर्ण बनाने की चेष्टा की है किन्तु उसमें उन्हें उतनी सफलता नहीं मिली है। वर्णसाम्य के लोभ से कवि दीर्घकाय समस्त पदों का प्रयोग करता है जो अधिकांशतः कृत्रिम और दुरूह बन जाते हैं। अभिसारिकाओं द्वारा भेजी गई दूतियों के, नायकों के संवादो में यमक के प्रयोग से चित्रकाव्य जैसी कृत्रिमता का समावेश होजाता है। शब्द-क्रीड़ा का प्रेमी कवि यमक का भी प्रचुरता से प्रयोग करता है। कवि कहीं दूर तक यमक की झड़ी लगा देता है। जैसे प्रातःकाल के वर्णन मे।[1]

परन्तु सुबन्धु प्रायः शब्द-जाल मे फंसकर भाव की गहराई की ओर से भी आँखें मूँद लेते हैं। इसका कारण उनकी अलङ्कारप्रियता है। **कई बार तो सवा सौ पंक्तियों तक एक ही वाक्य बन गया है।** इन चमत्कारिक उक्तियों के मोह

---

1 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० सं० 38-39

मे लेखक ने अपनी कृति के स्वाभाविक प्रवाह को रोक दिया है। कही-कही पौराणिक संकेतो के कारण औचित्य का भी अतिक्रमण हो जाता है। विचित्रता के भी अनेकशः दर्शन होते हैं। सम्वादयोजना मे लघु वाक्यों की योजना विशेष दर्शनीय है। पर यहाँ भी श्लेष का मोह नही छोड पाते हैं। सुबन्धु के श्लेष कही-कही अत्यन्त जटिल और अस्वाभाविक हो जाते हैं जिनसे काव्य की सरसता मे व्याघात ही पहुँचता है। ऐसे स्थलो पर कवि की दृष्टि मुख्यतः अलङ्कार की प्रयत्नपूर्वक योजना करने पर ही केन्द्रित रहती है, रस, भावादि पर नही। वासवदत्ता मे श्लिष्टपदमूलक वाक्यो की इतनी बहुलताहै कि उनके गिने-चुने संवादो को छोड़कर ग्रन्थ का अधिकांश भाग श्लेषमय ही दिखाई देता है। इसी कारण ग्रन्थ मे प्रसादगुण का अभाव दृष्टिगोचर होता है। सुबन्धु की यह श्लेषमय कृति सहृदय पाठको के हृदय पर प्रभाव डालने मे उतनी समर्थ नही होती, वह पाठक की बुद्धि को ही चमत्कृत करके रह जाती है। श्लिष्ट पदो की योजना करता हुआ कवि प्रकृत के साथ अप्रकृत की भावात्मक समानता का निर्वाह करने मे भी असफल रहता है। कवि सर्वत्र ऐसे अप्रस्तुतो को जुटाने मे असमर्थ रहता है जो प्रस्तुत के अनुरूप भावो के उद्भावक हैं। वह केवल शब्दो के अर्थो की समानता ही पाकर सन्तोष कर लेता है। उदाहरण के लिए विन्ध्याचल शिवजी के समान इसलिए बताया गया है कि दोनो 'शिवानुगत' है। शिवजी शिवा (पार्वती) से अनुगत होते हैं जबकि विन्ध्याचल शिवा अर्थात् गीदड़ियो से युक्त है। पर्वत को कामी व्यक्ति के समान बताया गया है क्योकि दोनो 'समदन' होते हैं। कामी पक्ष मे 'समदन' का अर्थ 'कामयुक्त' ग्रहण किया गया है। और पर्वत पक्ष में इसका अर्थ 'मदन नामक वृक्ष से युक्त'। शब्द

क्रीड़ा की झक मे कवि औचित्य और अनुपात के विचार को प्रायः ताक पर रख देता है और वह शब्द-साम्य के आधार पर विराट् विन्ध्याचल को इसलिए शिशु के समान बता डालता है क्योकि शिशु तो धात्री (धाय) के साथ रहता है और विन्ध्यपर्वत धाय के पेड से युक्त है। उपरोक्त उदाहरणो मे कवि का शब्द चयन सम्बन्धी कौशल ही स्वीकार किया जा सकता है, रस नाम की कोई वस्तु तो ऐसे स्थलो पर है नही। शिव जी की धर्मपत्नी शिवा (पार्वती) और जङ्गल मे घूमने वाली अमङ्गलमयी शिवा (गीदड़ी) मे क्या भावात्मक समानता? इसी प्रकार कामी के 'समदन' होने के साथ पर्वत पर खड़े हुए मदन वृक्ष का क्या मेल? विशालकाय पर्वत को शिशु के समान बताना तो और भी अधिक हास्यास्प्रद है। दूध पिलाने वाली धाय के साथ धाय के पेड़ (अथवा धरती) का क्या सम्बन्ध? इस प्रकार के अन्य अनेक उदाहरण भी वासवदत्ता मे ढूंढ़े जा सकते है। यदि चमत्कारको ही काव्य का आदर्श स्वीकार कर ले (जैसा कि सुबन्धु ने किया है) तो सुबन्धु के काव्य मे पाये जाने वाले ये दोष ही उनके काव्य का भूषण बन जायेगे।

अन्य अलङ्कार जो सुबन्धु को अपनी वैचित्र्य प्रधान शैली के लिए अधिक उपयुक्त होने के कारण विशेष प्रिय हैं, वे है विरोधाभास और परिसख्या। इन दोनो अलङ्कारो मे भी श्लेष उपकारक बनकर उपस्थित हुआ है। विन्ध्याचल के वर्णन मे प्रयुक्त विरोधाभास का चमत्कार दर्शनीय है।[1]

राजा चिन्तामणि के सुखकारी शासन प्रबन्ध के वर्णन मे परिसंख्या

---

1 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 70-71

अलङ्कार का प्रयोग बडा सुन्दर बन पडा है।[1] सुबन्धु की उपमाओं मे विशेष सौन्दर्य नही है क्योकि वे प्राय. शाब्दिक समानता के आधार पर ही दी गई है, भावो की समानता के आधार पर नही। दो एक स्वभावोक्तिमय वर्णन 'वासवदत्ता' मे हमे अवश्य देखने को मिलते हैं। उनसे यह सिद्ध हो जाता है कि कवि मे स्वाभाविक सौन्दर्य-समन्वित काव्य का निर्माण करने की प्रतिभा भी विद्यमान थी किन्तु उसने अपनी उस प्रतिभा का उपयोग अत्यन्त न्यूनता से किया और अपने गद्य काव्य को जटिल रूप देने का ही विशेष रूप से प्रयत्न किया।

सुबन्धु के गद्य मे जहॉ अलङ्कारो का महत्वपूर्ण स्थान है, वहाँ साथ ही शास्त्रीय उद्धरणों की भी उसमे प्रचुरताहै। सुबन्धु की गद्य शैली पर स्पष्टतः उनके पाण्डित्य की छाप है। दर्शन, पुराण, इतिहास, काव्यशास्त्रादि शास्त्रो से अनभिज्ञ पाठक 'वासवदत्ता' के बहुत से प्रसङ्गो का अर्थ ग्रहण करने मे भी असमर्थ रहेगा। सुबन्धु की इस कृति मे शास्त्रीय उद्धरणों की बहुलता देखकर ऐसा लगता है जैसे उनकी रचना पण्डित-वर्ग के लिए ही की गई है, काव्यरसिक के लिए नही। कही विन्ध्यपर्वत की उपमा कवि मीमांसा, न्याय से देता है, गङ्गा नदी को 'छन्दोविचिति' नामक ग्रन्थ-विशेष के समान बताता है, कही बौद्ध विद्वान् धर्मकीर्ति द्वारा रचित बौद्धसङ्गति नामक ग्रन्थ-विशेष के समान तथा अन्य प्रकार से बताई गई है। इस प्रकार के शास्त्रीय संकेत निःसंदेह पाठक के विस्तृत शास्त्रीय ज्ञान की अपेक्षा रखते हैं।

---

1 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 11-13

चमत्कार की दृष्टि से चाहे हम ऐसे अप्रयुक्त उपमानो का भले ही स्वागत करे, काव्य मे तो उनका समावेश दोष ही माना जायेगा।

इन विभिन्न दोषो के होने पर भी सुबन्धु के शास्त्रीय ज्ञान, विद्वता एवं पाण्डित्य मे सशय नही किया जा सकता। जहॉ भी सुबन्धु ने अपने श्लेषप्रेम तथा पाण्डित्यगर्व को छोडकर काव्य का प्रणयन किया है, वहाँ उनकी कविता-कामिनी रोचक एवं रसप्रवण हो गई है।

उपसंहार

१. गद्य-साहित्य में सुबन्धु का योगदान

२. सुबन्धु, बाण और दण्डी का तुलनात्मक अध्ययन

संस्कृत गद्य साहित्य में सुबन्धु का योगदान

कविकर्म में परिश्रम को कवि ही जानता है।[1] सागर की गहराई को आपाताल निमग्न मन्थाचल ही जानता है।[2]

ऐसा कोई ज्ञान या शिल्प नही है, ऐसी कोई विद्या या कला नही है जो काव्य का अङ्ग न हो।[3]

लोक का—स्थावरजङ्गमात्मक लोक व्यवहार का, शास्त्रो-छन्दः व्याकरण अभिधान कोष कलाचतुर्वर्गगजतुरगखऽगादि तदयग्रन्थो का, महाकवियो के काव्यों का तथा इतिहासपुराण का विमर्श सफल कवित्व के लिए आवश्यक है। वासवदत्ता का कवि सुबन्धु ज्ञान-विज्ञान की अनेक शाखाओं का, तथा इतिहास-पुराण का यथापेच्छित सम्यक् ज्ञान रखता था। वह लोकवृत्त-स्थावर और जङ्गम बहुरूप प्रकृति का साक्षात् अनुभव रखता था। उसके एतद् सम्बन्धी वर्णनो मे अनुभूति की गहराई या सहानुभूति की ईमानदारी प्रकट है। शास्त्रो मे भी लगभग सबमे उसकी गति थी। **भट्टि, माघ और हर्ष** आदि की

---

1 'जानाति हि पुन सम्यक् कविरेव कवे श्रमम्।'—नलचम्पू

2 अब्यिर्लङ्धितएव वानरमटैः किन्त्वस्य गम्भीरताम्।
आपातालनिमग्नकिवर तनु जानाति मन्थाचल ।।

3 न तज्ज्ञान न तच्छिल्प न सा विधा न सा कला।
विद्यते यन्न काव्यागम् अहो मारो महान् कवे ।।

तरह उसने काव्येतर विधाओं का विस्तार के साथ वर्णन तो नही किया है किन्तु वासवदत्ता मे उनका जितना भी उल्लेख मिलता है उससे उसकी बहुलता प्रमाणित हो जाती है। लोक जीवन से कवि का निकट परिचय मनुष्यो, पशुओं और पक्षियो के स्वाभाविक वर्णनो मे अनेकत्र हुआ हैं। भोरही रात्रि के वर्णन मे प्रबुद्धाध्ययनकर्मठ मठो का वर्णन[1] गलियो मे विभासरागामुखरकार्पटिको का वर्णन[2] तत्कालीन लोक जीवन का एक यथार्थ दृश्य उपस्थित करता है।

'सर्पस्नेहइवकरयुगललालितोपि शिरसाधृतोपि न कटुत्वं जहाति'[3] और तालफलरसइवापातमधुर· परिणामविरसस्तिक्तश्च[4] सरसो के तेल और तात फलरस के प्रति कवि के ज्ञान को प्रकट करते हैं। विन्ध्याटवी के वर्णन मे दूर से गिरने के कारण फूटे हुए ताल फल के रसो से गीले अपने हाथो को चाटते हुए वानरो का वर्णन[5] निर्झरो के उपान्त मे बैठे हुए जीवन जीवक मिथुनों द्वारा लेलिह्यमान विविध फल रसो का वर्णन कवि के, वन्य जीवो के वृत्तो के साथ परिचय को प्रकट करता है। इसी प्रकार रेवा के वर्णन मे उपकूलसंजातनलनि 'कुञ्जपुञ्जितकुलायकुक्कुटघटाघटितघूत्कारभैरवतीरया'[1]

---

1 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 33

2 वही

3 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 53-54

4 वही

5 वासवदत्ता चौ0 स0, पृ0 स0 64

6 वासवदत्ता चौ0 स0, पृ0 स0 75

तथा 'नलिनीनिकुञ्जपुञ्जनिविष्टदुष्टबकोटककुटम्बिनीनिरीक्ष्यमाणवृद्धशफरया'[2] कवि के सूक्ष्म निरीक्षण का प्रमाण देता हैं। इसी प्रकरण मे 'खञ्जरीटमिथुननिधुवनदर्शनोपजातनिधिग्रहणकौतुककिरातशतखन्यमानस्थपुटितनीरया'[3] का वर्णन किरातो की खञ्जरीट मिथुन से निधुवन के दर्शन से उस स्थान पर धन मिलने की मान्यता से कवि के परिचय का प्रमाण है। प्रवाह को रोककर ऊपर लायी हुई निम्न देश में बहने वाली नदी का वर्णन कवि के साक्षात् अनुभव की वस्तु लगती है। इसी प्रकार 'कुरुदेशढक्कयेव घनसारसार्थवाहिन्या'[4] कुरुदेश से कवि के निकट परिचय को प्रकट करता है। कोकिल की परपुष्टता और जलौकसो की खताकृष्टि के वर्णन से इन जीवो के स्वभाव से कवि का परिचय भी प्रकट होता है। लाटी, कर्णाट, अपरान्त, केरली, मालव्य और आन्ध्र पुरन्ध्रियों के वर्णन से तत्तद् देश की सुन्दरियो से कवि के विशेष परिचय को प्रमाणित करता है।[5] मालिनी, तुंगभद्रा, शोढा, नर्मदा, गोदावरी और गङ्गा के वर्णन प्रसिद्ध नदियो से कवि के परिचय को प्रकट करते हैं। सन्ध्या काल के समय कथा श्रवणोत्सुक जनो द्वारा शिशुओं के कलरव निवारण में क्रोध, लोरियां गाकर बच्चों को थपकियाँ लगाकर सुलाती हुई महिलाओं का वर्णन, धूल मे लोट कर उठी हुई बसेरा के लिए कलह विकल कलविको का कलरव वर्णन, गॉव के

---

1 वासवदत्ता चौ0 स0, पृ0 स0 76

2. वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 77

3 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 81

4 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 128

वृक्षो पर बसेरा लेते हुए कौओं का वर्णन कवि के लोकजीवन से निकट परिचय का प्रमाण प्रस्तुत करता है।[1] समुद्र का वर्णन भी समुद्र से कवि की अभिज्ञता को प्रकट करता है। इस प्रकार लोक जीवन से कवि के निकट परिचय को प्रकट करने वाले अनेक स्थल वासवदत्ता मे सर्वत्र सुलभ है।

सुबन्धु को विविध शास्त्रो का भी ज्ञान था। किसी शास्त्र के ज्ञान का काव्य मे उसने कही विस्तृत उपयोग नही किया है जिससे उस शास्त्र के सम्बन्ध मे उसके ज्ञान की सीमा को जाना जा सके किन्तुजितना उल्लेख मिलता है उससे कवि की बहुज्ञता का प्रमाण मिलता है।

'वेदस्येव भूरिशाखालंकृतस्य'[2] वासवदत्ता के इस वाक्य से अनेक शाखाओं वाले वेद से कवि का परिचय प्रकट होता है। **'उपनिषदमिवानन्दमेकमुउथोतयन्तीम्'**[3] इस वाक्य से आनन्दवादी उपनिषदो से कवि का परिचय स्पष्ट होता है। न्यायविधा और **न्यायविधा के आचार्य उद्योतकर** से भी उसने अपना परिचय अनेकत्र प्रकट किया है।[4] बौद्ध दर्शन का भी उसने अनेकत्र उल्लेख किया है। जिससे उसके बौद्ध दर्शन ज्ञान की पुष्टि होती है।[5] मीमांसा दर्शन से भी

---

1 वासवदत्ता चौ0 स0, पृ0 स0 153-156

2 वासवदत्ता चौ0 स0, पृ0 स0 84

3 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 208

4 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 11, 208

5 वासवदत्ता, श्री रगम सस्करण, 229, 212, 356, 241, 323 आदि

कवि ने अपना परिचय प्रकट किया है।[1] छन्दशास्त्र का तो वह पडित ही है। कुसुम विचित्रा, वशपत्रपतिता, पुष्पिताग्रा, प्रहर्षिणी और शिखरिणी आदि नाना छन्दो का छन्दोविचिति ग्रन्थ का भी उसने वासवदत्ता मे उल्लेख किया है।[2] चार्वाको के नास्तिक दर्शन से भी उसने अपनी अभीज्ञता प्रकट की है।[3] ज्योतिषशास्त्र का भी उसे अच्छा ज्ञान था। वासवदत्ता मे ज्योतिषसम्बन्धी अनेक उल्लेख मिलते हैं।[4] वैद्यकशास्त्र से भी कवि ने अपना परिचय प्रकट किया है।[5] वैद्यकशास्त्र से भी कवि ने अपना परिचय प्रकट किया हैं।[6] सङ्गीतशास्त्र से भी सुबन्धु का परिचय ज्ञात होता है।[7] शब्दानुशासन-व्याकरणशास्त्र-से भी कवि ने अपना परिचय अनेकत्र प्रकट किया है। पत्थरो की जातियाँ भी उसे ज्ञात थी। उसने चुम्बक, द्रावक, आकर्षक और भ्रामक पत्थरो का उल्लेख किया है।[8]

धर्मशास्त्र अभिज्ञता अनेकत्र प्रकट की है।[9] काव्यों और काव्यशास्त्र से उसका परिचय तो प्रगाढ़ था ही।[10] इस प्रकार सुबन्धु की बहुज्ञता निःसंदिग्ध है। लोक और शास्त्र दोनो का सम्यक ज्ञान उसे था जिसका उसने यथेच्छ

---

1 वासवदत्ता, श्री रगम सस्करण, 107, 175 आदि

2 वासवदत्ता, श्री रगम् सस्करण, पृ0 स0 108, 135, 302

3 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 11

4 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 72, 95, 104 आदि

5 'रोगीव दृश्यमान बहुधातुविकार ।' वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 71

6. 'मूर्च्छा गीतेषु।' वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 105-106

7 'प्रस्तरइव परकितव।' वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 179

8 वासवदत्ता, चौ0स0, पृ0 स0 103 तथा 12

9. वासवदत्ता चौ0 स0, पृ0 स0 118-119

10 वासवदत्ता श्री रगम् सस्करण, पृ0 स0 158, 238, 303 आदि

उपयोग अपने काव्य मे किया है।

सुबन्धु नाना विद्याओं तथा मीमासा न्याय, बौद्धादि नाना दर्शनो मे नितान्त प्रवीण थे। अलंकृत शैली के गद्य लेखको मे सुबन्धु का स्थान अत्यन्त उच्च है। सुबन्धु ने वर्णन-वैचित्र्य के कारण विशेष ख्याति अर्जित की है। इन्होने श्लेष और उपमा के प्रसङ्ग मे रामायण, महाभारत तथा हरिवंश की अनेक प्रसिद्ध तथा अल्पप्रसिद्ध घटनाओं और पात्रो का प्रचुर निर्देश कर अपनी विद्वता का पूर्ण परिचय दिया है। परन्तु दीर्घ समासो से युक्त गौडी रीति के प्रयोग के कारण उनकी शैली मे प्रसाद और माधुर्य न होकर आडम्बर, कृत्रिमता तथा क्लिष्टता ही अधिक है। रस और वस्तु की योजना की दृष्टि से जिनका कि किसी काव्य में अनिवार्य महत्व होता है सुबन्धु की वासवदत्ता का स्थान नगण्य है। किन्तु अलङ्कारो की विच्छिति— कम से कम अनुप्रास और उत्प्रेक्षा की चारुतर योजना तथा प्रभात, वासवदत्ता, विन्ध्यगिरि, रेवा, भागीरथी, बसन्तकाल, सूर्यास्त, चन्द्रोदय, श्मशान घाट, सागर और सागर तट आदि के वर्णन श्लेषरहित स्थलो पर अत्यन्त ललित और चमत्कारजनक हैं। अपने इन वर्णनो के लिए सुबन्धु सस्कृत साहित्य मे सदा गौरव के साथ उल्लिखित होते रहेगे।

सुबन्धु के मूल्याकन मे मोटे तौर पर पाश्चात्य पौर्वात्य दो दृष्टियाँ है। पाश्चात्य आलोचना की दृष्टि से, जिसका 'ग्रे' ने स्वसंपादित वासवदत्ता की भूमिका में उल्लेख किया है, वासवदत्ता एक निष्प्राण कलाबाजी से अधिक कुछ नहीं है किन्तु पाश्चात्य रुचि और समीक्षा की मान्यताओं से वासवदत्ता को आँकना अनुचित है। फिर भी इतना तो निश्चित है कि सुबन्धु कालिदास

आदि की कक्षा का कवि नही है जो आलोचना के किन्ही भी देशकालातीत मानदण्डो पर खरे उतरेगे। सस्कृत आलोचनाशास्त्र के अनुसार समीक्षा करके कुछ संस्कृत पण्डितो ने भी जिनमे वासवदत्ता के लब्ध प्रतिष्ठित टीकाकार **अभिनव बाणभट्ट श्री कृष्णमाचार्य** का नाम प्रमुख है वासवदत्ता की तीव्र आलोचना की है। उनकी आलोचना मे सार है। किन्तु बाण के प्रति अपने कुछ अधिक ही मोह के कारण उन्होंने सुबन्धु के साथ पूरा न्याय नही किया है। सुबन्धु की वासवदत्ता के मूल्यांकन मे हमे कभी भी यह नही भूलना चाहिए कि स्वयं कवि ने वासवदत्ता की रचना केवल श्लेषमय प्रबन्ध रचना मे अपनी शक्ति दिखाने के लिए की थी। किसी रस निर्भर, सुघटित वस्तुक प्रबन्ध की रचना उसका लक्ष्य नहीं था। इसलिए रस और वस्तु की दृष्टि से उसके काव्य वासवदत्ता की परीक्षा नहीं की जानी चाहिए। किन्तु इसका यह अर्थ नही है कि वासवदत्ता एक रसहीन रचना है। वासवदत्ता मे भी रस की स्थिति है, गुणो का विन्यास है और इनका विस्तृत विवेचन तत्तद् अध्यायो मे इसी ग्रन्थ मे किया जा चुका है। अवधेय है कि रस यहाँ अन्तर्गूढ़ है। सुबन्धु का वचन भी भारवि की तरह नारिकेलफलसम्मित है।

सुबन्धु ने विरोध, उत्प्रेक्षा, उपमा आदि नाना अलंकारो से अपने काव्य को सजाया है, परन्तु इन सब मे श्लेष के कारण ही चमत्कार उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया है। सुबन्धु का सही मूल्याकन उन तत्तद् वर्णनो के आधार पर करना चाहिए जहाँ श्लेष का क्लेश नही है। प्रभात, सन्ध्या, बसन्त, सूर्योदय आदि के रत्नायमान वर्णन पूर्ण बिम्बग्राही हैं और कवि की शक्ति के साथ उसकी कृति की उत्कृष्टता के प्रमाण हैं। कवि ने प्राकृतिक

दृश्यो का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत कियाहै, जो श्लेष के प्रपच से गहित होने के कारण काफी मनोरंजक है। प्रभात का वर्णन इसका स्पष्ट उदाहरण हैं।[1] वासवदत्ता के श्लोक नगीने की तरह पूरे ग्रन्थ को आलोकित किए हैं। वासवदत्ता के गौरव को बाण ने आँका था। बाणभट्ट की यह आलोचना वस्तुतः श्लाघ्य तथा तथ्यपूर्ण है, जिसमें वासवदत्ता के द्वारा कवियो के दर्प को चूर्ण कर देने की बात कही गई है—

कवीनामगलद् दर्पो नूनं वासवदत्तया।

शक्त्येव पांडुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम्॥[2]

बाण के इस कथन मे सुबन्धु और उनकी वासवदत्ता का महत्व निहित है। जिस अज्ञातनामा कवि ने **सुबन्धु को गद्यसुधाधुनी का प्रभवाचल** कहा था और सुबन्धु के भङ्गश्लेषो से कवियों के भंग की बात की थी उसने भी सुबन्धु के महत्व को समझा था। **कविराज** ने भी सुबन्धु के महत्व को सही रूप मे समझा था। एक कवि का महत्व कवि ही समझ सकता है। सुबन्धु की शैली के कुछ विशेष गुण है, जिनके द्वारा वे विद्वानो मे समादृत हुए हैं। सुबन्धु का श्लेष-प्रयोग कलाकार की कलाकृति का प्रदर्शन करता है। विरोधाभास, परिसंख्या, उत्प्रेक्षा आदि के प्रयोग कवि की नई सूझ-बूझ और सूक्ष्म दृष्टि को सूचित करता है। सुबन्धु की रचना मे मे संगीतात्मकता है, लयात्मकता है और नाद सौन्दर्य है। यदि सुबन्धु ने एक ओर क्लिष्ट पदावली दी है तो दूसरी ओर कोमल कान्त-पदावली का भी मिश्रण किया

---

1 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 318

2 बाण हर्षचरित, श्लोक 11

है। यदि एक ओर थकाने वाले श्लेष प्रयोग है तो दूसरी ओर सुन्दर स्वाभावोक्ति और उत्प्रेक्षाएं भी है। कवि का भाषा पर अनूठा अधिकार है। वे कठिन के बाद सरल और सरल के बाद कठिन पदावली का प्रयोग करते है। एक ओर ओज है तो दूसरी ओर प्रसाद और माधुर्य। एक ओर पाण्डित्य-प्रदर्शन है तो दूसरी ओर सरस पदावली। इन विरोधी गुणो के समन्वय के कारण वासवदत्ता मे मणिकांचन संयोग प्राप्त होता है।

सुबन्धु ने जितना अपने उत्तरकालीन कवियो को प्रदान किया है या उत्तरकालीन कवियो ने, जिनमे बाणभट्ट, भवभूति, भर्तृहरि और नलचम्पूकार त्रिविक्रमभट्ट जैसे महाकवि भी सम्मिलितहैं, जितना कुछ सुबन्धु ने ग्रहण किया है वह सुबन्धु और उनकी कृति वासवदत्ता के महत्व को स्थापित करने मे स्वयं प्रमाण है। निश्चय ही सुबन्धु महाकवि थे। उनकी कवित्व शक्ति श्लेष प्रदर्शन के कारण अपनी पूरी क्षमता के साथ प्रकट नही हो पायी है, अन्यथा उनके पद्य और उनके बसन्तादि के विविध वर्णन अपनी बिम्बग्राहिता और प्रेषणीयता के कारण उत्कृष्ट काव्य के उदाहरण हैं। प्रबन्धकार के रूप मे असफल होकर भी सुबन्धु निश्चय ही महान कवि है।

सुबन्धु, बाण और दण्डी : तुलनात्मक विवेचन

सुबन्धु की वासवदत्ता अपने युग की एक क्रान्तिकारी रचना थी। इसके प्रकाश में आने पर कवियो का दर्प दलित हो गया। इसके भङ्गश्लेषों ने सबको मात दे दी।[1] अनेक शताब्दियों तक सुबन्धु की वासवदत्ता कवियो के

---

1 पीटर्सन, अप0 सिट0 अपेडिक्स, पृ0 स0 55

लिए ईर्ष्या और आकर्षणा की वस्तु रही। गद्यकाव्य कथा आदि—लेखन की जो शैली कवि सुबन्धु ने प्रतिष्ठित की, अपनी प्रौढ रचना द्वारा उसे एक सर्वथा परिनिष्ठित रूप दिया, उसका अनुकरण प्रायः सभी उत्तरवर्ती गद्यकाव्यकारो ने किया है। सुबनधु के निकटोत्तरवर्ती महाकवि बाणभट्ट थे। सुबन्धु और बाण के पौर्वापर्य के विषय मे विद्वानो मे मतभेद होने पर यह निश्चित करना कठिन है कि दोनो गद्यकारो मे से किसका प्रभाव किस पर पडा है। अन्यत्र दिये गये कारणो से सुबन्धु की बाण से पूर्वकालिता अब एक सिद्ध मान्यता है। बाण के ऊपर सुबन्धु की वासवदत्ता का प्रभाव पड़ा प्रतीत होता है, क्योकि उन्होने हर्षचरित मे वासवदत्ता की प्रशसा एक पद्य के माध्यम से की है।[1] यद्यपि कुछ विद्वान् इस पद्य मे प्रशंसित वासवदत्ता को सुबन्धुकृत वासवदत्ता न मानकर कोई अन्य प्राचीन वासवदत्ता मानते हैं, क्योकि उनके अनुसार बाण भट्ट जैसा उत्कृष्ट कोटि का कवि एक ऐसे कवि की प्रशंसा कैसे कर सकता है जो उसकी तुलना मे हीन है, किन्तु अन्य अनेक विद्वान् पद्य मे प्रशंसित वासवदत्ता को सुबन्धु की ही कृति मानते है। सुबन्धु की अपेक्षा अधिक कुशलतर कवि बाणभट्ट ने अनुकरण नही किया होगा कुछ लोगो की यह धारणा सर्वथा अग्राह्य है।[2] अनुकरण के बाद भी बाणभट्ट की महिमा मे उनके कुशलतर कवित्व मे सन्देह या अनास्था नही है। किन्तु बाणभट्ट सुबन्धु से श्रेष्ठ कवि थे केवल इसलिए उनके द्वारा सुबन्धु की वासवदत्ता से आदान न मानना अनुचित है। वास्तव मे यह बहुत सम्भव भी

---

1 बाण, हर्षचरित, श्लोक 11

2 वासवदत्ता, श्रीरगम सस्करण, भूमिका भाग

है कि बाण ने पद्य के माध्यम से सुबन्धु कृत वासवदत्ता की ही प्रशम्सा की होगी क्योकि उस काल के वातावरण मे सुबन्धु ने जिस अलकृन गौडी शैली को अपनाया उसके प्रति कवियो मे प्रशसा भाव स्वाभाविक ही है। फिर बाण का उत्कर्ष तो उनकी रचनाओं के बाद हुआ होगा। अपनी रचनाओं के पूर्व यदि सुबन्धु की वासवदत्ता उनके सम्मुख रही होगी तो सुबन्धु के प्रति उनके अन्दर महान् कवि के समान आदर-भाव का होना अत्यधिक स्वाभाविक है, यह बात दूसरी है कि अपनी रचनाओं के उपरान्त बाण ने सुबन्धु को भी मात कर दिया।

बाण ने अपनी गद्य रचनाओं-हर्षचरित और कादम्बरी—मे सुबन्धु की वासवदत्ता की शैली, भाव-सम्पदा तथा पदावली का भी अनेकत्र, प्रायः सर्वत्र, प्रचुर अनुकरण किया है। बाणभट्ट ने सुबन्धु द्वारा प्रवर्तित शैली को सर्वात्मना आत्मसात कर लिया है। इस प्रकार बाण तथा सुबन्धु के काव्यो मे जो पारस्परिक समानताए मिलती हैं उनके लिए बाण सुबन्धु के ऋणी माने जा सकते हैं। इस प्रकार की कुछ समानताओं का उल्लेख निम्नवत् है—

1. सर्वप्रथम तो वासवदत्ता और कादम्बरी की कथा के आरम्भ मे साम्य देखा जा सकता है। वासवदत्ता की कथा का आरम्भ निम्नलिखित ढंग से होता है :

''अभूदपूर्वः सर्वोर्वीपतिचक्रचारूचूड़ामणिश्रेणीशाणकोणकषण-निर्मलीकृतचरणनखमणिर्नसिह इव दर्शितहिरण्यकशिपुक्षेत्रदानविस्मयः कृष्ण इव कृतवसुदेवतर्पणो........राजा चिन्तामणिर्नाम।'' और कादम्बरी की कथा

का आरम्भ इस प्रकार है :

आसीदशेषनरपतिशिर· समभ्यर्चितशासन. पाकशासन इवापरः, चतुरुदधिमालामेखलाया भुवोभर्त्ता, प्रतापानुरागावनतसमस्तः सामन्तचक्र......राजा शूद्रको नाम।

दोनो वाक्यों की रचना मे 'अभूत' तथा 'आसीत्' से आरम्भ होना और 'राजा......नाम' से अन्त होना विशेष रूप से दृष्टव्य है। इसके बाद राजा के वर्णन मे भी शैली का अत्यधिक साम्य है। सुबन्धु के अनुसार :

'यत्र च शासित धरणिमण्डल छलनिग्रहप्रयोगो वादेषु,

नास्तिकता चार्वाकेषु, कण्टकयोगो नियोगेषु, परिवादो वीणासु. .।'

और बाण के अनुसार

'यस्मिमंश्च राजनि जितजगति पालयति मही चित्रकर्मसु वर्णसङ्कराः, श्लेषु केशग्रहाः, काव्येषु दृढबन्धाः, शास्त्रेषु चिन्ता....।'

सुबन्धु की कृति 'वासवदत्ता' की कथा का कुछ अश तो स्वयं कवि द्वारा वर्णित किया गया है तथा कुछ शुक नामक पक्षी द्वारा;[1] कादम्बरी मे भी कथा का कुछ अंश कवि स्वय कहता है; कुछ पात्रो द्वारा कहलवाता है।[2] शुक द्वारा कथा कहने की रूढ़ि का कादम्बरी मे भी अनुकरण किया गया है।

---

1 वासवदत्ता चौ0 स0, पृ0 स0 85

2 कादम्बरी कथामुख भाना, 'श्रूयताम् चेत् कुतूहलम्'

2. सुबन्धु की कृति 'वासवदत्ता' की कथा की शैली और बाण की कादम्बरी की कथानक शैली मूलत. एक जैसी शैली (अलकृत) मे लिखी गई हैं।

3 दोनो ही कवियो ने आकाशवाणी द्वारा नायक तथा नायिका को आत्महत्या करने से रोके जाने की रूढ़ि का प्रयोग किया है।

4 'वासवदत्ता' और 'कादम्बरी' दोनो के पात्रो को ही शाप के कारण कुछ काल तक कष्ट उठाना पड़ता है। शाप पर कथा का सुखद अन्त हो जाता है।

5. कई एक वर्णन भी दोनो कवियो की रचनाओं मे एक जैसे पाये जाते हैं। कादम्बरी मे इन्द्रायुध घोडे का वर्णन भी वासवदत्ता में मनोजव घोड़े के अनुकरण पर वासवदत्ता के ही 'वज्रेणेवेन्द्रायुधेन' कथन से स्फूर्त है। कादम्बरी में शुकनास का उपदेश भी वासवदत्ता मे मकरन्द के मित्रवत् उपदेश के अनुकरण पर ही है। कादम्बरी मे पुण्डरीक के उच्छृङ्खल प्रणय पर उसका मित्र कपिञ्जल उसकी भर्त्सना करता है। वासवदत्ता मे नायक कन्दर्पकेतु नायिका वासवदत्ता के प्रति आसक्त होकर जब पागल सा हो जाता है तो उसका मित्र मकरन्द उसे ठीक उसी प्रकार फटकारता है जैसे कादम्बरी मे महाश्वेता के प्रति आसक्त पुण्डरीक को उसका मित्र कपिञ्जल, कामपीड़ित कन्दर्पकेतु तथा कपिजल के हृदय के उद्गारो मे भी साम्य है। कही-कहीं तो शब्दावलि भी एक सी हो गई है। वासवदत्ता मे कन्दर्पकेतु कहता है :

''नायमुपदेशकालः। पच्यन्त इव मेडङ्गानि। कृष्यन्त इवेन्द्रियाणि भिद्यन्त

इव मर्माणि। निस्सरन्तीव प्राणाः।''

और कादम्बरी मे पुण्डरीक का कथन है

'तद्गत इदानीमुपदेशकाल.।. . .पच्यन्त इव मेडङ्गानि उत्क्वथ्यन इव हृदयम् प्लुष्यत इव दृष्टिः, ज्वलतीव शरीरम्।'

6 कादम्बरी मे विन्ध्यवन और गिरि आदि का वर्णन भी अनेकत्र वासवदत्ता के अनुकरण पर है। इनमे शब्दतः, अर्थत· और शैलीत· सवाद सर्वत्र स्फुट है।

7. कादम्बरी मे कुमारीपुर-वृत्तान्त जैसा कि वर्णन सुबन्धु की कृति मे भी वासवदत्ता की सखियो के परिहासादि के प्रसङ्ग में दीख पड़ता है। कादम्बरी मे एकत्र कुमार चन्द्रापीड का राजकुमारी कादम्बरी के प्रत्यासन्न परिजनो का मनोहर आलाप सुनते हुए उसके भवन मे जाना वर्णित है।[1] वासवदत्ता मे राजकुमार कन्दर्पकेतु भी प्रमदाओं की नाना आलापकथाओं को सुनते हुए भवन मे जाता है।[2]

8 कादम्बरी मे चाण्डालकन्या को देखकर चकित राजा शूद्रक—'अहो विधातुस्थाने रूपनिरूपादनप्रयत्न । मन्ये च मातंगजातिस्पर्शदोषभयादस्पृशतेय मुत्पादिता प्रजापतिना, अन्यथा कथमियमक्लिष्टता लावण्यस्य।'[3] यह मन मे कहने लगता है। यही बात वासवदत्ता मे, स्वप्न मे राजकुमार कन्दर्पकेतु को

---

1 कादम्बरी, निर्णयसागर सस्करण, 1894 शाके, पृ0 स0 335-36

2. वासवदत्ता चौ0 स0, पृ0 स0 204-206

3 कादम्बरी चौ0 स0, पृ0 स0 36

देखकर चकित वासवदत्ता के—'अहो प्रजापते रूपनिर्माणकौशलम्। मन्ये स्वस्यैव नैपुण्यस्यैकत्र दर्शनोत्सुकमनसा वेधसा जगत्त्रयसमवायिरूपपरमाणूनादाय विरचितः अयमितिः, अन्यथा कथमिवास्य कान्तिविशेषः इदृशो भवति।'[1] कथन मे मिलती है।

यही नही कही-कही तो वर्णन की पदावली का किंचिद् परिवर्तन के साथ अविकल साम्य भी मिल जाता है। एक लम्बे समास को तो बाण ने सुबन्धु से लगभग वैसा का वैसा ही ले लिया है :

सुबन्धु :

कुलिशशिखरखरनरखरनखरप्रचयप्रचण्डचपेटापाटितमत्तमातंगकुम्भस्थलरुधिरच्छ-टाच्छरितचारुकेसरभारभासुर केसरिकदम्बेन.....।[2]

हर्षचरित :

कुलिशशिखरनखरप्रचयप्रचण्डचपेटापाटितमतमातंगोत्तमांगमदच्छटा-च्छरितचारुकेसरभारणिस्वरमुखे केसरिणि....।[3]

इसी प्रकार निम्नलिखित उत्प्रेक्षाओं मे भी बाण सुबन्धु के ऋणी है :

सुबन्धु :

हृदये विलिखितमिव, उत्कीर्णमिव, प्रत्युप्तमिव कीलितमिव.....।

बाण :

लिखितमिवोत्कीर्णमिव स्तम्भितमिवोपरतमिव....।

---

1 वासवदत्ता, चौ० स०, पृ० स० 137

2 वासवदत्ता, (बनारस, 1954), पृ० स० 234।

3. हर्षचरित, (vi) पृ० स० 40

और भी कई प्रकार की समानता बाण और सुबन्धु मे दिखलाई पडती है। अलङ्करण की प्रवृत्ति और लम्बे चौड़े वर्णनों से कथा-विस्तार की प्रवृत्ति दोनो मे पाई जाती है, किन्तु सुबन्धु कथा-वस्तु को वर्णनो की अपेक्षा गौण बना देते है जबकि बाण वर्णनो की झोक मे भी कथावस्तु की उपेक्षा नही करते। सुबन्धु मे कथावस्तु को सुचारु रूप से चलाने की क्षमता नही है, वे तो केवल लम्बे वर्णनो और चित्रणो के लिए अवसर ढूँढ़ते हैं। किन्तु बाण मे कथावस्तु का सम्यक् संचालन करने की भी क्षमता है। इसी प्रकार सुबन्धु मे चरित्र-चित्रण की क्षमता का अभाव है जब कि बाण ने अनेक सजीव चरित्रो की अपनी कृतियो मे प्रस्तुत किया है। लोककथात्मक रूढ़ियो का प्रयोग दोनों ने किया है। सुबन्धु मे स्वप्न मे प्रिय-दर्शन, तोता-मैना का वार्तालाप, जादुई घोड़ा, शाप-प्रयोग और आकाशवाणी आदि लोककथात्मक रूढ़ियो का प्रयोग हुआ है। तोता-मैना का वार्तालाप, शाप प्रयोग और आकाशवाणी आदि रूढ़ियों का प्रयोग बाण ने भी किया है।

सुबन्धु और बाण की शैली मे कुछ समानताएं हैं जिसके कारण दोनो को एक-दूसरे के समीप रखा जा सकता है किन्तु इन्ही शैलीगत विशेषताओं के परिणाम की दृष्टि से दोनो गद्यकारो की गद्यशैलियों मे बड़ा अन्तर भी दीख पड़ता है। उदाहरण के लिए अलङ्कार-योजना की बात ली जा सकती है। सुबन्धु श्लेष, विरोधाभास, परिसख्या, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलङ्कारो का आवश्यकता से अधिक तथा अप्रसिद्ध शास्त्रीय सङ्केतो का अनवसर प्रयोग करते हैं जिसके कारण उनका काव्य कृत्रिम तथा दुरूह बन जाता है जबकि बाण अलङ्कारो के स्वाभाविक प्रयोग तथा अपनी रमणीक कल्पनाओं

से अपने गद्य मे अकृत्रिम सौन्दर्य का समावेश कर देते है। सुबन्धु जहाँ भावपक्ष को उपेक्षित छोड कर शब्दो का व्यूह बनाकर चित्रकाव्य की रचना करने का उद्देश्य लेकर आगे बढ़ते दिखाई देते हैं वहाँ बाण अपने गद्य मे काव्योचित तरलता और रसिकता के साथ कलापक्ष के सहज सौन्दर्य का भी मणिकांचन संयोग कर देते है। जो स्निग्धता और सरसता बाण के गद्य मे मिलती है, सुबन्धु के गद्य में उसका अभाव है। बाण का गद्य पाठको के हृदय पर स्थायी प्रभाव डालता है जबकि सुबन्धु का गद्य अधिकाश मे पाठक के मस्तिष्क के लिए एक सिर-दर्द बन जाता है।

सुबन्धु और बाण की शैलियों मे समानता होते हुए भी पर्याप्त अन्तर है। सुबन्धु का मुख्य उद्देश्य चमत्कार-प्रदर्शन था जबकि बाण का उद्देश्य चमत्कार-प्रदर्शन करने के साथ-साथ रस परिपाक करना भी था। सुबन्धु ने स्वयं अपनी रचना को 'प्रत्यक्षरश्लेषमय' बतलाया है।

'सरस्वतीदत्तवरप्रसादश्चक्रे सुबन्धु सुजनैकबन्धुः।

प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्धविन्यासवैदग्ध्यनिर्विनिबन्धनम्॥'[1]

श्लेष का अत्यधिक प्रयोग, लम्बे-लम्बे समास लम्बे-लम्बे वाक्य, अत्यधिक अलङ्करण और लम्बे-लम्बे वर्णनो से कथा प्रवाह की अवरुद्धि, संक्षेप मे सुबन्धु की शैली के ये गुण हैं। इन सभी बातो से उन्होने पण्डितो की मानसिक कसरत की प्यास को अवश्य तृप्त किया, किन्तु कथावस्तु, रस और चरित्र-चित्रण के प्यासे सहृदय पाठकों को प्यासा ही छोड़ दिया।

---

1 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 6

इसके विपरीत बाण ने पण्डित और सहृदय दोनो की तृषा को शान्त करने का प्रयत्न किया है। उन्होने स्वय अपनी शैली के आदर्श को निम्नलिखित पद्य मे बतलाया है—

'नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम्।।'

अर्थात् मौलिक अर्थ (विषय या भावो और कल्पनाओं की नवीनता), सुरुचिपूर्ण स्वभावोक्ति, सरल श्लेष स्पष्ट रस और विकट अक्षर बन्ध, ये सब एक स्थान पर दुर्लभ है। इनमे जहाँ सुबन्धु के प्रिय श्लेष और विकटाक्षरबन्ध आ गये है, वहॉ अर्थ की मौलिकता, सुरुचिपूर्ण स्वभावोक्ति और छलकता हुआ रस ये गुण भी आ गये हैं। श्लेष को भी बाण ने सरल बना दिया है।

सुबन्धु की शैली गौडी है जिसकी विशेषता है लम्बे-लम्बे समासो और कर्णकटु शब्दो का प्रयोग। बाण की शैली पाञ्चाली है जिसकी विशेषता है शब्द अर्थ का समान गुम्फन अर्थात् अर्थानुरूप भाषा का प्रयोग। अत· सुबन्धु ने अधिकांशत लम्बे समासों और कर्णकटु शब्दों का ही प्रयोग कियाहै, किन्तु बाण ने परुष भावो के चित्रण मे गौडी शैली और कोमल भावो के चित्रण मे प्रसादगुण युक्त ललित पदावली और कम समासो वाली वैदर्भी शैली का प्रयोग किया है। सुबन्धु का गद्य यदि 'अक्षराडम्बर' का साक्षात् रूप है, तो बाण का गद्य स्निग्ध, रसपेशल 'पाञ्चाली' का भव्य प्रतीक है। सुबन्धु ने आँख मूँदकर सन्दर्भ का बिना विचार रखे श्लेष का ही व्यूह खड़ा किया, परन्तु बाणभट्ट की दृष्टि वर्ण्य विषय तथा अवसर के

ऊपर गड़ी हुई है। वह जो लिखते है वह अवसर तथा सन्दर्भ से सघर्ष नही करता। स्निग्ध, रसपेशल तथा हृदयावर्जक गद्य का जीविन प्रतीक बाण सहृदयो के हृदय को स्पन्दित करता है, जबकि सुबन्धु का गद्य केवल मस्तिष्क से ही टक्कर खाता हुआ कथमपि प्रवेश पाता है।

सुबन्धु की शैली मे अत्यधिक कृत्रिमता है। श्लेष का प्रयोग तो अत्यधिक है ही, यमकादि के प्रयोग से भी उन्होने चमत्कार उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है। यमक के दो निम्नलिखित उदाहरण दृष्टव्य है :

(i) विशारदा शारदाभुविशदा विशदात्मनांनमहिमान महिमानरक्षणक्षमा क्षमातिलक धीरता धीरता मनसि भूतता भूतता च वचसि।[1]

(ii) विश्वस्य विश्वस्य व्यवस्थां समासाद्य समासाद्यानेककालं संगीतसगी तनुषे तनुषे कमनंगखपुष्पषु पुष्पेषु रूजा तरसा जातरसा मन्दासमन्दा क्षणं भ्रमन्ती मुह्यति।[2]

किन्तु बाण इस प्रकार की कृत्रिमता में कभी नही फँसते। शब्द-चमत्कार का प्रयोग वे अवश्य करते हैं, किन्तु कम और वह भी प्रायः लम्बे चित्रणो के अन्त में परिसख्या और विरोधाभास आदि के अगभूत श्लेष के रूप मे।

एक अन्य भिन्नता दोनो कवियो के वस्तु-वर्णनों की तुलना करने पर स्पष्ट हो जाती है। किसी वस्तु का वर्णन करते हुए, सुबन्धु का ध्यान मुख्य

---

1 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 183-84

2 वासवदत्ता, चौ0 स0, पृ0 स0 188

रूप से शब्दाडम्बर तथा पाण्डित्यप्रदर्शन की ओर ही रहता है। वह उस वस्तु के विषय मे उपयुक्त कल्पनाओं का जाल फैलाते है जिसमे जटिलता होती है मोहकता नही वस्तुविशेष का सांगोपाग वर्णन सुबन्धु नही करते जबकि बाण वर्ण्य विषय का संश्लिष्ट वर्णन करने के बाद कल्पनालोक मे ऊँची उड़ान भरते हुए अलङ्कारो का सुन्दर प्रयोग करते हैं। अपने वर्णनो मे अप्रसिद्ध शास्त्रीय सन्दर्भो के प्रति बाण रुचि प्रदर्शित नहीं करते।

एक कथाकार की दृष्टि से भी सुबन्धु का स्थान बाण की अपेक्षा निम्न कोटि मे ही आता है। बाण के पास जहाँ अपार शब्द-भण्डार, अलङ्कारो और कल्पनाओं की अपूर्व सूझ, वर्णन की तीव्र पर्यवेक्षण शक्ति, सङ्गीतात्मक भाषा तथा भावपक्ष की तरलता विद्यमान है, वहाँ सुबन्धु के पास केवल शाब्दी क्रीड़ा दिखाई पड़ती है। यद्यपि सुबन्धु ने भी प्रकृति वर्णन के सुन्दर चित्र उपस्थित किये है, पर वे बाण की भूमि तक नहीं उठ पाते। बाण की रचनाओं का कथानक उचित प्रकार से सजा-संवारा हुआ है। वह एक कलाकार की कृति है जबकि सुबन्धु की कृति वासवदत्ता की कथा वस्तु कथा-शिल्प की दृष्टि से अत्यन्त दुर्बल तथा अपरिष्कृत है।

इस प्रकार सुबन्धु के गद्य मे यदि केवल कलापक्ष का उत्कर्ष पाया जाता है तो बाण की रचना मे भावपक्ष और कलापक्ष दोनो का अत्यन्त सुन्दर समन्वय मिलता है। बाण अलंकृत शैली का आश्रय लेकर भी काव्योचित सरसता का पूर्ण निर्वाह अपने गद्य में करते हैं किन्तु सुबन्धु को चमत्कार प्रदर्शन का विशेष आग्रह रहता है जिस कारण से उनका काव्य पंडितो के मनोविनोद की वस्तु बन गया है, सहृदयों के रसास्वाद का पात्र नही।

रूप से शब्दाडम्बर तथा पाण्डित्यप्रदर्शन की ओर ही रहता है। वह उस वस्तु के विषय मे उपयुक्त कल्पनाओं का जाल फैलाते है जिसमे जटिलता होती है मोहकता नही वस्तुविशेष का सांगोपांग वर्णन सुबन्धु नहीं करते जबकि बाण वर्ण्य विषय का संश्लिष्ट वर्णन करने के बाद कल्पनालोक मे ऊँची उड़ान भरते हुए अलङ्कारो का सुन्दर प्रयोग करते है। अपने वर्णनो मे अप्रसिद्ध शास्त्रीय सन्दर्भो के प्रति बाण रुचि प्रदर्शित नहीं करते।

एक कथाकार की दृष्टि से भी सुबन्धु का स्थान बाण की अपेक्षा निम्न कोटि मे ही आता है। बाण के पास जहाँ अपार शब्द-भण्डार, अलङ्कारो और कल्पनाओं की अपूर्व सूझ, वर्णन की तीव्र पर्यवेक्षण शक्ति, सङ्गीतात्मक भाषा तथा भावपक्ष की तरलता विद्यमान है, वहाँ सुबन्धु के पास केवल शाब्दी क्रीड़ा दिखाई पड़ती है। यद्यपि सुबन्धु ने भी प्रकृति वर्णन के सुन्दर चित्र उपस्थित किये हैं, पर वे बाण की भूमि तक नही उठ पाते। बाण की रचनाओं का कथानक उचित प्रकार से सजा-संवारा हुआ है। वह एक कलाकार की कृति है जबकि सुबन्धु की कृति वासवदत्ता की कथा वस्तु कथा-शिल्प की दृष्टि से अत्यन्त दुर्बल तथा अपरिष्कृत है।

इस प्रकार सुबन्धु के गद्य मे यदि केवल कलापक्ष का उत्कर्ष पाया जाता है तो बाण की रचना मे भावपक्ष और कलापक्ष दोनों का अत्यन्त सुन्दर समन्वय मिलता है। बाण अलंकृत शैली का आश्रय लेकर भी काव्योचित सरसता का पूर्ण निर्वाह अपने गद्य में करते हैं किन्तु सुबन्धु को चमत्कार प्रदर्शन का विशेष आग्रह रहता है जिस कारण से उनका काव्य पंडितों के मनोविनोद की वस्तु बन गया है, सहृदयों के रसास्वाद का पात्र नही।

का परुष-भावो के वर्णन मे कर्ण-कटु शब्दो और लम्बे ममासो वाली शैली का तथा कोमल भावो के वर्णन मे कोमलकान्त पदावली का तथा कम समासो वाली शैली का प्रयोग किया है। उन्होने लम्बे वाक्यो, लम्बे वर्णनो और शब्द-चमत्कारो मे रुचि अवश्य ली है किन्तु कथावस्तु, रस और चरित्र-चित्रण की उपेक्षा नही की है। सुबन्धु की कृति मे कृत्रिमता की अधिकता है जबकि बाण की कृतियो में कृत्रिमता और स्वाभाविकता का समन्वय है।

अस्तु बाण ने सुबन्धु की सभी विशेषताओं को आत्मसात कर और उनके श्लेषो की क्लिष्टता, रस की अस्फुटता आदि दोषो का परिष्कार करके सुबन्धु को बाद के कवियो के लिए उतना आकर्षक नही रहने दिया। शब्दतः और अर्थतः, शैलीतः भी सुबन्धु को दुहराने वाले कवियों की कमी नही है।

दण्डी से भी सुबन्धु का पार्थक्य स्पष्ट है। सुबन्धु से बाण यदि चार कदम दूर है तो निःसंदेह सुबन्धु और दण्डी की पारस्परिक दूरी दस कदम है। दण्डी ने जहॉ पञ्चतन्त्र हितोपदेश की सुबोध गद्य शैली को प्रौढ़ता प्रदान करके संस्कृत गद्य काव्य को एक आदर्श रूप मे प्रस्तुत किया वहाँ सुबन्धु ने उससे भी कई कदम आगे बढकर ऐसे अलङ्कृत गद्य का प्रयोग किया जिसका व्यावहारिक मूल्य नाममात्र को था। दण्डी के पश्चात् संस्कृत गद्य लेखको की रुचि आपेक्षिक रूप में अधिक जटिलता के प्रति उन्मुख हुई। समस्त पदावली का प्रचुरता से प्रयोग होने लगा। वर्णनो को सशक्त और सजीव बनाने के लिए दीर्घकाय वाक्यो की प्रयत्नपूर्वक योजना की जाने

लगी। पद्यो की ही भाँति गद्य मे भी अलङ्कारो के अतिशय प्रयोग से व्यावहारिक गद्य का स्वरूप रचनाओं मे विरलता से प्राप्त होने लगा। पूर्ववर्ती कवियो के स्वाभावोक्तिमय वर्णनो की प्रणाली को छोडकर वक्रोक्तियो के प्रति कविगण विशेष रुचि प्रदर्शित करने लगे। श्लेष का प्रयोग कवि की स्पृहणीय विशेषता समझी जाने लगी। कथा-ग्रन्थो मे प्रासंगिक वर्णनो का मूल कथावस्तु से सन्तुलन न रहने के कारण कथावस्तु के स्वाभाविक विकास की उपेक्षा की जाने लगी और प्रासङ्गिक वर्णनो को आवश्यकता से अधिक विस्तार प्रदान करने की प्रवृत्ति प्रचलित हो गई। कुल मिलाकर गद्य पहले की अपेक्षा अधिक प्रौढ़ रूप को प्राप्त हो गया। संस्कृत के अलंकृत गद्य के **इस 'विचित्रमार्ग' के प्रवर्तक सुबन्धु** थे जिनकी रचना मे उपरोक्त गुण और दोष प्रचुर परिणाम मे उपलब्ध होते हैं।

सुबन्धु ने रस-परिपाक की उपेक्षा करके अलङ्कार-प्रियता, पौराणिक-कथा-विदग्धता और समास रसिकता का अधिक प्रदर्शन किया है, अतः उनमे दण्डी जैसा पद-माधुर्य और बाण जैसी कल्पना-प्रौढता एवं वर्णन चातुरी नही मिलती है। रस परिपाक की घोर उपेक्षा के कारण ही आनन्दवर्धनाचार्य की यह उक्ति सुबन्धु पर पूर्णतया घटती है कि कुछ कवि केवल अलङ्कार प्रयोग मे ही अपनी योग्यता का प्रदर्शन करते हैं और रस कीसर्वथा उपेक्षा करते है।1

दण्डी जहाँ अपने पदलालित्य के लिए संस्कृत जगत् मे विख्यात हैं,

---

1 ध्वन्यालोक पृ0 151 (निर्णयसागर 1911)

वहाँ सुबन्धु के काव्य मे तो ललित पदावली का प्रयोग ढूंढने पर ही कही मिलेगा। दण्डी के सरल एव व्यावहारिक गद्य की तो सुबन्धु के अक्षराडम्बर युक्त गद्य से तुलना क्या? जो यथार्थवादी स्वर दण्डी के काव्य में मुखर हुआ है सुबन्धु के काव्य मे उसका सर्वथा अभाव है। दण्डी प्रेम-कथाओं के माध्यम से समाज के नग्नरूप का चित्र भी पाठक के सामने उपस्थित कर देते हैं जबकि सुबन्धु शब्दाडम्बर तथा अलङ्कारो के जजाल मे ही उलझे हुए रह जाते है। दण्डी की तीव्र निरीक्षणशक्ति तथा यथार्थवादी शब्दविन्यास का अभाव 'वासवदत्ता' के लोकप्रिय न होने का पर्याप्त हेतु हैं। न सुबन्धु के पास दण्डी की भाति यथार्थ जीवन को ज्यों का त्यो चित्रित करने की ही शक्ति है। भले ही दण्डी की शैली मे सुबन्धु जैसी शाब्दी कलाबाजी न भी हो, पर उसमे एक ऐसा ओज विद्यमान है, जो सुबन्धु मे नही मिलता।

सुबन्धु के काव्य का समीक्षण करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि कृत्रिम (अलंकृत) गद्य शैली मे सभी दोष उसमें प्रचुर परिणाम में उपस्थित है। विकट पदावली, पग-पग पर श्लेष और विरोधाभास आदि अलकार तथा पौराणिक सकेतो को पाकर पाठक खीझ उठता है। यदि सुबन्धु ने बीच-बीच मे व्यास प्रधान शैली मे छोटे-छोटे वाक्यो की योजना न की होती तो 'वासवदत्ता' नितान्त जटिल ग्रन्थ बन जाता। सुबन्धु मे गद्य का यही अपरिष्कृत तथा कृत्रिम रूप उनके परवर्ती बाण की कृतियो मे परिष्कृत तथा रम्य रूप मे प्रयुक्त हुआ है।

इन सब बातो से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं, कि 'सुबन्धु' को गद्यकाव्य-निर्माण के इतिहास में सर्वोच्च स्थान दिया जाना चाहिए। बाणभट्ट

तो अपनी महत्ता से विख्यात ही हैं, परन्तु पूर्ववर्ती आदर्शभूत कवियो मे सुबन्धु की प्रमुख स्थिति है और सभी प्रकार की रचनाओं से अप्रतिहन गति सरस्वती का प्रसाद पाकर यह 'महाकवि' सचमुच 'महाकवियो' की श्रेणी मे अपना प्रमुख स्थान बनाए हुए है, यह कहना ही पड़ेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 उत्तर रामचरितम् डा0 लाल रमायदुपाल सिह सम्पादित शारदा प्रकाशन, इलाहाबाद

2 अथर्ववेद, वैदिक स्वाध्याय मण्डल, पारडी प्रकाशन

3 अभिनव भारती, बडौदा सस्करण, 1934, मद्रास सरकार ओरियण्टल लाइब्रेरी प्रकाशन

4 अवदानशतक, मिथिला विद्यापीठ प्रकाशन, 2014

5 अलङ्कारसर्वस्व, रुय्यक, चौखम्बा सस्करण

6 अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, वी0 ए0 स्मिथ, तृतीय सस्करण

7 अवन्तिसुन्दरीकथा, मद्रास सरकार लाइब्रेरी, ट्रीनियल केटलाग

8 इण्डिशे स्ट्रीफेन, प्रथम वर्लिन 1869

9 इण्डियन एण्टीक्वेरी, 1911-1912

10 इण्डियन एण्टीक्वेरी, वाल्यूम 52, 1826

11 इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, सितम्बर 1939

12 इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, वाल्यूम 19, 1943

13 एपीग्रेफिया इण्डिका, भाग 19

14 कादम्बरी, निर्णय सागर सस्करण

15 कादम्बरी, चौखम्बा सस्करण

16 कादम्बरी, प0 कृष्णमोहनशास्त्री कृत्

17 कादम्बरी, डा0 श्रीनिवास शास्त्री और महेशचन्द्र भारतीय कृत

18 काव्यालङ्कार, भामह, बिहार, राष्ट्रभाषा परिषद् प्रकाशन, 2019

19 काव्यालङ्कार, रुद्रट, चौखम्बा सस्करण

20 काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति, वामन, आत्माराम एण्ड सन्स प्रकाशन, सम्वत् 2011

21 काव्यमीमासा, राजशेखर, चौखम्बा सस्करण

22 काव्यानुशासन, हेमचन्द्र

23 काव्यादर्श, दण्डी, चौखम्बा सस्करण, सम्वत् 2015

24 काव्यप्रकाश मम्मट, भण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना प्रकाशन, 1965

25 कुवलयानन्द, अप्पयदीक्षित, चौखम्बा सस्करण, 2020

26 कुमारसम्भव, कालिदास, मेरठ सस्करण

27 कुमारसम्भव, कालिदास, चौखम्बा सस्करण

28 गउडवहो, कविराज

29 गद्यकाव्यमीमासा, प0 अम्बिकादत्त व्यास, नागरी प्रचारिणी सभा, प्रकाशन 1897 ई0

30 गुप्त साम्राज्य का इतिहास, वासुदेव उपाध्याय, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन

31 चन्द्रावती नाटिका, विश्वनाथ कविराज, प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ

32 छन्दोनुशासन, हेमचन्द्र

33 छन्दोमजरी, चौखम्बा सस्करण वाराणसी

34 जोर्न्ल ऑफ रायल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बगाल

35 जोर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसायटी, 1914

36 डेस0 कैट0 सख्या मनु0 आड्यार लाइब्रेरी, 1942, भाग 1

37 तत्त्व सग्रह, वियनतोष भट्टाचार्य सम्पादित

38 द क्लासिकल एज, आर0 सी0 मजूमदार, विद्या भवन

39 दशरूपक, धनिक धनजय, चौखम्बा सस्करण

40 ध्वन्यालोक लोचन, चौखम्बा सस्करण, स0 2001

41 न्यायसूत्र, पूना ओरियण्टल बुक एजेन्सी प्रकाशन, 1939

42 नलचम्पू, त्रिविक्रमभट्ट, चौखम्बा सस्करण, 1932, निर्णयसागर सस्करण

43 परिशिष्ट पर्व, हेमचन्द्र

44 पूना ओरियण्टलिस्ट भाग 11, 1946

45 पुरातत्व निबन्धावली, राहुल साकृत्यायन, इण्डियन प्रेस प्रकाशन

46 पी0 वी0 काणे, फेलिसिटेशन वाल्यूम, पूना प्रकाशन

47 नाट्यशास्त्र, भरत काशी सस्करण

48 नाट्यदर्पण, रामचन्द्र गुणचन्द्र, गायकवाड सस्करण, बडौदा

49 भर्तृहरि, नीतिशतक, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

50 भर्तृहरिशतक, चौखम्बा सस्करण, वाराणसी

51 भावप्रकाश, गायकवाड सस्करण, वाराणसी

52 भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, भाग 1, 2 इतिहास प्रकाशन मडल, नई दिल्ली, सम्वत् 2017

53 मजूश्री मूलकल्प, डा0 काशीप्रसादजायसवाल सस्करण

54 मृच्छकटिकम्, शूद्रक, चौखम्बा सस्करण

55 मैसूर इन्स्क्रिप्शन्स, राइस सम्पादित, बाम्बे प्रकाशन, 1879

56 महाभाष्य, पतजलि, कीलहार्न सस्करण

57 रामचन्द्रिका, केशवदास, रामनारायण लाल बेनी प्रसाद, प्रयाग प्रकाशन, 2022

58 राघव पाण्डवीय, चौखम्बा सस्करण, वाराणसी

59 रामचरितमानस, गीताप्रेस, गोरखपुर प्रकाशन

60 ललित विस्तर, मिथिला विद्यापीठ प्रकाशन सख्या 2018

61 व्यक्तिविवेक, महिमभट्ट, चौखम्बा सस्करण, वाराणसी

62 वृहद्देवता, मेकडोनल सस्करण, हारवर्ड विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1904

63 वृहद्कथा कोष, आचार्यहरिषेण

64 वृत्तरत्नाकर, चौखम्बा सस्करण, वाराणसी

65 वासवदत्ता, सुबन्धु, चौखम्बा सस्करण, 1854

66 वासवदत्ता, श्रीरङ्गम सस्करण, मद्रास, 1906, 1908

67 वासवदत्ता, एफ हाल सम्पादित, कलकत्ता से प्रकाशित, 1859

68 वासवदत्ता, एफ हाल सम्पादित, कलकत्ता सेप्रकाशित, 1859

69 वासवदत्ता, जीवानन्द विद्यासागर सस्करण

70 वाक्यपदीय, भर्तृहरि, भारतवर्ष के वृहद् इतिहास से उद्धृत

71 विक्रमस्मृति ग्रन्थ, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी

72 विक्रमोर्वशीयम्, कालिदास, चौखम्बा सस्करण

73 विक्रमादित्य, डा0 राजबलि पाडेय, अग्रेजी सस्करण, 1954

74 विश्वप्रकाश कोष, भारतवर्ष के वृहद् इतिहास से उद्धृत

75 वियना ओरियण्टल जोर्नल, भाग 1

76 शर्ङ्धर पद्धति, पीटर्सन सम्पादित, मुम्बई प्रकाशन, 1888

77 शतपथ ब्राह्मण, हरिस्वामी, कृतभाष्य, भारतवर्ष के वृहद् इतिहास से उद्धृत

78 शिव महिम्न स्तोत्र, पुष्पदन्त, गीताप्रेस गोरखपुर सस्करण

79 शुक्लयजुर्वेद, वैदिक स्वाध्याय मडल, पारडी प्रकाशन

80 स्टडीज इन इण्डोलाजी, 1941

81 स्थविरावलीचरित, आचार्य हेमचन्द्र

82 सरस्वती कण्ठाभरण, भोजराज

83 सस्कृत साहित्य का नवीन इतिहास, श्री सत्यनारायण शास्त्री, आशा प्रकाशन गृह, करोल बाग, नई दिल्ली

84 सस्कृत कविदर्शन, डा0 भोलाशङ्कर व्यास, चोखम्बा प्रकाशन

85 सस्कृत काव्यकार, डा0 हरिदत्त शास्त्री, साहित्य भण्डार, मेरठ

86 सस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला

87 सस्कृत साहित्य की रूपरेखा, व्यास और पाण्डेय, कानपुर

88 सर्वानुक्रमणी, मैकडानल सस्करण, 1886

89 सदुक्तिकर्णामृत, पीटर्सन सम्पादित, 1886

90 साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 18 अक्टूबर अङ्क, 1964

91 साहित्यदर्पण विश्वनाथ कविराज, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन

92 सोर्सेज आफ मेडिकल हिस्ट्री, वाल्यूम 1

93 शृङ्गारप्रकाश, भोजराज, वी0 राघवन सस्करण

94 श्रीमद्भागवत, गीताप्रेस गोरखपुर सस्करण

95 हर्षचरित, बाणभट्ट, चौखम्बा सस्करण

96 हर्षचरित, पी0 वी0 काणे सम्पादित, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन

97 हर्षचरित, कावेल और टामस प्रतिपादित

98 हिस्ट्री ऑफ सस्कृत लिटरेचर, वरद राजाचार्य

99 हिस्ट्री ऑफ सस्कृत लिटरेचर, मैकडानेल

100 हिस्ट्री ऑफ सस्कृत लिटरेचर, कीथ

101 ऋग्वेद वैदिक स्वाध्याय मणडल, पारडी प्रकाशन